राखण्ड

म

1987

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

IN PRESS

- One of the most authentic, comprehensive and unique work on UTTARAKHAND.

- Contributed by eminent scholars.

- Covering < arious aspects of land, people and resources of UTTARAKHAND.

- An ambitious presentation of Uttarakhand Shodh Sansthan

- Principal Editors: Mandan Chandra Bhatt, Giri Raj Sa Pramod Joshi

Published by:

Himalaya Publishing House.

Ramdoot

Bhale Rao Marg

KELEWADI, GIRGAON

BOMBAY–400 004

PRINTED BY : M/S Ganga Press, 150 Sanker Kutti, S. K. Road, Meerut.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तराखण्ड

UTTARAKHAND

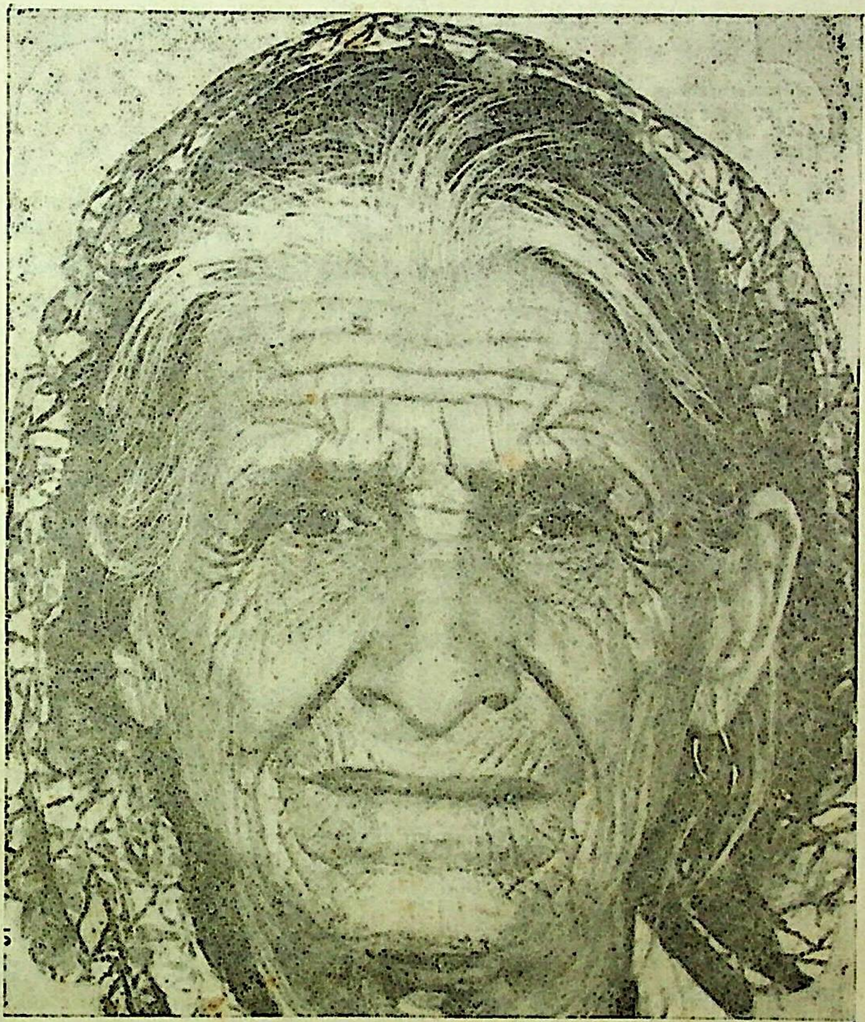

परिचय इतना, इतिहास यही

प्रवेश-स्मारिका

उत्तराखण्ड शोध संस्थान का प्रकाशन

छाया : सतीश अग्रवाल
न्यूलाइट स्टूडियो हल्दवानी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तराखण्ड

विरासत से पीढ़ी को
जोड़ने के प्रयास में

सम्पर्क सूत्र

1. द्वारा प्रमोद जोशी
II/557 विश्वविद्यालय परिसर
पंतनगर (उ० प्र०)
पिन—263 145

2. द्वारा गिरिराज शाह
वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक
पुलिस मुख्यालय
मैनपुरी (उ० प्र०)

पजी. सं. 4612/1985

Edited and Published by Pramod Joshi for Uttrakhand Shodh Sansthan. Editing and Management Voluntary.

सम्पादन तथा व्यवस्था अवैतनिक

प्रारम्भ

□ घाटियों में गूंजती स्वर-लहरियां, ढलानों में थिरकते पद, देवालयों से निकलती शंख-घंटियों की अनुगूंज, घर-आंगन में रचित अल्पनाओं के नमूने—कोई कैसे बिसार दे इन्हें ! धवल हिमशिखर, नीली चोटियाँ, हरी घाटियां, रस बरसाते झरने, कलकल बहती नदियां, चहकते पशु-पक्षी और महकते वन-उपवन—कोई कैसे अनदेखा कर दे इन्हें ! !

□ पर लोहे के चक्के—किसी भी दूसरे क्षेत्र की तरह—उत्तराखण्ड के अन्तर को ज्यों-ज्यों भेद रहे हैं तथा कंक्रीट के जंगल जैसे-जैसे फैल रहे हैं, लोगों के मन में अपनी संस्कृति के प्रति लगाव कम होता जा रहा है। कभी-कभी तो लगता है कि हम इतिहास के उस मोड़ पर आ पहुंचे हैं, जहां से हमारा गौरवपूर्ण अतीत हमसे विछिन्न हो रहा है।

□ क्या हम इस स्थिति की ओर से आंखें मूंदे रह सकते हैं ? क्या हम अपनी आगामी पीढ़ियों को यूं ही सांस्कृतिक शरणार्थी बनने के लिए छोड़ सकते हैं ? शायद नहीं—क्योंकि इतनी उथली नहीं हैं हमारी संस्कृति की जड़ें। हमें जुड़ना ही है अपनी धरती से, अपनी थाती से। हमें अक्षुण्ण रखना है अपनी सांस्कृतिक विरासत को। हम सोच नहीं सकते एक-संस्कृति-विहीन समाज और प्रकृति-विहीन परिवेश की बात।

□ 'उत्तराखण्ड' का प्रकाशन इसी सोच का प्रतिफल है। उत्तराखण्ड शोध संस्थान के कार्यकलापों की एक कड़ी के रूप में यह प्रयास सांस्कृतिक जन-जागरण और प्रकृति तथा पर्यावरण के संरक्षण को समर्पित है। यह इस बात का प्रतीत है कि हमें अपनी विरासत पर गर्व है, मूल्यों पर आस्था है, तथा भावी पीढ़ी पर विश्वास है।

□ फिलहाल सीमित साधन हमें अनुमति नहीं दे रहे हैं कि हम उत्तराखण्ड की प्रकाशन अवधि सुनिश्चित कर सकें। मुद्रण-स्थल की दूरी के कारण कुछ त्रुटियां भी रह गई हैं। फिर भी, जब-जब साधन जुटे, हम विश्वास दिलाते हैं कि इसके प्रकाशन का सिलसिला जारी रखेंगे और हर अंक के साथ इसमें सुधार लाएंगे। उत्तराखण्ड विषयक हर पक्ष, हर समस्या से जुड़ी मौलिक विश्लेषणात्मक तथा अनुसंधान-परक रचनाओं तथा दस्तावेजों का इसमें स्वागत हैं; और आपके सुझावों का भी। हमें आपके सहयोग की प्रतीक्षा रहेगी।

प्रमोद जोशी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

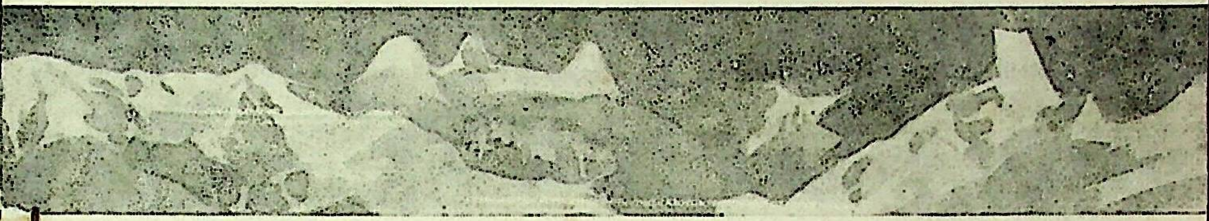

रचना-पक्ष

संस्कृति/उत्तराखण्ड में संस्कृति की प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमि/यशोधर मठपाल/1

पुरातत्व कुमाऊं के कुछ प्राचीन मन्दिर/भुवन लाल शाह/9

साहित्य/गढ़वाल, कुमाऊं दरबारों में भूषण बंधु/भजनसिंह 'सिंह'/18

इतिहास/तराई-भावर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि/नित्यानन्द मिश्र/2

संस्मरण/परमपूज्य सोमवारी महाराज/बद्री साह ठुलघरिया/30

पड़ताल/तीर्थयात्री, पर्यटक और आयु/शंकर काला/3

यामावरी/सड़क सभ्यता और सरिताओं के सिरे/गिरिराज शाह/36

लोकपक्ष/उत्तराखण्ड में लोकगाथाओं का ऐतिहासिक आधार/प्रयाग जोशी/49

विवेचन/उत्तराखण्ड के चरागाह/निरंजन प्रकाश मेलकनिया/58

प्रकृति/वनफूलों का सैलाव : फूलों की घाटी/दीना नाथ श्रीवास्तव/77

स्थान/The Magic of Tungnath/**Ruskin Bond**/80

लोग/The Cave-dwellers of Central Himalaya/**Ajay Rawat**/84

दस्तावेज/The Walking Encyclopedia of Himalayan Flora/**U. C. Sah**/90

सम्पदा/Livestock Production in U. P. Hills/**S K. Bhadula**/97

परियोजना/Jamorani Dam for Economic Revolution in Nainital Bhabhar/**R. Anbalagan & B. K. Tripathi**/110

पर्यावरण/The Agroecosysren of Uttarakhand/**Uma & N. P. Melkania**/115

अध्यक्ष की रिपोर्ट/126 विज्ञापन खण्ड/129

कला-पक्ष

मोहम्मद सलीम

छाया-पक्ष

यशोधर मठपाल (3), भुवनलाल शाह (10, 11, 13, 15, 40, 46), उमेशचन्द्र शाह (41, 91, 92), निरंजन प्रकाश मेलकनिया (59, 61, 119), अजय रावत (86, 87, 88), सिद्ध कुमार भदूला (99), शारदा संघ, नैनीताल (12, 13, 16)

विशेष आभार

गिरीश चन्द्र जोशी, राजेन्द्र कुमार, उमेश पांडे

के सहयोग से

प्रमोद जोशी द्वारा संपादित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुख्य मंत्री उत्तर प्रदेश
सचिवालय–एनेक्सी,
लखनऊ, 12 जनवरी, 1987

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि उत्तराखण्ड में संस्कृति एवं इतिहास के मूल तत्त्वों की खोज, पहचान एवं उनकी प्रस्तुति में लगी संस्था "उत्तराखण्ड शोध संस्थान" एक "स्मारिका" प्रकाशित करने जा रही है तथा इस अवसर पर उत्तराखण्ड से सम्बन्धित इतिहासविदों, विद्वानों एवं पर्यावरण प्रेमियों का सम्मेलन भी होने जा रहा है।

मुझे आशा है कि स्मारिका में मानक सामग्री प्रकाशित होगी और यह शोध छात्रों के अलावा साधारण पाठकों के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी।

"स्मारिका" एवं सम्मेलन की सफलता के लिए मेरी शुभकामनाएं।

ह./वीर बहादुर सिंह

राज्य मन्त्री, पर्वतीय विकास, उ० प्र०
लखनऊ, 16 दिसम्बर, 1986

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि "उत्तराखण्ड शोध संस्थान" जो उत्तराखण्ड में संस्कृति एवं इतिहास के मूल तत्त्वों की खोज, पहचान एवं प्रस्तुति में तल्लीन है एक "स्मारिका" प्रकाशित करने जा रहा है तथा उत्तराखण्ड से सम्बन्धित इतिहासविदों, विद्वजनों एवं पर्यावरण प्रेमियों का सम्मेलन आयोजित करने जा रहा है। मुझे आशा एवं विश्वास है कि उक्त संस्थान उत्तराखण्ड प्रेमियों को एक नई दिशा देगा।

स्मारिका के सफल प्रकाशन एवं सेमीनार के आयोजन की सफलता हेतु मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

ह०/राम औतार दीक्षित

आयुक्त कुमाऊं मण्डल, नैनीताल
5 जनवरी, 1987

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि "उत्तराखण्ड शोध संस्थान" जो उत्तराखण्ड में संस्कृति एवं इतिहास के मूल तत्त्वों की खोज पहचान एवं प्रस्तुति में लगा है, एक "स्मारिका" प्रकाशित करने जा रहा है। वह उत्तराखण्ड से सम्बन्धित इतिहासविदों, विद्वानों एवं पर्यावरण शास्त्रियों का सम्मेलन भी करने जा रहा है। आशा है कि उक्त स्मारिका एक मानक स्थापित करेगी तथा उत्तराखण्ड शोध संस्थान उत्तराखण्ड प्रेमियों को एक नई दिशा देगा।

मैं अपनी शुभकामना "स्मारिका" एवं "सेमिनार" हेतु प्रेषित करता हूं।

ह०/ओम नारायण वैद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शुभकामना संदेश

विदेश मंत्री
भारत

31 जनवरी, 1987

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता है कि उत्तराखण्ड में संस्कृति एवं इतिहास की पहचान एवं प्रसार में रत "उत्तरखण्ड शोध संस्थान" के तत्त्वावधान में क्षेत्र के इतिहासविदों, पर्यावरण प्रेमियों एवं विद्वानों का एक सम्मेलन आयोजित किया जा रहा है। क्षेत्रीय संस्कृति के विकास एवं प्रसार में संस्थान की गतिविधियाँ सराहनीय हैं।

मुझे विश्वास है कि संस्थान की उत्तरोत्तर गतिविधियों में यह सम्मेलन एक महत्त्वपूर्ण कड़ी सिद्ध होगा। इसके सफल आयोजन एवं इस अवसर पर संस्थान द्वारा प्रकाशित की जा रही स्मारिका के उत्कृष्ट प्रकाशन हेतु मेरी शुभ कामनाएं हैं।

ह०/नारायण दत्त तिवारी

इस्पात और खान मंत्री
भारत

नई दिल्ली
3 मार्च, 1987

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हो रही है कि उत्तराखण्ड शोध संस्थान द्वारा एक स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

मैं स्मारिका के सफल प्रकाशन के लिए इसके प्रकाशकों को बधाई देता हूं।

ह०/कृष्ण चन्द्र पन्त

दुर्ग रामनगर, वाराणसी

2 फरवरी, 1987

यह प्रसन्नता का विषय है कि उत्तराखण्ड शोध संस्थान उत्तराखण्ड के इतिहास एवं संस्कृति के अन्वेषण एवं प्रकाशन में संलग्न है। इस दिशा में यह संस्थान उत्तराखण्ड से सम्बद्ध विद्वानों एवं पर्यावरण प्रेमियों का एक सम्मेलन आयोजित कर रहा है तथा एक स्मारिका प्रकाशित करने जा रहा है। आशा है इस सम्मेलन में विद्वानों और वैज्ञानिकों के विचार विमर्श से ठोस सामग्री सामने आएगी।

मैं सम्मेलन तथा स्मारिका की सफलता के लिए मंगलकामना करता हूं।

ह०/विभूति नारायण सिंह
काशीनरेश

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संक्षेप में

1

भारत की भूमि पर मानव-पुरखे—राम पिथेकस—के अवशेष पहली बार कोई पचास वर्ष पहले दृष्टि में आए थे। यह प्राणी शिवालिक श्रेणियों में अपना जैविक अस्तित्व छोड़ गया है—उत्तराखण्ड में भी इसके अवशेष पाए जाने के पूरे अवसर हैं। कई अन्य पाषाणकालीन अवशेष भी इस पर्वत क्षेत्र में उपलब्ध है, जो यहाँ की संस्कृति के अत्यन्त प्राचीन होने की कहानी कहते हैं। इसी पर प्रकाश डाल रहे हैं डॉ. यशोधर मठपाल अपने लेख "उत्तराखण्ड में संस्कृति की प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमि" में। डॉ. मठपाल ने गुफाचित्रों पर विशेष कार्य किया है। नौकरी के बन्धन में न बंध कर, वे आजकल स्वतन्त्र रूप से उत्तराखण्ड के गुफाचित्रों तथा पाषाणकालीन अवशेषों की खोज तथा अध्ययन में लगे हैं। साथ ही वे अपने निजी प्रयासों से उत्तराखण्ड की संस्कृति का एक संग्रहालय स्थापित करने में जुटे हुए हैं। संपर्क : निदेशक, लोक संस्कृति संग्रहालय, कृष्णधाम, भीमताल (नैनीताल)।

9

कूर्माचल की मनोहारी भूमि नैसर्गिक सौन्दर्य से ओत-प्रोत तो है ही, अनेक कलात्मक मंदिरों-मूर्तियों से भी अटी पड़ी है। वास्तु-तथा मूर्ति-कला की अनेक विलक्षण कृतियां यहां देखने को मिलती हैं—चाहे वह द्वाराहाट स्थित गूजरदेव मन्दिर का ध्वज हो, या कटारमल में सूर्य की प्रतिमा हो, या बैजनाथ की पर्वती की मूर्ति हो, या फिर बालेश्वर मन्दिर, चम्पावत की दीवारों की पच्चीकारी हो। इसी मन्दिर तथा मूर्ति सम्पदा का बखान कर रहे हैं श्री भुवनलाल शाह अपनी रचना "कुमाऊँ के कुछ प्राचीन मन्दिर" में। श्री शाह छायांकन के क्षेत्र में लम्बे समय से जुड़े हुए हैं और इस नाते उत्तराखण्ड में दूर-दराज तक घूमे हैं। संपर्क : 48, कले स्क्वायर, लखनऊ–226001

18

'भूषण भनत अंग, भूषण भनत अंग······' की ओजस्वी लेखनी से कौन साहित्य प्रेमी अपरिचित है। शिवाजी के राजकवि भूषण और उनके कवि-बन्धु मतिराम अपने जीवनकाल में मराठा साम्राज्य तक ही बंधे नहीं रहे। वे उत्तराखण्ड की पावन भूमि में भी पधारे और वहाँ के तत्कालीन नरेशों के आतिथ्य में रहे थे। कविवर भूषण और मतिराम की कुमाऊं और गढ़वाल यात्रा से जुड़ी लब्धियों और विवादों का ब्यौरा प्रस्तुत कर रहे हैं। वयोवृद्ध रचनाकार श्री भजनसिंह 'सिंह'। आपने सतसई परम्परा में गढ़वाली बोली में 1260 दोहों की 'सिंह सतसई' की रचना की है। संपर्क : कोटसाड़ा, डा० कोट, सितोचस्यूं, पौड़ी गढ़वाल।

25

उत्तराखण्ड के इतिहास, संस्कृति और विकास में वहाँ के तराई-भाबर क्षेत्र का महत्त्वपूर्ण योगदान है। कुमाऊं के तराई-भाबर इलाके के इतिहास की व्यापक छानबीन की है श्री नित्यानन्द मिश्र ने अपने खोजपूर्ण लेख 'तराई-भाबर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि' में। अठहत्तर-वर्षीय, अवकाश प्राप्त प्रधानाध्यापक मिश्र जी कुमाऊं के इतिहास के गहन अध्येता हैं और सौ से अधिक लेखों के रचेता। वय को झुठलाते हुए पंडित जी आज भी अध्ययन—लेखन को अपने पहले व्यसन की भांति अपनाये हुए हैं। सम्पर्क : जाखन देवी, अल्मोड़ा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

30 कुमाऊं की संत परम्परा अत्यंत प्राचीन है। दैवी शक्तियों के धनी, मानव प्रेम से ओत-प्रोत अनेक साधु-पुरुषों ने इस पावन भूमि को समय-समय पर पवित्र किया है। ऐसे ही एक संतपुरुष थे पूज्यनीय सोमवारी महाराज जी—जिनके चमत्कृत जीवन की एक झलक प्रस्तुत है अल्मोड़ा के ख्यात विद्वान एवं अधिवक्ता स्व. श्री बद्रीसाह ठुलघरिया के संस्मरणों के रूप में।

---

34 आयु जीवन की हर गतिविधि, सोच-विचार को प्रभावित करती है। गढ़वाल हिमालय की यात्रा पर आये पाँच हजार लोगों से पूछताछ की गई कि वे सैर-सपाटे को निकले हैं, या तीरथ पर। उत्तर को उनकी आयु से जोड़कर देखा गया और जो निष्कर्ष मिले, उन्हें डॉ. शंकर काला प्रस्तुत कर रहे हैं अपने अध्ययन "तीर्थयात्री, पर्यटक और आयु" में। डॉ. काला गढ़वाल विश्वविद्यालय के हिमालय संस्थान से संवद्ध रहे हैं और इस समय वहां पर्यटन विभाग में प्रवक्ता है। संपर्क : हिमालय संस्थान, पो. बा. 12, श्रीनगर (गढ़वाल) पिन–246174

---

36 उत्तराखण्ड की नैसर्गिक सुन्दरता, अलौकिक शान्ति तथा पौराणिक-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि हर क्षेत्र से जुड़े लोगों को अपनी ओर आकर्षित करती है। हिम-शिखरों से हरी-भरी घाटियों तक, बुग्यालों से बांझ वनों तक, सरोवरों से सरिता स्रोतों तक—सौन्दर्य ही सौन्दर्य। नाना प्रकार के स्थान, परिवेश तथा लोग। इस क्षेत्र की सैर पर आपको ले चल रहे हैं, श्री गिरिराज शाह, 'सड़क सभ्यता और सरिताओं के सिरे' लेख के माध्यम से। श्री शाह पुलिस महकमे में उच्चाधिकारी होते हुए भी संस्कृति के सजग प्रहरी हैं। अनेक पुस्तकों के लेखक और रायल जियोगरफीक सोयायटी की फेलोशिप से सम्मानित। संपर्क : वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, मैनपुरी (उत्तर प्रदेश)।

---

49 किसी क्षेत्र की संस्कृति को वहाँ के लोकपक्ष से अलग करके नहीं आंका जा सकता। उत्तराखण्ड की लोकगाथाओं के पौराणिक एवं ऐतिहासिक आधार का विस्तृत अध्ययन और विवेचना की है, डॉ० प्रयाग जोशी ने, अपने लेख "उत्तराखण्ड की लोकगाथाओं का ऐतिहासिक आधार" में। डॉ. जोशी उत्तराखण्ड के इतिहास से सम्बन्धित अनेक रचनाओं के लेखक हैं। संपर्क : बी 3/13, जेल गार्डन रोड कालोनी, रायबरेली, पिन 229001

---

58 पर्वतीय क्षेत्रों में पशुधन का अपना महत्त्व है। परन्तु पशुधन विकास कार्यक्रम प्रारम्भ करने से पूर्व चरागाहों के विकास एवं प्रबन्ध की सुनिश्चित रूपरेखा तैयार कर लेनी जरूरी है। पर्वतीय दशाओं में निजी स्तर पर चारा उगाना सम्भव नहीं है, अतः सामुदायिक स्तर पर एक वृक्ष-चरागाह वर्धन तंत्र का विकास बहुउपयोगी होगा। इसके सभी पहलुओं की वैज्ञानिक विवेचना की है डॉ. निरंजन प्रकाश मेलकानिया ने अपने समीक्षात्मक लेख 'उत्तराखण्ड के चरागाह' में। डॉ. मेलकानिया ने वन, चरागाह तथा पारिस्थितिकी के क्षेत्र में काफी कार्य किया है। उनके 30 से अधिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शोध पत्र प्रकाशित हैं। संपर्क : सहायक प्राध्यापक, पर्यावरण विज्ञान विभाग, गो. ब. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर (नैनीताल)

77 12 हजार फुट की ऊंचाई पर, हेमकुण्ड से आगे, बर्फीले शिखरों की गोद में बसी, फूलों की घाटी में यदि आप जून से सितम्बर माह के बीच पहुँच जाएं तो एक अद्‌भुत अनुभूति के भागीदार हो सकते हैं। फूलों का जैसे सैलाब आ गया हो, फाग का मानो हर रंग धरती की चूनर पर बिखर गया हो। इसी सुरम्य घाटी की सैर करा रहे हैं श्री दीनानाथ श्रीवास्तव अपनी रचना "वन फूलों का सैलाब : फूलों की घाटी" में। उच्च प्रशासनिक अधिकारी श्री श्रीवास्तव ने प्रकृति को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से परखा है। संपर्क : विशेष सचिव, पर्वतीय विकास विभाग, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ।

80 बारह हजार फुट की ऊँचाई पर, चन्द्रशिला शिखर के ठीक नीचे, तुंगनाथ का मन्दिर स्थित है। यह केदार परम्परा का मन्दिर है पर यहां का पुजारी, दक्षिण भारतीय न हो होकर स्थानीय ब्राह्मण होता है। तुंगनाथ के जादुई माहौल में आपको ले चल रहे हैं भारत के प्रख्यात अंग्रेजी कहानीकार एवं प्रकृति प्रेमी श्री रस्किन बांड—अपने लेख "द मैजिक आफ तुंगनाथ" में। श्री बांड की 20 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है। आपने उत्तराखण्ड के वन्य जीवन तथा प्राकृतिक सम्पदा पर भी बहुत कुछ लिखा है। संपर्क : साकेत, कुलड़ी, मसूरी।

84 सभ्यता के चरण चारों दिशाओं में पड़ रहे हैं। पर उत्तराखण्ड के दूरस्थ इलाके में आज भी एक ऐसी जनजाति है, जो जंगलों, गुफाओं में रहती है। पिथौरागढ़ जिले की इस जनजाति का नाम है वनराजि या वनरौत। 1981 की जनगणना के अनुसार उनकी कुल आबादी है सिर्फ पौने चार सौ। इस निराली जनजाति का परिचय दे रहे हैं अजय रावत अपनी रचना 'द केव ड्वैलर्स ऑफ सेन्ट्रल हिमालया' में। डॉ. रावत कुमाऊं विश्वविद्यालय के नैनीताल घटक में इतिहास विभाग के अध्यक्ष है और अनेक शोधपत्रों/पुस्तकों के लेखक। संपर्क : बड़ा बाजार, मल्लीताल, नैनीताल।

90 जहाँ चाह वहां राह का अनूठा उदाहरण थे स्व. श्री रामलाल शाह। पेशे से लिपिक, शिक्षा से हाईस्कूल, शौक से वनस्पति-प्रेमी और हौसले से बुलन्द। तभी तो अपने बलबूते और मेहनत के सहारे उत्तराखण्ड की वनस्पनि सम्पदा पर उन्होंने ऐसा महारथ हासिल कर लिया था कि पौधा देखते ही उसकी वैज्ञानिक पहचान बता देते थे। उनके जीवन, कार्य तथा रचनाओं पर प्रकाश डाला है उनके सुपुत्र श्री उमेश चन्द्र शाह ने अपने लेख 'वाकिंग इनसाइक्लोपीडिया ऑफ हिमालयन फ्लोरा' में। श्री उमेश शाह कई लेख लिख चुके हैं तथा अपने पिताजी की पाण्डुलिपियों तथा पौधा-संग्रह को सहेज कर रखे हुए हैं। संपर्क : 282, शिवमंदिर मार्ग, रानीखेत, पिन—263648

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

97 पर्वतीय क्षेत्र में पशुपालन का महत्त्व कृषि या औद्यानिकी से कम नहीं है। तथापि, पशुधन की हालत और उत्पादन के आंकड़े कोई उत्साहवर्धक नहीं हैं। कुमाऊं और गढ़वाल मण्डलों में पशुधन की स्थिति और उससे जुड़ी समस्याओं का जायजा लिया है डॉ. एस. के. भदूला ने अपने लेख 'लाइवस्टाक प्रोडक्शन इन यू. पी. हिल्स' में। डॉ. भदूला पर्वतीय कृषि और पशुधन विकास के क्षेत्र से लम्बे समय से जुड़े हुए हैं। वे कई महत्त्वपूर्ण अनुसंधान, शिक्षण तथा प्रशासनिक पदों पर कार्य कर चुके हैं। संपर्क : प्राध्यापक, पशु विज्ञान विभाग, पंतनगर कृषि विश्वविद्यालय, पंतनगर।

---

901 'नखलिस्तान में रेगिस्तान' की सी स्थिति है नैनीताल जिले के भाबर की। ऊपर पर्वतों में पानी, नीचे तराई में पानी, पर भौगोलिक बनावट के कारण बीच की इस संकरी पट्टी में उपलब्ध जल का घोर संकट। इस सदी के अंत तक तो यह संकट और भी गम्भीर हो जाएगा—यदि अभी से समस्या के समाधान के उचित प्रबन्ध नहीं किए गए तो भाबर के जल-संकट का एकमात्र उत्तर है जामरानी परियोजना, जिसके प्रत्येक पक्ष पर प्रकाश डाल रहे हैं योजना से सम्बन्ध भूविज्ञानी श्री आर. एनवालगन तथा सिंचाई विभाग के अधिशासी अभियन्ता श्री बी. के. त्रिपाठी। प्रस्तुत विवेचना तथ्यों तथा कुमाऊं विश्वविद्यालय के तत्वावधान में किए गए वैज्ञानिक शोध कार्य पर आधारित है। संपर्क : जामरानी डैम कालोनी, काठगोदाम (जि. नैनीताल)—263126।

---

115 पर्वतीय इलाकों में कृषि जब प्रकृति-प्रदत्त सीमायें लांघकर, वन-क्षेत्र में घुसपैठ करने लगे, तो परिणाम घातक हो सकते हैं। इसके एक पारिस्थितिक असंतुलन पैदा हो जाता है, जो समूचे पर्यावरण को प्रभावित करता है। अत: पर्वतीय कृषि की योजना बनाते समय वनों, घास-स्थलियों तथा मिट्टी के सुप्रबन्ध एवं जल संरक्षण पर ध्यान देना जरूरी है। उत्तराखण्ड की कृषि परिस्थितिकी के इन्हीं पहलुओं का विवेचन किया है वैज्ञानिक युगल डॉ. उमा तथा निरंजन मेलकानिया ने, अपने प्रपत्र 'एग्रोईकोसिस्टम ऑफ उत्तराखण्ड' में। डॉ. उमा ने हिमालयी वनों के पारिस्थितिक पहलुओं पर उच्च अध्ययन किया है तथा बीस से अधिक शोध पत्र लिखे हैं। संपर्क : सहायक प्राध्यापक, पर्यावरण विज्ञान विभाग, पंतनगर कृषि विश्वविद्यालय पंतनगर।

---

126 तथाकथित आधुनिकता की चपेट में आकर हमारी नई पीढ़ी परम्पराओं, संस्कृति और परिवेश से जिस प्रकार कट रही है, उसे देखते हुए—कोई आश्चर्य नहीं कि कल हम अपने को मानव मूल्यों और मानवीयता से परे पाएं। अब समय आ गया है कि अपने-अपने दायरे में, हम सब अपनी सांस्कृतिक विरासत को बचाने के प्रयास में जुट जाए। इसी उद्देश्य को समर्पित संस्था है उत्तराखण्ड शोध संस्थान—जिसके लक्ष्य, संकल्प, कार्यक्रमों की बानगी प्रस्तुत है रिपोर्ट "उत्तराखण्ड शोध संस्थान की प्रगति यात्रा" में।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

झरोखा

उत्तराखण्ड द्वितीय

★ रोजनामचा यारकंद — पं० नैनसिंह

★ शैलेश मटियानी का आंचलिक साहित्य — ओमप्रकाश गंगोला

★ उत्तराखण्ड में पर्वतारोहण — जगदीश चन्द्र ढोंढियाल

★ बैरिस्टर मुकंदीलाल — शेखर पाठक

★ U. P. Himalaya Needs Environmental Planning — Arvind Pant

★ Forests In Uttarakhand — Uma & N. P. Melkania

★ History of Panchayat Forests in U. P. Hills — Ajay Rawat

★ Epigrahical Evidences On Kumaun History — N. N. Misra

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तराखण्ड में संस्कृति की प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमि

यशोधर मठपाल

पृथ्वी के आविर्भाव से लेकर आज तक के समग्र कालमान को यदि 24 घन्टे का एक रंगमंचीय नाटक मान लें तो मनुष्य नामक विचित्र प्राणी इस रंगमंच पर अन्तिम आधे घन्टे में आया—यानि 23½ घन्टे बीत जाने पर; और मानव (Homo) जाति के विगत 39 लाख वर्षों की जीवन-अवधि को यदि एक घन्टे में सीमित कर दें तो हमारी वर्तमान तथाकथित सभ्यता का कालमान मात्र आधे मिनट का रह जाएगा। जिस भू-भाग को हिमालय की संज्ञा दी गई है, वह पाँच करोड़ वर्ष पूर्व कहीं था ही नहीं। इण्डोब्रह्म नामक महानद—जो आज सहायकों समेत सिंधु, गंगा तथा ब्रह्मपुत्र के रूप में छिन्नाधार हो गया है—लगभग तीन करोड़ वर्ष पूर्व अस्तित्व में आया था। इसी में, डेढ़ करोड़ वर्ष पूर्व, एक चिंपांजीनुमा प्राणी आया जिसने लगभग 60 लाख वर्ष पूर्व तक, दक्षिणी चीन से लेकर मध्य यूरोप और उत्तरी अफ्रीका के सघन दलदली भू-भाग में विचरण किया। भारत की भूमि में प्रथम बार 1932 में उसके अवशेष एक अमरीकी शोधछात्र जी. ए. लेवी की दृष्टि में आए। भारतीय मर्यादा के सर्वोत्तम आदर्श—श्रीराम के नाम पर उस अदने से मानव-पुरखे का नाम रखा गया—रामपिथेकस (श्रीराम का वानर)। विगत पाँच दशकों में कई मानवसम पूर्व-पुरुष भूमण्डल के कई भागों में खोजे जा चुके हैं किन्तु रामपिथेकस की अस्मिता के कोई प्रश्न चिन्ह नहीं लगा पाया है। वैज्ञानिक संसार में रामपिथेकस आज भी मानव वंश का सबसे समाधान कारक पुरोधा है। गर्व का विषय है कि यह प्राणी हिमालय की शिवालिक श्रेणियों में अपना जैविक अस्तित्व छोड़ गया, जिसके कारण भारत और विशेष रूप से हिमालय को मानव की जन्मस्थली माना जा सकता है।

सवा मीटर कद वाला रामपिथेकस शाकाहारी था और अपना अधिकतम समय पेड़ों पर बिताया करता था। भोजन की तलाश में वह यदा-कदा जब भी नीचे उतरता, तो सवाना की लम्बी घास में छिपे अपने अमिषभोजी रिपुओं की टोह लेने पिछली टाँगों पर खड़ा होकर चलता था। यही द्विपादचरित् उसे क्रमश: मानवता की ओर लाता गया। उसके पास प्रतिद्वन्दी वानरों तथा हिंस्र पशुओं के समान नुकीले श्वदंत नहीं थे, जिनका प्रदर्शन कर वह चुनौती स्वीकार कर सकता। अत: अनुमान किया जाता है कि वह किसी न किसी प्रकार के हथियारों का प्रयोग अपनी सुरक्षा के लिए करता था। उसके तालू की बनावट से भी लगता है कि वह चिंपांजी जैसे वानरों की अपेक्षा अधिक मुखर था। वह आदिम, अपरिपक्व भाषा का प्रयोग करता था, जिसमें नाना प्रकार की ध्वनियाँ, बोल, संकेत और भावभंगिमाएँ सम्मिलित थीं। वह छोटे-छोटे झुण्डों में रहता था। दस वर्ष की आयु में ही वह युवा हो जाता था तथा 30 वर्ष की अवस्था से पूर्व काल का ग्रास बन जाता था (बी. कुर्तन, 1972 : नॉट फ्रॉम द एप्स)। चिंपांजी आदि वानरों की तुलना में उसमें मानवीय अभिलक्षण अधिक मात्रा में विद्यमान थे। हमारी सभ्यता के मूल आधार—दो पाँवों से चलना (जिसने हाथों को भ्रमण कार्य से छुट्टी दिला कर कुछ सृजन करने का सुयोग प्रदान किया) और उपकरण तथा भाषा का प्रयोग करना (जिनके आधार पर ही सारी तकनीकी उन्नति और ज्ञान का प्रचार-प्रसार सम्भव हो सका)—हमें सर्वप्रथम रामपिथेकस द्वारा ही प्रदान किए गए। इस प्रकार हिमालय में मानव संस्कृति का उष:काल रामपिथेकस के दिनों से आरम्भ हो चुका था—आज से लगभग डेढ़ करोड़ वर्ष पूर्व ही।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह सच है कि रामपिथेकस का कोई भी कंकाल उत्तराखण्ड-वर्ती शिवालिक श्रेणियों में उपलब्ध नहीं हुआ है। पर यह अनुपलब्धि शोध-कार्य के अभाव से है, न कि जीवाश्मों के अकाल से। जब पुरानी दुनिया में, उत्तरी गोलार्द्ध की समग्र मध्यवर्ती पेटी, 80 लाख वर्षों के लम्बे काल में (एक करोड़ 40 लाख से 60 लाख वर्ष पूर्व के मध्य) रामपिथेकस के अस्तित्व को स्वीकारती है, जब मात्र उत्तर प्रदेश के शिवालिक में वह नहीं था—यह विचार सत्य के विपरीत है। भारत की गर्म-जलवायु और लवणयुक्त माटी में वैसे भी प्राचीन जीवाश्म बहुत ही विरल अवस्थाओं में सुरक्षित रह सके हैं। तब यह सौभाग्य ही कहा जाएगा कि रामपिथेकस के तृतीय कल्प के अवशेष सुरक्षित रह गए।

हिमालय तथा समीपवर्ती क्षेत्रों में पाषाण-कालीन सांस्कृतिक निधि कालजयी पाषाण उपकरण हैं जो 10 लाख वर्ष तक प्राचीन हैं। कुछ पूर्व-पुरापाषाणकालीन उपकरण अल्मोड़ा जनपद की पश्चिमी रामगंगा घाटी तथा नैनीताल जनपद में खुटानी नाले में पिछले दशक में उपलब्ध हुए, जो लगभग एक लाख वर्ष प्राचीन हैं। विधिवत् अन्वेषण करने पर अन्यत्र भी पाषाण उपकरणों की प्राप्ति हो सकती है।

उत्तराखण्ड में पाषाणकाल के अन्य अवशेष गुफाचित्र, अलंकृत शिलाखण्ड और शवाधान हैं। सर्वप्रथम प्रकाश में आने वाला कलाकेन्द्र लाखु उड्यार है, जो अल्मोड़ा-पिथौरागढ़ मार्ग पर, अल्मोड़ा से 20 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। लाखु उड्यार का शब्दार्थ है—एक लाख गुफाएं। यह संज्ञा ही अनगिनत गुफाओं की साक्षी है। हिमालय की गोद में दो सरिताएँ जहाँ से एक होकर सर्पाकार वर्तुल में उत्तर की ओर मुड़कर ,सुयाल' बन जाती हैं और जिनके तटों के दोनों ओर चीड़ वृक्षों के झुरमुट में आमने-सामने निहारते कई शिलाश्रय दृष्टिगत होते हैं, वही है लाखु उड्यार। प्रागैतिहासिक कला का आकर्षक केन्द्र। इसके पूर्वी तट से लगा 50 मीटर ऊँचा पर्वत पार्श्व है। इसके कूट में भव्य, प्रमुख चित्रित शिलाश्रय स्थित है, जो उत्तर-पश्चिम को मुँह किए सरिता-संगम को निहारता रहता है। इसका आठ मीटर लम्बा और दो मीटर चौड़ा फर्श उत्तर की ओर ढलवा है। मुख्य शिलापट फर्श से शनै-शनै वर्तुलाकार, ऊपर उठता है। जल लहरों की भाँति, एक के बाद एक समानान्तर परतें इस पट पर दिखाई देती हैं। शिलापट लगभग 6 मीटर आगे निकल कर शिलाश्रय की छत में परिवर्तित हो जाता है। छत के नीचे दरारों में कुछ पौधे भी उग आए हैं।

पूरा शिलाश्रय चित्रित है। सूर्य के प्रकाश, वायु के थपेड़ों और वर्षा की बौछारों को झेलते अधिकांश चित्र धुँधले हो चुके हैं—विशेषकर फर्श के समीपवर्ती चित्र। चित्रों के ऊपर शिला-गत रसायन और पानी के सहयोग से एक पारदर्शी श्वेत परत भी जम चुकी है। इसलिए आकृतियों के पूरे संयोजन को पानी से भिगोने पर ही स्पष्टता से देखा जा सकता है। चित्रण का मुख्य विषय समूहबद्ध नर्तक है। ये नर्तक बाहों में बाँह सटाए, सिर में भारी, लटकते मुखौटे लगाए और लम्बे लबादे पहने हैं। नर्तकों के अलावा पशु और अलंकारिक आलेखन भी चित्रित किए गए हैं। कुछेक श्याम एवं सफेद आकृतियों को छोड़, समग्र चित्रण गहरे गुलाबी और सिंदूरी रंगों से हुआ है। गुलाबी और सिंदूरी का यह भेद दीर्घ आयु, असमान रासाय-निक प्रक्रिया और चित्रों की स्थानगत सुरक्षित-असुरक्षित स्थिति के कारण भी हो सकता है।

दांए किनारे से—जो कि शिलाश्रय में पहुँचने का मार्ग भी है—सर्वप्रथम सरल शैली में नौ मनुष्य नृत्य करते अंकित हैं। इससे कुछ हट कर, बांयी ओर को, काफ़ी धुंधली पड़ी दो नृत्यावलियाँ हैं, जो लाल अंकित हैं। एक सहस्त्रपादनुमा सीधा खड़ा आलेखन, एक पतले मुँह वाला पशु और नौ मानव काले रंग में चित्रित किए गये हैं। इनसे कुछ नीचे 6 नर्तक भी काले रंग में ही चित्रित हैं। इनके नीचे बांयी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ओर को एक बेलनाकार आलेखन खड़ी तथा पड़ी, वर्तुल, लाल रेखाओं में बनाया गया है। कुछ ऊँचाई पर दो पंक्तियों में हस्तवद्ध मानव हैं। प्रथम पंक्ति में 11 मानव स्पष्ट हैं, जबकि निचली पंक्ति में सभी धुंधले पड़ चुके हैं। इस दूसरी पंक्ति का क्रम बांयी ओर को कुछ दूरी से पुनः स्पष्ट होता है, जहाँ 6 लवादाधारी मानव पहचाने जा सकते हैं। प्रथम, द्वितीय और तृतीय मानव आकृतियों के सिरों में लगे भारी मुखच्छद्म मुख के दोनों ओर लटके हैं। मुखच्छदम समेत प्रत्येक मानव की ऊँचाई 7 से. मी. है। नर्तकों की ऐसी टोलियों के चित्रावशेष 12 अन्य स्थानों पर भी, बांयी ओर को, देखे जा सकते हैं।

एक अन्य संयोजन में 15 छोटे-बड़े मनुष्य और दो पशु चित्रित हैं। बड़ा पशु—जो थूथन से पूंछ तक 18 से.मी. लम्बा है—गर्भवती पहाड़ी बकरी का प्रतीत होता है। आकृति पशु प्रतिकृति न होकर सरलीकृत है जिसमें दो वर्तुल रेखाओं से सिर से पूंछ तक का पृष्ठभाग व गले से स्तनों तक का अधोभाग बड़ी कुशलता से अंकित किया गया है। यह ताम्रवर्णी आकृति पूरक शैली में बनी है और अन्य सभी आकृतियों से ललिततमा है। इस संयोजन के नीचे लहरदार शिलापट पर काफी धुंधली और लघु आकार की 27 मानवाकृतियाँ हैं। इन सबसे नीचे बांयी ओर को कई समानान्तर रेखाओं से निर्मित एक 1·5 मीटर व्यास वाला दीर्घवृत्त है। इसका कुछ भाग तो इतना अस्पष्ट हो चुका है कि इसमें प्रयुक्त लाल रंग चट्टान का मूल रंग लगता है।

बकरी की आकृति के ऊपर 12 मनुष्य और दृष्टिगत हुए हैं। इनमें से 6 तो ऊंचाई पर एक छोटे समतल में चित्रित हैं और शेष 6 इधर-उधर बिखरे हुए हैं। समतल पर बने मनुष्य लवादा ओढ़े हैं। नीचे बांयी ओर एक मनुष्य अपने दांये हाथ से बड़े आकार की किसी खरल-नुमा वस्तु को साधे हुए दिखाया गया है। मनुष्य के दोनों पाव जुड़े हुए हैं, और बांया हाथ उठा हुआ। खरलनुमा, अद्भुत वस्तु का मुख भी

लाखु उड्यार शिलाश्रय, टोकरीनुमा वस्तु थामें मानव

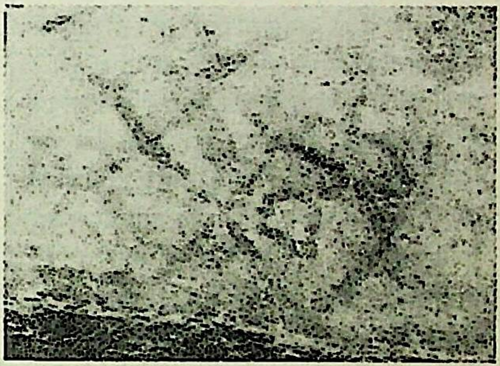

फड़कानौली शिलाश्रय, नृत्यरत मानव

ऊपर से ढका है। यह किस वस्तु का अंकन है, कहा नहीं जा सकता। सम्मवतः यह मछली पकड़ने की 'रवद' नुमा कोई टोकरी है या फिर बच्चों को सुलाने के लिए प्रयुक्त 'चंवर' (बड़ी पिटारी)। दोनों में से किसी भी वस्तु की सम्भावना से इसलिए इन्कार नहीं किया जा सकता क्योंकि शिलाश्रय नदियों के अति समीप हैं और प्रागैतिहासिक मानव आज के निवासियों की भांति मछली पकड़ते रहे होंगे। फिर कुमाऊं के गाँवों में अभी भी कहीं-कहीं बच्चों को बड़ी पिटारियों में सुलाया जाता है। कभी इन पिटा-रियों को रस्सी से लटका कर झूलने का रूप दिया जाता है, तो कभी यों ही फर्श पर रखा जाता है। शिलाश्रयों में रहने वाले लोगों द्वारा इस प्रकार के 'चंवरों' का प्रयोग किया जाना असम्भव नहीं लगता (चित्र में प्रदर्शित)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक हाथ से आसानी से उठाई जाने वाली यह हल्की-फुल्की वस्तु घास या बांस की खपच्चियों से बनी हो सकती है। टोकरी और रस्सी का निर्माण तो मानव आज से लगभग 10 हजार वर्ष पूर्व, मध्यपाषाणकाल में ही कर चुका था।

इस दृश्य के नीचे खण्डित शिलापटों पर, तीन स्थानों पर मानवांकन है। काफी ऊंचाई पर छत में एक स्थान पर बिन्दुओं से निर्मित आलेखन हैं, तो दो अन्य स्थानों पर भूलभुलैया-नुमा डिजायन। बांयी ओर फर्श के समीप 6 और मानवाकृतियाँ हैं, जिनके ऊपर एक कांवर ले जाता मनुष्य है। बांयी ओर नर्तकों की तीन पंक्तियों के धुंधले अवशेष दिखाई देते हैं। इनमें से सबसे ऊपर वाली पंक्ति में दो तथा दूसरी और तीसरी पंक्तियों में आठ-आठ मनुष्य अधिक सुरक्षित अवस्था में हैं। इन नर्तकों के नीचे एक कोणाकार आलेखन और 10 नृत्य टोलियों के अवशेष दृष्टिगोचर होते हैं। इन टोलियों में जो सबसे ऊंचाई पर हैं, उसमें ऐसा लगता है कि मानो मानव झूला झूल रहे हैं। पाँच समानान्तर पंक्तियों का एक अन्य कोणीय आलेखन भी अंकित किया गया है। आलेखन के समीप 14 मनुष्य और एक पशु का अलंकृत पृष्ठ भाग भी दिखाई देता है।

छत की मुंडेर—जो बांयी ओर काफी दूर तक गोलाकार मुड़ कर चली गयी है—के नीचे पंक्तिबद्ध मानव आंके गए हैं। आश्चर्य होता है कि इस दुर्गम शिलापट पर कैसे इतनी ऊँचाई में अंकन किया गया होगा ! वहां न सीढ़ी लगाकर पहुंचा जा सकता है और मचान बाँध कर, क्योंकि इस ओर के शिलाश्रय में फर्श खड़ी चट्टान में परिवर्तित हो गया है जिससे वहाँ खड़े होने का भी स्थान नहीं है। लगता है कि सहस्राब्दियों पूर्व जब चित्र लिखे गए थे तो शिलाश्रय का फर्श अधिक चौड़ा रहा होगा, जो कालान्तर में टूट कर गिर गया।

शिलाचित्रों के ऊपर लाल रंग से देवनागरी से मिलती-जुलती लिपि में कुछ लिखावट की गई है, जो पढ़ी नहीं जा सकी। सुयाल के पश्चिमी तट से लगे दो छोटे शिलाश्रयों में रामरज और गेरू की ताजी पुताई की गई है और ॐ, सीताराम तथा 1008 तपसी बाबा की गुफा आदि लिखा हुआ है। इन्हीं तपसी बाबा की प्रेरणा ने कुछ ऊंचाई पर टीले में पाँच छोटे-छोटे सुन्दर मन्दिरों का निर्माण कराया जो उन पर लगे संगमरमर से सिद्ध होता है। मन्दिरों के बांयी ओर मोटर मार्ग से लगा एक और शिलाश्रय है जिसमें भी प्राचीन चित्रों के अवशेष बचे हैं। लाल रंग की महीन रेखाओं से निर्मित अधिक प्राचीन चित्र धुंधले हो चुके हैं, जबकि परवर्ती सफेद आकृतियाँ, जो सरलीकृत मानव लगते हैं, अपेक्षाकृत स्पष्ट हैं। गेरू की ताजी पुताई के नीचे भी, दोनों छोटे शिलाश्रयों में प्राचीन चित्र रहे होंगे (यशोधर मठपाल, 1980 : नवभारत टाइम्स)।

अल्मोड़ा जनपद में प्रागैतिहासिक कला के अन्य केन्द्र हैं फड़कानौली, फलसीमा और कसार देवी। फड़कानौली की दो गुफाएं अल्मोड़ा-पिथौरागढ़ राजमार्ग पर सड़क से बांयी ओर लगभग 100 मीटर की ऊंचाई पर स्थित हैं। यह स्थान अल्मोड़ा से 15 कि. मी. उत्तर-पूर्व में है। तीसरी गुफा चुंगी चौकी के पास दांयी ओर उस चट्टान के नीचे है, जिस पर अब पक्के मकान बन चुके हैं। बांयी ओर की प्रथम गुफा जिसकी छत लगभग 6 मीटर आगे निकली है तथा जमीन की ओर क्रमशः आते हुए भीतरी दीवाल में विलीन हो जाती है—का फर्श भी चट्टानी है। इस शिलाश्रय के भीतरी खड़े पट पर कई स्थानों पर प्राचीन चित्रों के अवशेष विद्यमान हैं। बांयी ओर से सर्वप्रथम लगभग दो मीटर की ऊँचाई पर, चार मनुष्य एक पंक्ति में खड़े दृष्टिगत होते हैं। दाहिनी ओर कुछ नीचाई पर, छोटी-छोटी रेखाओं से एक रेखा निर्मित की गई है, जिसके आगे मनुष्यों की एक लम्बी कतार है जिसमें से 40 स्पष्ट तथा शेष धुंधले हैं। कुछ ऊँचाई पर एक आलेखन आँका गया है। लगभग 14 स्थानों पर, दांयी ओर को, चित्रण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के अवशेष विद्यमान हैं। और दांयी ओर 2·5 मीटर की ऊंचाई पर मानवों की एक और पंक्ति चित्रित की गई है। उसके नीचे पर्वत के आकार का आलेखन भी बनाया गया है।

दूसरा शिलाश्रय, जो पहले के दांयी ओर स्थित हैं, उत्तराभिमुखी है। इसकी छत 4·50 मीटर आगे निकली है तथा धरातल ऊँचा होने से, भीतर का भाग अधिक सुरक्षित है। इसमें 10 स्थानों पर चित्रों के अवशेष विद्यमान हैं। बांयी ओर प्रवेशद्वार के समीप लघु मानवों की एक टोली हाथ में हाथ थामे नृत्यरत है। इसके दांयी ओर एक वर्तुल आलेखन है। इससे कुछ ऊँचाई पर खड़े मानवों की कई पंक्तियाँ दिखाई गई हैं और दांयी ओर, एक के ऊपर दूसरा—ऐसे तीन स्थानों पर मानवों का क्रमश: अंकन किया गया है। इनसे सबसे ऊपर वाला हाथ सम्भवत: जोड़ा खाते नर-नारी का है। विपरीत दिशाओं को सिर किए, हाथ फैलाए दो मानव ऐसे आँके गए हैं, कि उनका अधोभाग एक हो गया है। समग्र आकृति 22 से.मी. लम्बी है। दांयी ओर चार स्थानों पर मानव अंकित हैं। इनसे 10 से.मी. ऊँचाई पर चार आदमी पुन: परस्पर हाथ बाँधे हैं। इन सबसे थोड़ा दाहिनी ओर हटकर, एक 13 से.मी. लम्बा सिरविहीन मानव, अकड़ा हुआ-सा खड़ा, चित्रित किया गया है। इस मानव के पांव उसके हाथों से भी छोटे दर्शाए गए हैं। सबसे दांयी ओर एक और मानव आकृति दृष्टिगत हुई है। ये सभी आकृतियाँ गहरे लाल रंग में आँकी गई हैं, जिनके ऊपर कहीं-कहीं सफेद रंग के अवशेष भी देखे जा सकते हैं। सड़क से नीचे स्थित तीसरे शिलाश्रय, जो आवास की दृष्टि से सबसे उत्तम है, के प्रवेश-द्वार पर सामने ही एक गैरिकवर्णी चित्र के अवशेष विद्यमान हैं—जिसके चित्रण के विषय का भान नहीं हो सका है।

फलसीमा का शिलाश्रय अल्मोड़ा से लगभग 8 कि.मी. दूर है। चितई के ग्वेल देवता के मन्दिर तक बस मार्ग है; आगे पैदल चलना होता है। शिलाश्रय पर्वत श्रेणी के दक्षिण-पश्चिमी ढाल पर स्थित है, जो बिल्कुल उथला है और जिसमें छत नाम की कोई चीज नहीं है। इसको शिलाश्रय कहना ही गलत है। यह मात्र खड़ा शिलापट है, जिसमें लाल रंग से अंकित चित्र, धूप और वर्षा की सीधी मार से नष्ट-प्राय: हो चुके हैं। कहीं-कहीं मानव तथा पशु आकृतियों के भग्न अवशेष पहचाने जा सकते हैं। कसार देवी पर्वत, जो अल्मोड़ा शहर से अधिक दूर नहीं है, में कई सारे भव्य शिलाश्रय हैं, जो यदाकदा मनुष्यों द्वारा आवास हेतु प्रयोग किए जाने के कारण धुंए से श्यामल हो चुके हैं। इनमें से एक पूर्वाभिमुखी शिलाश्रय में पंक्तिबद्ध नृत्यरत मानवों के दो संयोजन स्पष्टता से पहचाने जा सकते हैं। दोनों ही संयोजनों में मानव यष्टि आकार के हैं और गहरे लाल रंग से चित्रित किए गए हैं।

गढ़वाल की पहाड़ियों में गुफाचित्रों का प्रथम केन्द्र चमोली जनपद में है, जिसको प्रकाश में लाने का श्रेय गढ़वाल विश्वविद्यालय को है। चित्रित शिलाश्रय डुंग्री ग्राम से आधा कि.मी. उत्तर दिशा में, सीधी पहाड़ी के ऊपर अवस्थित हैं। डुंग्री ग्राम पहुंचने के लिए चमोली से चार किलोमीटर आगे, बद्रीनाथ मार्ग पर, छिनका तक जाना होता है। वहां से दो किलोमीटर की दूरी पर अलकनन्दा की दाहिनी ओर, उत्तरपूर्व दिशा में बढ़ने पर गाँव मिल जाता है। गाँव वाले गुफा को ग्वारख्या बड़्यार पुकारते हैं। गुफा का अधिकांश भाग टूट चुका है। गहरे लाल रंग में अंकित मानव और पशुओं की आकृतियाँ गुफा की सीधी चट्टान पर सुरक्षित हैं। कुल 18 मानव और 7 पशु दृष्टिगत होते हैं; सभी आकृतियाँ प्रतीकात्मक हैं। मानव देह को त्रिशूल के आधार की तरह सरल बना दिया गया है। इसमें पैरों के लिए एक कोष्ठक और जोड़ दिया गया है। पशु देह को भी एक आयत पर दो पाँव, एक सिर और पूंछ की संकेतात्मक रेखाएं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खींच कर अंकित किया गया है (अतुल सकलानी 1983 : पहाड़–1)।

उत्तरकाशी जनपद में हुंडुली गांव के पास, तथा पौड़ी में झंगरोली और ब्राह्मदुंगी स्थानों पर गुफाचित्रों के अस्तित्व का पता चला है। (मदन चन्द्र भट्ट, 1981 : उत्तर प्रदेश, पुरातत्व विशेषांक,)। इन शिलाचित्रों का अध्ययन अभी तक नहीं किया जा सका है, जिस कारण चित्रण की विषय-वस्तु अज्ञात है।

उत्तरखण्ड क्षेत्र में प्राप्त इन गुफा चित्रों का मुख्य विषय नृत्यरत मानव तथा पशु हैं। मुखौटेधारी मानव आपादमस्तक वस्त्रावृत हैं, जो लम्बी कतारों में हाथ बांधे नाच रहे हैं। इस प्रकार के नृत्य आदिम समाज तथा लोक जीवन के अभी भी अभिन्न अंग हैं। सामूहिक नृत्यों का अस्तित्व एक सुदृढ़ सामाजिक एकता और सुखमय जीवन-यापन का बोध भी कराता है। बकरी जैसे पशु पशुपालन, और हिरण सरीखे वन्य जन्तु आखेट की ओर इशारा करते हैं। भारी पहनावे, मुखच्छद्म और अलंकरण भी सांस्कृतिक तथा आर्थिक समृद्धि के द्योतक हैं। यद्यपि हमारे देश में 150 से भी अधिक क्षेत्र प्रागैतिहासिक कला के प्रकाश में आ चुके हैं और इनमें प्रदर्शित विषय वस्तु से विगत 10,000 से 20,000 वर्ष पूर्व के भारतीय जनजीवन की एक रोचक और स्पष्ट झाँकी हमें मिल जाती है, किन्तु 80 प्रतिशत कलाक्षेत्र मध्य भारत के, बोहड़ जंगलों से घिरे, पर्वतीय भूभाग में स्थित हैं। हिमालय तथा धुर दक्षिण में बहुत कम चित्रित गुफाएं उपलब्ध हुई हैं, जिस कारण इन क्षेत्रों में निवास करने वाले आदि मानव का एक अत्यप आयामी पक्ष ही उजागर हो पाया है। चूंकि उत्तराखण्ड प्रागैतिहासिक पुरातत्व के अध्ययन की दृष्टि से अभी तक अछूता है, अतः गुफाचित्रों की यह सीमित उपलब्धि स्वयं में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह इस क्षेत्र में प्रागैतिहासिक मानव के अस्तित्व को प्रामाणिकता प्रदान करती है।

उत्तराखण्ड में प्राचीन संस्कृति के अन्य अवशेष महापाषाणकालीन हैं। सन् 1856 में डब्ल्यू. जे. हेनउड ने एडिनबर्ग न्यू फिलोसोफिकल जरनल (न्यू सिरीज) में देवीधूरा के महापाषाणकालीन अवशेषों का विवरण प्रकाशित किया था। देवीधूरा भीमताल से 87 कि.मी. तथा लोहाघाट से 44 कि.मी. दूर, लगभग 2100 मीटर की ऊँचाई पर स्थित, एक रमणीक स्थान है। लेखक को वाराहीदेवी मंदिर क्षेत्र में ग्रेनाइट के बड़े-बड़े शिलाखण्ड तथा गुफाएँ दृष्टिगत हुईं। इन शिलाखण्डों पर उत्कीर्ण रेखाओं तथा गड्ढों द्वारा चित्रण किया गया है। सन् 1877 में एच. आर. कार्नाक (जनरल ऑफ द एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, XLVI) ने अल्मोड़ा जनपद में रानीखेत के समीपवर्ती द्वाराहाट नामक स्थान की शिलागत आकृतियों पर एक लेख प्रकाशित किया। यहाँ चन्द्रेश्वर मंदिर से लगभग 180 मीटर दक्षिण में एक चट्टान पर अलग-अलग आकार के 200 कपमार्क (उथले गड्ढे) अंकित हैं, जो समानान्तर पंक्तियों में खुदे हैं। इसी प्रकार के 73 दीपनुमा कपमार्क लेखक को द्वाराहाट से लगभग 30 कि.मी. पश्चिम में, रामगंगा की घाटी में स्थित नौलाग्राम के देवी-मंदिर के आहते में, पीपल वृक्ष के नीचे एक चट्टान में अंकित मिले हैं। एक वृहत् उत्कीर्ण शिलाखण्ड अभी कुछ दिन पूर्व रानीखेत-द्वाराहाट मार्ग पर स्थित नौगाँव में भी लेखक की दृष्टि में आया है। नौलाग्राम में महापाषाण काल के अन्य अवशेष भी विद्यमान हैं, जिनका अभी विधिवत् अध्ययन नहीं हो सका है।

सन् 1975 में जब बद्रीनाथ को जाने वाला मोटरमार्ग और चौड़ा बनाया जा रहा था तो नौलागाँव के समीप अनेक शवाधान उघड़ पड़े थे। ये कब्रें, जो जमीन से एक फुट से अधिक नीचे नहीं हैं, साढ़े सात फुट लम्बी, ढाई फुट चौड़ी तथा तीन फुट गहरी हैं। ये चारों ओर से बादामी रंग के चपटे पत्थरों से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

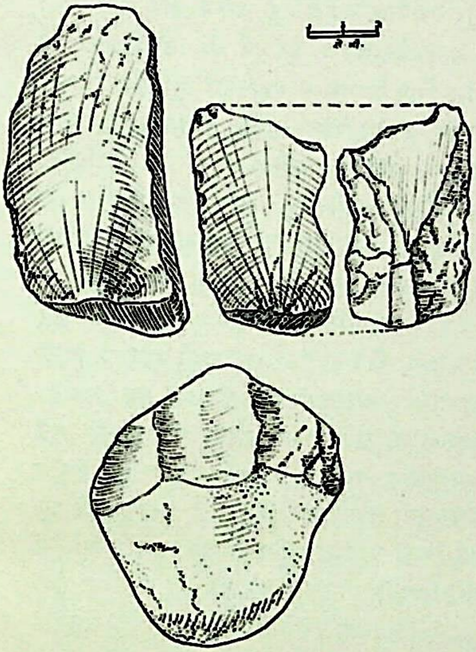

अल्मोड़ा जनपद में प्राप्त पूर्व पुरापाषाण कालीन अस्त्र

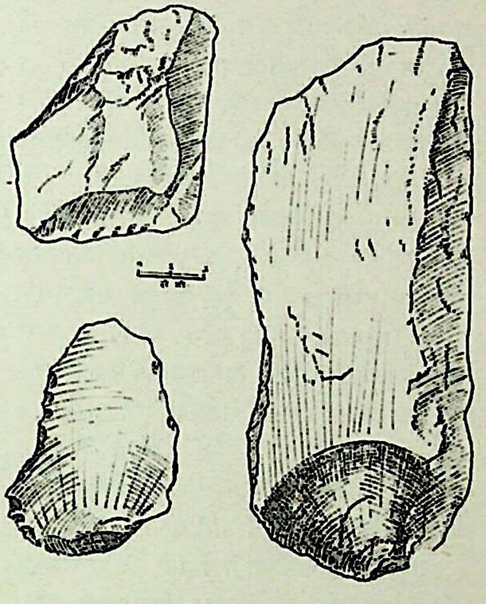

नैनीताल जनपद में प्राप्त पूर्व पुरापाषाण कालीन अस्त्र

ढंकी हुई हैं और इनकी दिशा पूर्व-पश्चिम है। इनमें घूसर रंग का, कहीं-कहीं रेखाओं से अलंकृत, चौड़े मुंह वाला, कटोरीनुमा मिट्टी का वर्तन, टोंटीदार लोटे तथा मनके आदि रखे हुए उपलब्ध हुए हैं। नौला और समीपवर्ती जैनल गाँव के ठीक सामने लगभग दो कि.मी. क्षेत्र में ये शवाधान बिखरे पड़े हैं। जिस पत्थर में 73 कपमार्क खुदे हैं, वह इन्हीं के बीच में हैं। लगभग सौ वर्ष पूर्व जो धर्मशाला यात्रियों के लिए नौला ग्राम के साहूकार ने बनवाई थी, उसके दरवाज़ों पर पाँच फुट लम्बे तथा फुट भर मोटे पत्थरों के आड़े अवरोध लगाएग ए थे, ताकि जानवर कमरों में न घुस सकें। इसी प्रकार के अवरोध कपमार्क वाले मंदिर की चारदीवारी में भी लगे हैं। बहुत संभव है कि ये पत्थर इन्हीं शवागारों के ऊपर खड़े किए गए महापाषाणों के अवशेष हैं। इन शवागारों में हड्डियां नष्ट हो चुकी हैं और मात्र छोटे-छोटे टुकड़े ही बचे हैं। आस-पास जब भी ये शवागार निकलते हैं तो स्थानीय लोग इन्हें रुहेलों की कब्रें बताते हैं। सन् 1743–54 में कुमाऊं की सम्पदा को लूटने को अली मोहम्मद खाँ के तीन नामी सरदार 10 हजार की सेना लेकर पहाड़ों में घुसे थे। किंवदन्ती है कि वे बद्रीनाथ को भी लूटना चाहते थे किन्तु हैजा होने से वहां तक न पहुंच सके और रास्ते में ही नष्ट हो गए यह निश्चित है कि ये कब्रें रुहेलों की नहीं हैं क्योंकि इनकी स्थिति उत्तर-दक्षिण को नहीं है जैसीकि इस्लामी कब्रों की होती है। वैसे भी हताश, भागते, पहाड़ी पेचिश से मरते, रुहेले इतने भारी-भरकम पत्थरों से ऐसी मजबूत कब्रें नहीं बना सकते थे। ये शवाधान जमीन के नीचे हैं तथा इनके ऊपर किसी प्रकार का कब्रनुमा निर्माण नहीं किया गया है। यदि ये कब्रें मात्र दो-सवा दो सौ वर्ष पुरानी होतीं, तो इनमें कंकालों की हालत इतनी गई बीती न

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होती। फिर इनके साथ परलोक-यात्रा की सामग्री, बर्तन आदि होना इस्लामी परंपरा के अनुकूल नहीं है। जो पत्थर इन शवाधानों के लिये प्रयोग किया गया है, वह भी कहीं समीप में उपलब्ध नहीं है। रुहेलों की कब्रें न होने का सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि इस क्षेत्र में न रुहेले आए, न रहे और न ही इधर से लौटे। इनके हमले का मार्ग काठगोदाम भीमताल होते हुए अल्मोड़ा तथा पूर्वी कुमाऊं था, न कि पश्चिमी कुमाऊं का यह दुर्गम भूभाग। दूसरी ओर लेह आदि में प्राप्त हिमालयवर्ती महापाषाण-कालीन अन्य शवाधानों से इनका पूर्ण साम्य है। अतः इसमें संदेह नहीं है कि पश्चिमी रामगंगा घाटी के ये शवाधान महापाषाण कालिक हैं— लगभग तीन हजार वर्ष प्राचीन*।

उत्तराखण्ड के समीपवर्ती मैदानी क्षेत्र में राजपुर (बिजौरजनपद) तथा भद्रावाद (जिला सहारनपुर) में ताम्र निधान संस्कृति के निखाट मिले हैं। इसी प्रकार काशीपुर (नैनीनाल जनपद) के समीप चित्रित धूसर-भांड संस्कृति के अवशेष मिले हैं। धनपुर, पोखरी (गढ़वाल), अस्कोट (पिथौरागढ़) तानाठौन तथा गंगोली (अल्मोड़ा) की तांबे की और यत्र-तत्र दर्जन भर कच्चे लोहे की खानों ने आद्यऐतिहासिक युग में भी उत्तराखण्ड के सांस्कृतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई होगी, इसमें संदेह नहीं (यमुनादत्त वैष्णव अशोक, 1983 : सुमित्रा नंदन पंत स्मारिका, कौसानी)। पिथौरागढ़ नगर के उत्तरपूर्व में भटकोट की पहाड़ियों पर कई गुफाएं हैं, जिनके आस-पास के ढाल पर प्राचीन मृद भांडों के हजारों टुकड़े प्रतिवर्ष बरसात में पृथ्वी के गर्भ से उद्भूत होते रहते हैं। पहाड़ी ढाल में काफी गहराई पर जानवरों की हड्डियों एवं मानव-कंकालों की क्षतिविक्षत शकल से भरी हुई कई समानान्तर परतें भी (जहाँ मिट्टी का कटाव किया गया है) दिखाई देती हैं। निश्चय ही यह क्षेत्र किसी प्राचीन संस्कृति को अपने अंचल में सहेजे, भावी शोधकार्य की प्रतीक्षा कर रहा है।

ऐतिहासिक पुरातत्व की दृष्टि से उत्तराखण्ड अत्यन्त धनी है। जो कुछ भी प्रागैतिहासिक संस्कृति का दिग्दर्शन इन पृष्ठों में हुआ है, वह हिमशैल का केवल कूट भर है। हिमालय का यह क्षेत्र चूने-पत्थर की दीर्घ गुफाओं से भरा पड़ा है। जलवायु और भू-संरचना की दृष्टि से भारत का यही भाग दक्षिण-पश्चिमी यूरोप से मिलता-जुलता है, जहाँ चतुर्थ हिमयुग के उतार पर (उत्तर पुरापाषाण काल में) वह क्रोमैग्नन मानव रहता था, जिसने लगभग 30,000 वर्ष पूर्व कला और शिल्प का सूत्रपात ऐसी ही चूने-पत्थरों की गुफाओं में किया था। हमारे देश में मध्यपाषाण कालीन गुफा कला का प्रधान केन्द्र विन्ध्याचल है। इससे पुरानी पुराणकालीन कला तथा संस्कृति यदि कहीं मिल सकती है तो निश्चित ही हिमालय क्षेत्र में। □

*इसके विधिवत् उत्खनन हेतु एक योजना लेखक ने भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण विभाग को दी है, जो अभी स्वीकृत नहीं हुई। पुरातत्व विभाग के उपमहा-निदेशक श्री जगतपति जोशी जी ने इन शवाधानों के रहस्योद्घाटन में रुचि दिखाई तथा इनकी स्थिति का विवरण भी लेखक से ज्ञात किया। उन्होंने सुझाया कि इस विषय की प्रासंगिक जानकारी समाचार-पत्रों को दी जाए। नैनीताल से निकलने वाले हिमालयी पर्यावरण, समाज, संस्कृति और इतिहास के वार्षिक शोध ग्रंथ पहाड़-2, 1986 में इन कब्रों पर लेखक द्वारा प्रकाश डाला गया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुमाऊँ के कुछ प्राचीन मन्दिर

भुवनलाल शाह

कूर्माचल में प्राचीन काल में जहाँ भी मन्दिरों का निर्माण हुआ, वह आवादी से हट कर कोई शान्त तथा रमणीक स्थल, अथवा देवदार या चीड़ के वनों के मध्य स्थित, या पुराणों से सम्वन्धित कोई स्थान था। इन मन्दिरों तक पहुँचने की आम सुविधा न होने तथा इलाके के बीहड़ होने के कारण ही ये प्रदेश के अनेक मन्दिरों की भाँति नष्ट होने से बच गये। पिछले कुछ वर्षों में इनके निकट तक मोटर मार्गों के बन जाने के फलस्वरूप अब इन मन्दिरों तक-रास्ते में हिमालय, सीढ़ीनुमा खेतों तथा देवदार या चीड़ के वनों का आनन्द लेते हुए—सुगमता से पहुँचा जा सकता है। यदि कोई इन स्थानों में रहना चाहे, तो पर्यटक आवासों, डाक-बंगलों तथा निरीक्षण भवनों या आसपास की दुकानों में रह सकता है। कुछ प्रमुख प्राचीन मन्दिरों का सैलानियों की दृष्टि से उपयोगी विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

द्वाराहाट : उत्तर-पूर्व रेलवे पर अन्तिम स्टेशन काठगोदाम से 127 कि.मी. तथा पर्वतीय छावनी रानीखेत से 35 कि.मी. की दूरी पर बसा द्वाराहाट अतीत में कुमाऊं के प्राचीन कत्यूरी राजाओं की एक शाखा की राजधानी थी। यहां पर बने तीस मन्दिरों, कई नौलों (पानी के पक्के कूल) तथा चन्द्रगिरि पर्वत पर बने किले के अवशेषों से कत्यूरी राजाओं के काल में इस स्थान के वैभव का अनुमान सहज ही लगाया सकता है। कहा जाता है कि कत्यूरी राजाओं ने अपने किले के निर्माण में दीवार के पत्थरों को जोड़ने के लिये गारे के स्थान पर मास (उड़द) पीसकर लगाया था।

किले के निकट बाजार स्थित है, जिसके मध्य में प्राचीन शालदेव का पोखरा (कुण्ड) है। कुछ वर्ष पूर्व तक सुन्दर कमलों के कारण यह आकर्षण का केन्द्र-बिन्दु था परन्तु अब पोखरे का जल निकाल देने के कारण यह नष्ट होता जा रहा है। इस पोखरे से लगभग 110 मीटर की दूरी पर द्वाराहाट का सबसे सुन्दर गूजरदेव का मन्दिर (ध्वज) है। इस मन्दिर के अवशेषों को देख कर प्रतीत होता है कि अतीत में यह आज से कहीं अधिक विशाल रहा होगा व उसमें मुख्य मन्दिर के अतिरिक्त मण्डप तथा कई अन्य भाग भी रहे होंगे। मन्दिर का शिखर तथा सामने का भाग गिर चुके हैं। तीन ओर की दीवारों तथा चौकी का जो भाग बचा हुआ है, उससे स्पष्ट है कि यह कत्यूरी शासनकाल के दौरान द्वाराहाट का प्रमुख मन्दिर रहा होगा। मन्दिर के बाहरी भाग में देव मूर्तियों की भरमार है। मन्दिर की चौकी, जो भूमि से लगभग सवा मीटर ऊँची है, में हाथियों तथा पुरुषों की कतारों का अंकन है।

गूजरदेव के मन्दिर से थोड़ी दूरी पर, खेतों के बीच कंटीले तार से घिरा मन्दिरों का एक छोटा-सा समूह दिखाई देता है। इन मन्दिरों से मूर्तियाँ हटाई जा चुकी हैं। मन्दिरों के बाहरी भाग में थोड़े-बहुत बेलबूटों का अंकन है परन्तु भीतरी भाग बिल्कुल सादे हैं। इन मन्दिरों से कुछ ही दूरी पर बसे गांव के बीच मन्दिरों का एक दूसरा समूह है, जो कचहरी देवाल के नाम से जाना जाता है। इस समूहों में दस मन्दिर हैं, जिनमें से कुछ के सामने बरामदा भी बना है। बरामदे की छत पत्थरों के सुन्दर स्तम्भों पर टिकी है। यहाँ के सभी मन्दिर इनमें प्रतिष्ठित देवी-देवताओं की प्रतिमाओं के लुप्त होने या हटा दिये जाने के कारण अपनी प्रतिष्ठा और आकर्षण खो चुके हैं और प्रायः निर्जन रहते हैं। इस कथन से द्वाराहाट के बीच से बहने वाली नदी (जिसमें केवल वर्षा ऋतु में ही पानी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

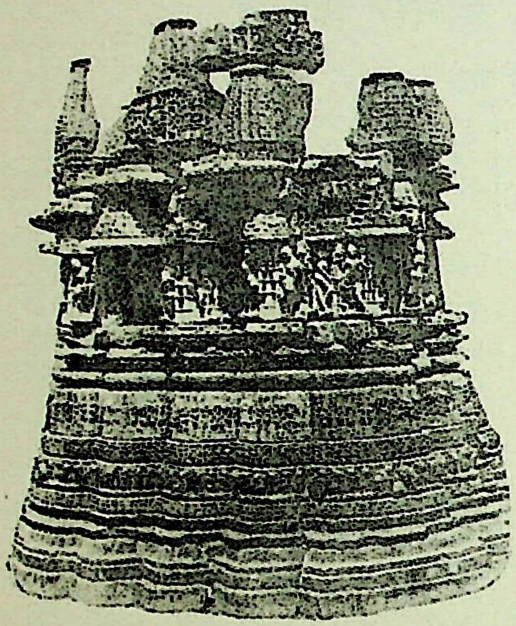

गूजरदेव का ध्वज, द्वाराघट

आता है) की ओर जाने के मार्ग में यहां के अब पूजे जाने वाले मन्दिर, बद्रीनाथ तथा केदारनाथ स्थित हैं। इन मन्दिरों की मूर्तियों को देखकर तथा इनमें से कुछ पर अंकित तिथि से इनके निर्माण की अवधि दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी प्रतीत होती है। इन मन्दिरों के निकट ही मृत्युंजय का मन्दिर है, जो सम्भवत: इसके पास से मोटर-मार्ग के निकाले जाने तथा यहाँ के निवासियों की लापरवाही के कारण, दयनीय हालत में है और क्षति-ग्रस्त हो चुका है।

द्वाराहाट के निवासियों का विश्वास है कि गूजरदेव के मन्दिर से पाण्डवों ने अपने वनवास के काल में धनागार का काम लिया था और वह धन अब भी इस मन्दिर में दबा पड़ा है। यही विश्वास 1943-44 में रोहिलों द्वारा कुमाऊं के इस भाग पर आक्रमण तथा यहाँ के मन्दिरों-मूर्तियों को ध्वंस करने का कारण बना। इस आक्रमण के फलस्वरूप यहाँ की मूर्तियों के नष्ट होने में जो कमी रह गई, वह विदेशी शासकों के अनुचरों (जो यहाँ से निकट रानीखेत छावनी में रहते थे) ने इधर-उधर बिखरी हुई मूर्ति सम्पदा को हटा कर, पूरी कर दी।

द्वाराहाट से लगभग 6·5 कि.मी. की दूरी पर द्रोणागिरि पर्वत पर दुर्गा का प्राचीन मन्दिर है जहाँ अन्य दुर्गामन्दिरों (गंगोलीहाट तथा पुण्यागिरि) की भाँति वलि नहीं चढ़ाई जाती है। यहाँ पर प्राप्त शिलालेख, जो सम्भवत: द्वाराहाट के बद्रीनाथ मन्दिर से आया है, में अंकित तिथि से इसकी प्राचीनता ज्ञात होती है।

जागेश्वर : पुराणों में वर्णित नील पर्वत के दारुणवन में स्थित जागेश्वर, अथवा नागेश का मन्दिर, अल्मोड़े से 35 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। यह मन्दिर अल्मोड़ा जिले के दारुण पट्टी में देवदार वन के बीच में निर्मित है और कुमाऊं के निवासियों द्वारा ज्योतिर्लिंग मन्दिरों में से एक माना जाता है।

सोराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्मारममलेश्वरम् ॥ १ ॥
परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्या भीमशङ्करम्।
सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं द्वारुका बने ॥ २ ॥

टिप्पणी—यह दारुण वन ही जागेश्वर है।

यहाँ पर कुल मिला कर 25 मन्दिर हैं। जागेश्वर या बाल जागेश्वर तथा मृत्युंजय के मन्दिर सबसे प्राचीन ही नहीं, अपितु अन्य मन्दिरों से बड़े भी हैं। कहा जाता है कि बाल जागेश्वर के मन्दिर का निर्माण अयोध्या नरेश शालीवाहन महान और मृत्युंजय मन्दिर का राजा विक्रमादित्य ने करवाया था। जो भी हो, इस स्थान से प्राप्त शिला-लेखों एवं ताम्र-पत्रों से ज्ञात होता है कि जागेश्वर कुमाऊँ के कत्यूरी राजाओं के समय में भी प्रसिद्ध था। यहाँ के मन्दिरों का समय-समय पर कत्यूरी तथा चन्द राजाओं ने पुनर्निर्माण तथा जीर्णोद्धार कराया था। बाल जागेश्वर के मन्दिर में स्थापित शिवलिंग को अब लोहे के आवरण से ढक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिया गया है। इसके सम्बन्ध में किंवदन्ती है कि शंकराचार्य ने देखा कि इस स्थान पर जो कोई किसी मनौती को लेकर आता है, वह पूरी हो जाती है। परन्तु कुछ बुरी मनोवृत्ति वाले लोग दूसरों को हानि पहुँचाने के ध्येय से घात भी डाल देते थे तो इस कुवृत्ति को बन्द करने के विचार से ही शंकराचार्य ने इस पर का लोहे आवरण चढ़ा दिया था।

जागेश्वर में बाल जागेश्वर तथा मृत्युंजय मन्दिरों के अतिरिक्त दुर्गा, भवानी, सूर्य तथा कई अन्य देवी-देवताओं के मन्दिर भी हैं—जो संभवतः बाद में कत्यूरी तथा चन्द राजाओं ने बनवाये हैं। लगभग सभी मन्दिरों में देव मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं, जो अब भी पूजी जाती हैं। ये मूर्तियां अल्मोड़ा जनपद के अन्य स्थानों (बैजनाथ को छोड़कर) पर पाई जाने वाली मूर्तियों से अच्छी ही नहीं हैं, अपितु अपनी सादगी तथा भावात्मक अंकन के कारण एक अलग स्थान रखती हैं। इन मूर्तियों के अंकन से देश के अन्य भागों में पाई जाने वाली समकालीन मूर्तियों की भाँति गहनों की भरमार नहीं की गई है। न ही यहाँ प्रणय सम्बन्धी मूर्तियों का अंकन किया गया है।

बाल जागेश्वर के मन्दिर से लगभग 150 मीटर की ऊँचाई पर उससे भी प्राचीन, वृद्ध जागेश्वर का मन्दिर है तथा दो मील की दूरी पर दण्डेश्वर का मन्दिर है। किंवदन्ती है कि दण्डेश्वर महादेव का मन्दिर पौराणिक जागेश्वर पर्वत (नील पर्वत) के दारुण वन में उसी स्थान पर स्थित है, जहाँ वशिष्ट तथा अन्य मुनियों ने, अपनी स्त्रियों को सती के भस्म से अपने शरीर में धारण कर, तपस्या करते हुए महादेव को श्राप दिया था। यह मन्दिर अन्य मन्दिरों की तरह न होकर, दक्षिण-मुखी है और इसके पुजारी भी ब्राह्मण न होकर क्षत्रीय होते हैं।

यहां के मन्दिर में प्रतिष्ठित देवी-देवताओं की प्रतिमाओं के साथ ही, कुमाऊँ के चन्द राजा त्रिमल चन्द तथा दीप चन्द की प्रतिमाएं भी हैं। सम्भवतः इन राजाओं ने यहां के मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया था।

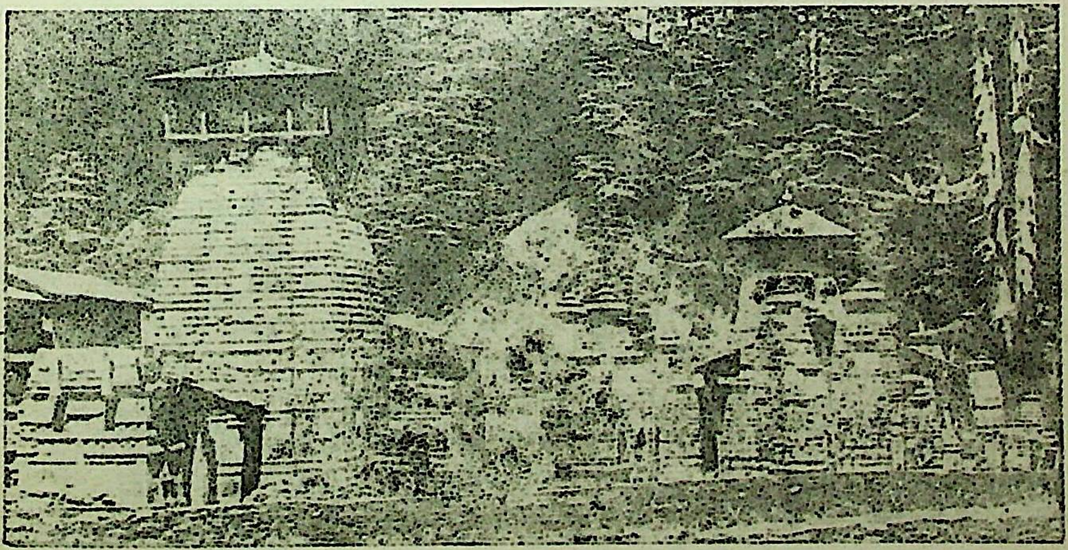

जागेश्वर मन्दिर समूह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कटारमल : अल्मोड़ा से 17 कि.मी. की दूरी पर पहाड़ के पूर्वी ढलान में बसा, कटारमल ग्राम 1815 ई० में अंग्रेजों द्वारा अल्मोड़ा विजय के समय प्रमुख सैनिक अड्डा था। कटारमल अब वहां पर निर्मित प्राचीन सूर्य मन्दिर के लिये अधिक प्रसिद्ध है। अनुमान लगाया जाता है कि इस मन्दिर का निर्माण छठी से नवीं शताब्दी के मध्य हुआ होगा। अन्य सूर्य मन्दिरों की भांति यहां के सूर्य रथारूढ़ नहीं हैं और इनको बूट पहनाये गये हैं।

कटारमल ग्राम कई वर्ष पूर्व तक गणिकाओं का (जो सम्भवतः मन्दिर की देव दासियां रही हों) ग्राम था किन्तु अब यहाँ सभी जाति के लोग बसते हैं। ग्राम से थोड़ी दूरी पर जो थोड़े-बहुत चीड़ के विशाल वृक्ष बचे हैं, उनसे अनुमान होता है कि यहाँ पर जागेश्वर के देवदार वन की भाँति अतीत में चीड़ वन रहा हो (जो गोरखाओं द्वारा कुमाऊँ के उस भाग पर शासन करने के दौरान, अल्मोड़ा के वनों की भाँति ही नष्ट कर दिये गये हों)।

कटारमल का सूर्य मन्दिर ग्राम के पूर्व में थोड़ी दूरी पर निर्मित है। इसका निर्माण एक ऊंचे चबूतरे पर किया गया था और उसके चारों ओर लगभग बत्तीस मीटर लम्बी तथा तीस मीटर चौड़ी चाहरदीवारी थी। मन्दिर का शिखर काफी खण्डित हो चुका है फिर भी उसे देखकर इसकी विशालता तथा वैभव का अनुमान लगाया जा सकता है। मन्दिर के चारों ओर अनेक छोटे-छोटे मन्दिरों की भरमार है जो सूर्य मन्दिर की ही तरह ध्वंस हो चुके हैं और जिनकी मूर्तियाँ हटाई जा चुकी हैं। यहाँ जो थोड़ी-बहुत मूर्तियाँ बची हैं, वे मुख्य मन्दिर में सूर्य की प्रतिमा के साथ ही एकत्रित कर दी गई हैं। मन्दिर में व्याप्त अन्धेरे के कारण वे भली-भाँति दिखाई नहीं देतीं। मन्दिर के द्वार पर पाषाण मूर्तियों के साथ एक धातु की मूर्ति को देखकर कहा जा सकता है कि यहाँ कि मूर्तियाँ अल्मोड़े के अन्य भागों में पाई जाने वाली मूर्तियों की

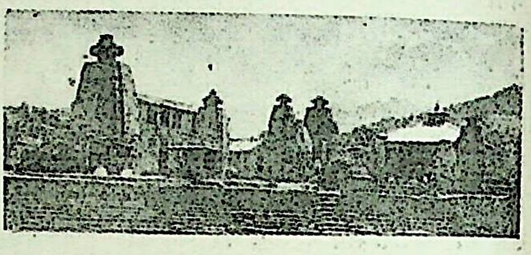

वैजनाथ मन्दिर समूह

समकालीन है। मन्दिर में लकड़ी के जो प्राचीन कपाट थे, वे अपनी सुन्दर काष्ट काल के लिये प्रसिद्ध है, और अब पुरातत्व संग्रहालय, दिल्ली में सुरक्षित हैं। मन्दिर के साथ बने भंडार-गृह में लकड़ी के खम्भों के जले हुए अववेणों को देखकर अनुमान होता है कि इन खम्भों में भी सुन्दर कला अंकित की गई थी।

बैजनाथ : पुराणों में वर्णित गोमती तथा गरुड़ी नदियों के संगम पर स्थित बैजनाथ (वैद्यनाथ जहाँ कामदेव के दमन के पश्चात् पार्वती को ब्याहने जाते समय महादेव जी ने ठहरकर गणेश का पूजन किया था) अल्मोड़ा से 70 कि.मी. तथा हिमालय दर्शन के लिये प्रसिद्ध कौसानी से 16 कि.मी. की दूरी पर है। यहाँ कई मन्दिरों का निर्माण हुआ था। इनसे प्राप्त शिलालेखों से ज्ञात होता है कि कत्यूरी, चन्द तथा गंगोली राजाओं ने समय-समय पर यहाँ के मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया था। सम्भवतः उनके काल में मूर्तियों का भी अंकन हुआ था। बैजनाथ मन्दिर समूह के मध्य वैद्यनाथ महादेव का प्राचीन मन्दिर था, जिसका अब निचला भाग ही शेष रह गया है। किन्तु इस मन्दिर में प्रतिष्ठत शिव प्रतिमा की अब भी मान्यता प्राप्त है। मुख्य मन्दिर के निकट ही एक अन्य शिव मन्दिर है, जिसमें शिव प्रतिमा के निकट ही लगभग 1·5 मीटर ऊँची देवी पार्वती की प्रतिमा तथा कई अन्य देवी-देवताओं की छोटे आकार की मूर्तियाँ स्थापित हैं—जो सम्भवतः अन्य मन्दिरों से लाकर रखी गई हैं। यहाँ प्राप्त एक शिलालेख के अनुसार 1552 ई० में कत्यूरी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्थानरायण मन्दिर, बैजनाथ की चौखट

पार्वती प्रतिमा, बैजनाथ

तथा गंगोली राजाओं ने इस मन्दिर का पुनर्निर्माण कराया था। पास ही बने संग्रहालय में बैजनाथ से प्राप्त कई मूर्तियाँ रखी गई हैं जो नवीं तथा दसवीं शताब्दी की प्रतीत होती हैं। परन्तु इनमें से कुछ इससे भी प्राचीन काल की हो सकती हैं। बैजनाथ में प्राप्त मूर्तियों में पार्वती, शेष-साई विष्णु, कुबेर, सूर्य, चंडिका, महिषासुर मर्दिनी तथा अष्टभुजा देवी की प्रतिमाएं मूर्तिकला के उत्कृष्ट नमूने हैं और उनकी तुलना भारत के अन्य भागों में पाई जाने वाली समकालीन मूर्तियों से की जा सकती है।

बैजनाथ से लगभग 1·5 कि.मी. की दूरी पर, गोमती नदी के बाईं ओर बसे तल्लाहाट ग्राम में भी कुछ प्राचीन मन्दिरों के अवशेष मिलते हैं। खेतों के बीच ध्वंस प्राय: सत्यनारायण के मन्दिर में प्रतिष्ठित विष्णु की प्रतिमा बैजनाथ में प्राप्त पार्वती की मूर्ति की समकालीन प्रतीत होती है। दोनों का ही निर्माण काले पत्थर से किया गया है। मूर्तियों का अंकन बड़ा सजीव और उत्तम है। ग्राम के बीचोबीच राक्स

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा नारायण के शून्य मन्दिर हैं। बागेश्वर के मन्दिरों से प्राप्त शिलालेख के अनुसार 1300 ई० में राजा हमीरदेव, लिंगराव देव तथा रानी परलदेई ने नारायण के मन्दिर में स्वर्ण कलश चढ़ाया था। मन्दिर के पास एक छोटा-सा चबूतरा स्थित है जो इन ग्रामवासियों द्वारा राजा-रानी के चौपड़ खेलने का चबूतरा बताया जाता है। इसे देखकर अनुमान लगाया जाता है कि गोमती घाटी में प्राचीन करर्वीरपुर के ध्वंस नगर के स्थान पर कत्यूरी राजाओं द्वारा बसाई राजधानी कार्तिकेयपुर यहीं रही होगी। सम्भवतः यह चबूतरा राजमहल का अवशेष मात्र हो। बैजनाथ के चारों ओर 10–12 कि.मी. के घेरे में गोमती के निकट कत्यूर के मन्दिरों के अवशेष बिखरे पड़े हैं।

बागेश्वर : कुमाऊं के सबसे पुराने नगरों में से एक बागेश्वर, यहां के निवासियों के लिये काशी के समान ही पवित्र तीर्थ है। यहां पर गोमती तथा सरयू के संगम पर बागनाथ महादेव (बाघ्रेश्वर) का मन्दिर निर्मित है, जिसके नाम पर ही इस स्थान का नाम बागेश्वर पड़ा। स्थानीय लोक कथा के अनुसार जब सरयू नदी हिमालय से अयोध्या में श्री राम के जन्म पर आयोजित समारोह में सम्मिलित होने को चली तो उसे मार्ग में मारकण्डेय मुनि को तपस्या करते देख कर रुक जाना पड़ा। सरयू की विपदा को देख कर पार्वती को दया आई और उन्होंने शिवाजी से सरयू की सहायता का आग्रह किया। व्याघ्र रूपी शिव को जब मारकण्डेय मुनि ने गाय रूपी पार्वती पर आक्रमण करते देखा तो उनसे रहा न गया। गौरक्षार्थ वे तपस्या छोड़ कर सहायता के लिये दौड़ पड़े और इसी बीच अवसर पाकर सरयू नदी आगे निकल चली। शिव-पार्वती भी अन्तर्ध्यान हो गए। इसी स्थान को व्याघ्रेश्वर (बागेश्वर) कहा गया। कहा जाता है कि जिस स्थान पर शिव और पार्वती अन्तर्ध्यान हुए, वहीं पर मारकण्डेय मुनि ने मन्दिर का निर्माण करवाया और उसमें शिव की प्रतिमा को बाघ्रनाथ नाम देकर प्रतिष्ठित किया। कालान्तर में मूल मन्दिर तो ध्वंस हो गया, लेकिन बाद में कत्यूरी, चन्द तथा गंगोली राजाओं द्वारा जीर्णोद्धार कराया मन्दिर आज भी काफी रक्षित अवस्था में है।

चम्पावत : पिथौरागढ़ जनपद के सबसे कलात्मक मन्दिर टनकपुर-पिथौरागढ़ मार्ग में स्थित, चन्द राजाओं की प्राचीन राजधानी (995 ई० से 1563 ई०) चम्पावत में हैं। ये मन्दिर बालेश्वर, रत्नेश्वर तथा चम्पावती दुर्गा के हैं। इन मन्दिरों के निर्माण काल के बारे में ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता, फिर भी चम्पावत के करीब पाये गये ताम्र-पत्रों से (जो अधिकांशतः मन्दिरों को चढ़ाई जाने वाली भूमि के दान-पत्र हैं) इनका निर्माण चन्द वंश के प्रारम्भिक काल से (शक संवत 1293 से 1727 तक) हुआ प्रतीत होता है।

बालेश्वर मन्दिर को देखने से प्रतीत होता है कि यह दोहरा मन्दिर था : एक गर्भगृह तथा दूसरा मण्डप, जो अब काफी जीर्णावस्था में है। जो कुछ बचा है उससे इसके प्राचीन वैभव तथा कलात्मकता का पता चलता है। इसके गर्भगृह तथा मण्डप की छतों के भीतरी भाग में कालिया मर्दन को एक नई शैली में, बड़े कलात्मक रूप से अंकित किया गया है। मन्दिर की बाहरी दीवारों में ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा अन्य देवी-देवताओं का अंकन है। बालेश्वर के मन्दिर की चौकी में हाथियों को अलग-अलग मुद्रा में बड़ी सजीवता से मन्दिर के चारों ओर अंकित किया गया है। इस मन्दिर के निकट ही रत्नेश्वर तथा चम्पावती दुर्गा के के मन्दिरों का भी निर्माण किया गया है। और इनकी दशा बालेश्वर के मन्दिर से कुछ बेहतर है। इसकी दीवारों में बाहर की ओर बहुत ही सुन्दर तथा कलात्मक ढंग से देवी-देवताओं की प्रतिमाओं के साथ सुन्दर पच्चीकारी की गई है। चम्पावत में इन्हीं मन्दिरों के निकट कई अन्य मन्दिरों के अवशेष भी बिखरे पड़े हैं। इनमें से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

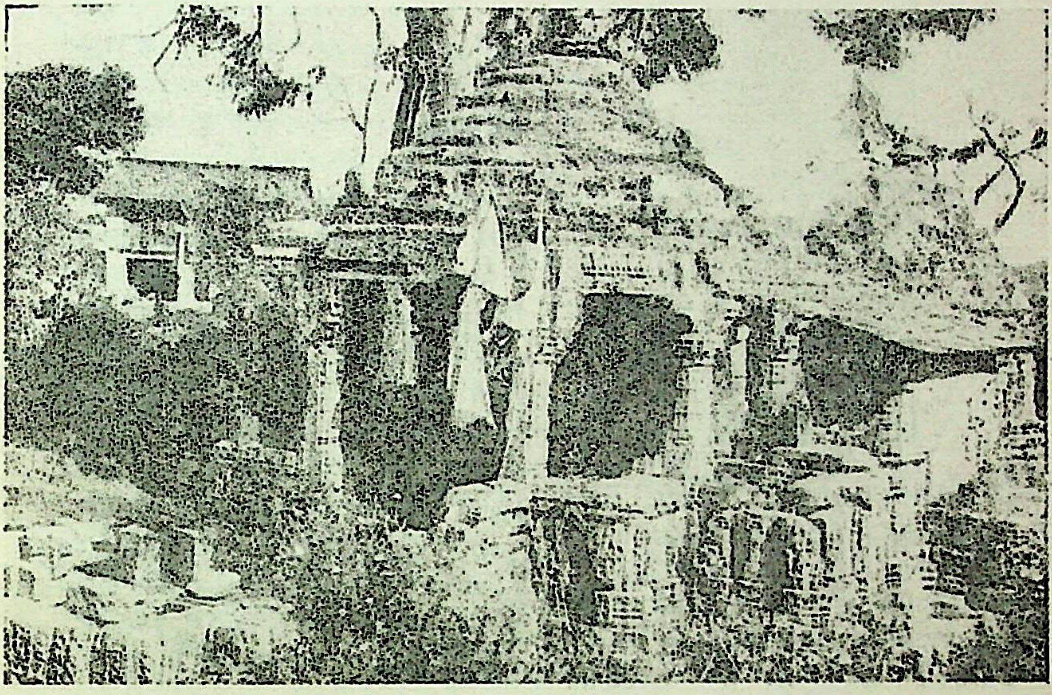

वालेश्वर मन्दिर, चम्पावत

जिन पर पुजारी या व्यवस्थापकों की कृपा हुई उनको पुजारी निवास की दीवार या मन्दिर समूह की चाहरदीवारी के निर्माण में स्थान दे दिया गया है ।

गंगोलीहाट : गंगोलीहाट के मन्दिरों में महाकाली तथा पाताल भुवनेश्वर के मन्दिर एवं जान्हवी का नौला (पोखरा) प्रमुख हैं । इसके अतिरिक्त यहाँ विष्णु, हनुमान तथा अन्य देवी-देवताओं के मन्दिर भी देखने को मिलते हैं । यहाँ के मन्दिरों को देखने से आभास होता है कि ये कत्यूरी काल में निर्मित पिथौरागढ़ जनपद के ही कासिनी (विष्णु मन्दिर) तथा मण (सूर्य मन्दिर), या चमोली जनपद के नारायण वगड़ (विष्णु मन्दिर, जिसकी प्रतिमा चोरी जा चुकी है), गोपेश्वर तथा तुंगनाथ (शिव मन्दिर) इत्यादि मन्दिरों के समकालीन हैं। यहाँ के मन्दिरों में जो देव प्रतिमाएं प्रतिष्ठित हैं, वे भी एक ही शैली की हैं । हो सकता है कि इनका अंकन कत्यूरी राजाओं ने कराया हो, या फिर गंगोली के मणकोटी राजाओं ने (जो कत्यूरी वंश से सम्बद्ध रहे हों और जिन्होंने अन्य स्थानों की भाँति यहाँ भी अपने कुल देवता नारायण –विष्णु– के मन्दिर बनवाये हों) । यहाँ के मन्दिरों में स्थापित विष्णु प्रतिमा अन्य भागों की प्रतिमाओं की प्रतिरूप प्रतीत होती है और उसी प्रकार की शिला से निर्मित हैं ।

गंगोलीहाट में इस समय का प्रमुख मन्दिर महाकाली जां का माना जाता है। काफी प्राचीन मन्दिर है, पर समय-समय पर जीर्णोद्धार होते रहते के कारण वह अब अपनी मौलिकता खोता जा रहा है । इसकी दीवारों तथा छत, सभी ने काफी आधुनिक रूप ले लिया है पर इसमें स्थापित प्रतिमाओं तथा कहीं-कहीं पर इसकी दीवारों को देखकर इसकी प्राचीनता की झलक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भित्तिशिल्प पम्पावती मन्दिर, चम्पावत

मिलती है। यह मन्दिर आबादी से डेढ़ किलोमीटर दूर देवदार वन के बीच, रमणीक स्थल में स्थित है। यहाँ दूर-दूर से लोग दर्शनार्थ आते हैं और बकरे की बलि भी चढ़ाई जाती है। इसकी मान्यता सारे कुमाऊं में है और इस स्थान को देवी जी का आदि-पीठ भी मानते हैं। किंवदन्ती है कि प्राचीन काल में महाकाली काफी चंचल थी और रात्रि में कभी-कभी कीर्ति जागीश्वर महादेव को पुकारती थीं। जो इस आवाज को सुनता, उसकी तत्काल मृत्यु हो जाती। फलतः उस समय में यहाँ के निवासी संध्या की पूजा के बाद मन्दिर के निकट नहीं जाते थे। कहा जाता है कि जब से श्री शंकराचार्य ने जागेश्वर महादेव की प्रतिमा को लोहे के आवरण से ढक दिया, तब से काली जी ने पुकारना बन्द कर दिया। अब तो इस मन्दिर के काफी निकट तक बस्ती फैलती जा रही है। यहाँ के लोगों का यह भी विश्वास है कि देवी का महिषासुर से यहीं पर युद्ध हुआ था और महिषासुर मर्दिनी ने महिषासुर, चण्डमुण्ड, रक्तबीज आदि कई दैत्यों का यहीं पर वध किया था। उनकी शक्ति पीठ भी यहीं है।

गंगोलीहाट बाजार के एक कोने पर जान्हवी का नौला है, जिसका निर्माण रैंका राजा ने करवाया था। इस पोखरे से यहाँ के लोगों की जल आवश्यकता की पूर्ति होती है। यह देखने में काफी प्राचीन और कलात्मक लगता है। इस पोखरे से थोड़ी दूरी पर विष्णु भगवान के दो सुन्दर, परन्तु छोटे मन्दिर हैं। इन्हीं के बीच में से गंगोलीहाट को पिथौरागढ़ से जोड़ने वाला पैदल मार्ग जाता है। कभी यह मन्दिर खुले स्थान में रहे होंगे, पर अब इनके चारों ओर फैलती आबादी इनको घेरती जा रही है। यहाँ तक कि इनसे लगे हुए मकानों की दीवारें इन मन्दिरों की दीवारों को दबाये पड़ी हैं। इन मन्दिरों में भगवान विष्णु की प्रतिमा प्रतिष्ठित हैं, जो काफी सुन्दर है और आज भी पूजी है। पर इनके मन्दिरों की देख-रेख ठीक से न होने के कारण इन्हें चारों ओर से बेलों तथा झाड़ियों ने घेरना आरम्भ कर दिया है।

गंगोलीहाट से थोड़ी दूरी पर मणकोट हैं, जहाँ मणकोटी राजाओं के किले के खण्डहर आज भी देखने को मिलते हैं। शायद ये भी कत्यूरी वंश से ही हों। बाद में जब कुमाऊं के चन्द राजाओं ने इस पर आक्रमण किया तो युद्ध हार जाने के कारण वे नेपाल चले गये, जहां इनके वंशज आज भी रहते हैं।

पाताल भुवनेश्वर : गंगोलीहाट से लगभग 6 किलोमीटर की दूरी पर स्थित यह स्थान अपने मन्दिर समूह तथा गुफा मन्दिरों के कारण प्रसिद्ध है। इस ग्राम का नाम भी इन्हीं मन्दिरों के नाम पर पड़ा है। यहां भुवनेश्वर के दो मन्दिर हैं। एक तो प्रकृति की देन है जो गुफा में है। दूसरा इस गुफा मन्दिर से 150 मीटर की दूरी पर निर्मित है। कहा जाता है कि इस वृद्ध भुवनेश्वर मन्दिर का निर्माण राजा असन्तिदेव की रानी सुभद्रादेवी ने कराया था। इस मन्दिर के चारों ओर कई अन्य मन्दिर भी निर्मित हैं। इन मन्दिरों में एक का शिखर, दक्षिण भारत के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मन्दिरों की भाँति, द्रविड़ शैली में बना है जिसे देखकर ग्वालियर के तैल्ली का मन्दिर (तिलंगाना मन्दिर) की याद आती है। हालांकि यह उतना विशाल नहीं है, फिर भी देखने में सुन्दर तो है ही। समवतः यह रामचन्द्र जी का मन्दिर रहा हो क्योंकि इसके सामने ही हनुमान जी की एक प्राचीन प्रतिमा प्रतिष्ठित है।

भुवनेश्वर आने वाले भक्तों को पहले पाताल भुवनेश्वर के गुफा मन्दिर के दर्शन करने होते हैं तथा बाद में वृद्ध भुवनेश्वर के। पाताल भुवनेश्वर में प्रवेश करने के लिये सभी वस्त्र उतारने पड़ते हैं। वहां केवल धोती या जांघिया पहन कर प्रवेश करना पड़ता है। इसका प्रवेश मार्ग एक बहुत ही संकरी गुफा से है जिसमें कुछ दूर तक लेट कर नीचे उतरना होता है। अन्दर काफी लम्बी-चौड़ी गुफा में प्रवेश मिलता है। इस गुफा में हवा-पानी तो काफी है, पर प्रकाश नहीं है। इस कमी को यहां का पुजारी चीड़ की लकड़ी (छिलुका) की मशाल जलाकर दूर करता है। यह गुफा स्टैलक्टाइट और स्टैलक्टमाइट से निर्मित विभिन्न आकारों से भरी पड़ी है, जिनमें से कोई-कोई तो बड़े सजीव से लगते हैं। लोगों का विश्वास है कि यहाँ पर 33 करोड़ देवता वास करते हैं। यह गुफा तीन खण्डों में विभक्त है तथा यहाँ तीनों देवता (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) भुवनेश्वर महादेव के रूप में पूजे जाते हैं। लोगों की धारणा यह है कि इस गुफा में सर्वप्रथम अयोध्या के सूर्यवंशीय राजा ऋतुपूर्ण ने प्रवेश किया था—जो इस इलाके में आखेट को आया था और अनन्तनाग ने उनकी सहायता की थी। यह भी धारणा है कि शंकर-पार्वती यहां काफी समय तक रहे, तथा अब भी उनकी जटा यहां दिखाई देती है। इस गुफा में गरुड़ भी विराजमान हैं, जिनका मुँह पीछे को मुड़ा हुआ है। कहते हैं कि जब गरुड़ ने अमृत का घट ले जाते समय उसमें से अमृत पान करना चाहा तो भगवान ने उसे चक्र मार कर रोका जिससे उनका मुंह पलट गया। यह भी मान्यता है कि वासुकी नाग इसी गुफा में आकर रहे थे। इसके प्रमाण में पुजारी वहां विशाल शिला में उभरी हुई एक सर्पाकार आकृति दिखाते हैं। गुफा में विद्यमान विभिन्न आकार शिव, पार्वती, विष्णु या कोई अन्य देवी-देवता माने जाते हैं। कई स्थानों में गुफा फिर संकरी हो जाती है जिसके अन्दर देखने से प्रतीत होता है कि इसके कई खण्ड होंगे। यहाँ के लोगों का विश्वास है कि संकरे मार्ग भुवनेश्वर को रामेश्वर (इस पर्वत की जड़ में सरयू तथा पूर्वी रामगंगा के संगम पर निर्मित रामेश्वर का मन्दिर) तथा सेतबन्धु रामेश्वर व जागेश्वर को भी मार्ग जाते हैं। जो भी हो, यह गुफा अति सुन्दर है। सफाई करने से इसमें और भी जगह निकल आयेगी क्योंकि इसका काफी भाग यहां चढ़ाये जाने वाले पुष्पों तथा जलाई जाने वाली लकड़ी के ढेर तथा वर्षा के पानी के साथ बह कर आई हुई मिट्टी से भर गया है। इसकी प्रवेश गुफा को चौड़ा करने से यहां आने वाले लोग सुगमता से इसमें प्रवेश करके इसके सौंदर्य का आनन्द उठा पायेंगे।

इस भाग में कुछ नाग देवताओं के मन्दिर भी मिलते हैं, जिनमें आज भी पूजा होती है। इसका कारण अतीत काल में यहां के नाकुरी, दानपुर तथा भुवनेश्वर के इलाकों में नाग जाति के लोगों का वास होना बताया जाता है। यहां के नाग मन्दिरों के नामों के विषय में अनुमान किया जाता है कि सम्भवतः प्राचीन नाग जाति के प्रसिद्ध पुरुषों को, कुमाऊँ के अन्य भागों में पूजे जाने वाले प्रसिद्ध पुरुषों-हरु, सैम, कलविष इत्यादि की तरह पूजा जाता था।

पिथौरागढ़ जनपद में अन्य कई स्थानों जैसे मठ में बड़ा अदित्य, थल में थल केदार आदि के मन्दिर हैं। बलुवा कोट में भी प्रतिमाओं को एक पेड़ के नीचे एक समूह में एकत्रित देखा जा सकता है। जो ग्रामीणों के देख-रेख के कारण ही बची हैं तथा इनमें से कई प्रतिमाएं सुन्दर और मध्ययुगीन हैं। □

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गढ़वाल, कुमाऊं दरबारों में भूषणबंधु

भजनसिंह 'सिंह'

वैदिक वाङ्मय के पश्चात्, संस्कृत और हिन्दी साहित्य को नख-शिख वर्णन के रीतिकालीन श्रृंगारी कवि मजनुओं ने जब राधा-कृष्ण के प्राकृतिक-अप्राकृतिक, संयोग-वियोग के श्रृंगारी गीतों की रचना कर, हिन्दू जन-जीवन को पूर्णतः अनैतिक, अकर्मण्य, ईश्वर पर आश्रित, भक्तिपरक और विलासी बना दिया था, उस समय संस्कृत साहित्य में केवल विशाखदत्त और हिन्दी में कविवर भूषण प्रथम वार राष्ट्रीयता की रक्षा के लिए, कलम-कृपाण लेकर कर्मक्षेत्र में अवतरित हुए।

महाकवि भूषण और उनके बड़े भाई मतिराम के जीवन वृत्त के संबंध में अब तक साहित्य के इतिहासकारों में जितना मतभेद रहा है, उतना अन्य कवियों के संबंध में नहीं। किसी के कथनानुसार चिंतामणि, भूषण, मतिराम और जटाशंकर (नीलकंठ)—चारों सहोदर भाई थे। कुछ विद्वान् मतिराम और जटाशंकर को भूषण का भाई नहीं कहते। कुछ मतिराम को भूषण का बड़ा भाई और कोई मौसेरे अथवा ममेरे भाई कहते हैं। उनकी रचनाओं में, उनकी जन्म और मृत्यु-तिथियों में तथा उनके आश्रयदाताओं में भी पर्याप्त मतभेद व्याप्त है। हिन्दी-साहित्य में दो मतिराम और दो भूषण नाम के कवियों का अस्तित्व और कृतित्व प्रमाणित है।

कवि भूषण और मतिराम त्रिपाठी के नाम से जो रचनायें उपलब्ध हैं, वे किस मतिराम तथा किस भूषण की हैं—इस संबंध में भी विद्वानों में बरसों से मतभेद रहा है। कुमायूं के इतिहास में स्व० पांडे जी ने कुमाऊँ-नरेश उद्योतचन्द के दरबार में सतारागढ़ के साहू महाराज के राजकवि मतिराम का उल्लेख किया है। डॉ० बर्त्वाल उसको अपने 'मकरन्द' लेख संग्रह में पतिराम बताते हैं। मैंने इन्हीं साहित्य महारथियों की साहित्यिक घोषणाओं के आधार पर सन् 1930–31 में अपनी पुस्तक सिंहनाद में लिखा था कि प्रसिद्ध वीर शिवाजी के राजकवि भूषण कुमाऊँ होकर गढ़वाल पधारे थे। उस समय (सन् 1684–1726) कुमाऊँ में उद्योतचन्द और गढ़वाल में फतेशाह का शासन था। मिश्र बन्धुओं ने भूषण-ग्रन्थावली में जिसे कश्मीर का श्रीनगर लिखा है, वह कश्मीर का नहीं, वरन् गढ़वाल का श्रीनगर था। मिश्र बन्धुओं ने मतिराम ग्रन्थावली में भी बुन्देलखण्ड में ही श्रीनगर की कल्पना करके 'फतेशाह बुन्देला' लिखा है। कविवर मतिराम भी गढ़वाल नरेश के यहाँ रहे। गढ़वाल नरेश और श्रीनगर के संबंध में प्रसिद्ध सरोजकार शिवसिंह सेंगर और गोविन्द गिल्लाभाई ने जो ऐतिहासिक भूल की है, 'मिश्रबन्धु' भी उससे बच नहीं सके। गढ़वाल नरेश की प्रशंसा में—भूषण और मतिराम के अतिरिक्त रतन नामक कवि ने फतेप्रकाश नामक जो स्वतन्त्र काव्य-ग्रन्थ लिखा है, उस पर भी उक्त सज्जनों ने बुन्देलखण्ड में ही फतेशाह बुन्देला और श्रीनगर की निराधार कल्पना करके हिन्दी-साहित्य के इतिहास के प्रति अन्याय किया है।

शिवसिंह सेंगर ने सन् 1878 में कविवर मतिराम के जीवन-वृत्त के संबंध में लिखा था कि "मतिराम त्रिपाठी टिकमापुर, जिला कानपुर के थे। ये महाराज भाषा-काव्य के आचार्यों में गिने जाते हैं। हिन्दुस्तान में बड़े राजा-महाराजाओं के यहाँ वे थोड़े-थोड़े दिन रहे और राजा उद्योतचन्द कुमाऊँ-नरेश और भाऊसिंह हाड़ा, छत्रसाल, राजा कोटाबून्दी और शंभुनाथ सुलंकी इत्यादि के यहां बहुत दिनों तक रहे। ललितललाम अलंकार का ग्रन्थ राव भाऊसिंह कोटावाले के श्रीनगर के नाम से रचा और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नायिका-भेद का बहुत सुन्दर रसराज ग्रन्थ बनाया है।" अपने इस अभिमत की पुष्टि में उन्होंने मतिराम के 'छन्दसार पिंगल' का निम्नलिखित छन्द प्रस्तुत किया है :

दाता एक जैसो शिवराज भयो जैसे अब, फतेसाहि श्रीनगर साहिबो समाजु है।
जैसो तौ चितौर धनी राजा नरनाह भयो जैसो इ कुमाऊँ पति पूरो रज लाजु है।
जैसे जयसिंह जसवन्त महाराज भये जिनको मही में अजी बाड़यो बल साजु है।
मित्र साहिनन्द श्री बुन्देल कुल चंद जग ऐसे अब उदित सरूप महाराज है।।

भूषण और मतिराम दाराशिकोह के मारे जाने के बाद, औरंगजेब के अत्याचारों के विरुद्ध राष्ट्रीय जागृति एवं हिन्दू-संगठन के लिए कई प्रतापी हिन्दी-राज्यों में पहुँचे। वे कुमाऊँ नरेश के दरबार में भी गए, परन्तु यह प्रमाणित हो चुका है कि छन्दसारपिंगल (जिसका नाम छन्दसार अथवा वृत्तकौमुदी भी है) के रचयिता भूषण के भाई मतिराम नहीं, वरन् वत्सगोत्रीय बनपुर निवासी कोई अन्य मतिराम हैं। बनपुर निवासी मतिराम ने छन्दसार पिंगल श्रीनगर के फतेशाह के लिए नहीं, वरन् सरूपसिंह बुन्देला की प्रशस्ति में रचा है। उसके कथनानुसार वे कोटाबून्दी के कोई नरेश थे। गोविन्दगिल्ला भाई तथा मिश्रबन्धुओं की घोषणायें भी अवास्तविक तथ्यों पर आधारित हैं। शब्दार्थ पारिजात में पं० द्वारिकाप्रसाद चतुर्वेदी ने भी गढ़वाल को उत्तर भारत का एक नगर लिखा है। सन् 1960 के बाद ही साहित्य के इतिहासकारों को विदित हो सका कि राजा फतेशाह बुन्देलखण्ड के नहीं, वरन् श्रीनगर, गढ़वाल के थे।

श्रीनगर नरेश फतेशाह की ख्याति सुनकर भूषण और मतिराम ही नहीं, भारत के अनेक अन्य विद्वान् और कवि भी श्रीनगर पहुँचकर उनके राज्याश्रित रहे हैं। उनके राज्यकाल (सन् 1684 से 1726) में राष्ट्रीय कवि भूषण श्रीनगर पधारे थे। उनकी संपूर्ण कविताओं में भारत-भ्रमण का उनका राष्ट्रीय उद्देश्य स्पष्ट है :

डाढ़ी के रखैयन की डाढ़ी सी रहति छाती, बाढ़ी मरजाद जस हद्द हिन्दुवाने की।
कढ़ि गई रैयत के मन की कसक सब, मिट गई ठसक तमाम तुरकाने की।
'भूषन' भनत दिल्लीपति दिल धक धका, सुनि-सुनि धाक शिवराज मरदाने की।
मोटी भई चंडी बिनचोटि के चबाय मुंड, खोटी भई सम्पत्ति चकत्ता के घराने की।

वेदराखे विदित पुरान राखे सारयुत, राम नाम राख्यो अति रसना सुघर मैं।
हिन्दुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की, कांधे में जनेउ राख्यो मालाराखी गरं मै।
मीड़ि राखे मुगल, मरोड़ि राखे पातसाह, बैरिपीसि राखे बरदान राख्यो कर मै।
राजन की हद्द राखी तेग बल सिवराज, देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर मै।

राष्ट्रकवि भूषण ने अपने काव्य-ग्रन्थों में श्रीनगर फतेशाह के प्रताप का श्रद्धापूर्वक वर्णन किया है। कुमाऊँ नरेश उद्योतचन्द के दरबार में उनके बड़े भाई मतिराम रहते थे। अपने चरित-नायक शिवाजी के यश-विस्तार को देखने और राष्ट्रीय जागृति के प्रचार-प्रसार के लिए भूषण भी नरेश उद्योतचन्द के दरबार में पधारे, जहाँ कुमाऊँ नरेश की प्रशंसा में कवित्त पढ़ा :

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उलदत मद अनुमद ज्यों जलधि जल, वलहद भीम कद काहू के न आहू के ।
प्रबल प्रचंड गंड मंडित मधुप बृन्द, विन्ध्य के बलन्द सिन्धु सात हू के थाहू के ।
'भूषण' भनत झल झंपति झपान झुकि, झूमत झलत झहरात रथ डाहू के ।
मेघ से घमडित मजेजदार तेज-पुंज, गुंजरत कुंजर कुमाऊँ नर नाहू के ॥

भूषण की कविता से चमत्कृत होकर राजा उद्योतचन्द ने उन्हें एक हाथी और दस हजार रुपया पुरस्कार स्वरूप दिया था । मिश्रबन्धु इसे एक लक्ष रुपए का दान कहते हैं । कहा जाता है कि दान देते समय कुमाऊँ नरेश के मुख से निकल गया कि ऐसा दान आपको अन्यत्र नहीं मिला होगा । इस कथन से भूषण अप्रसन्न हो उठे और यह कहकर कि ऐसा त्यागी ब्राह्मण भी आपने अन्यत्र नहीं देखा होगा, मैं तो यहाँ यह देखने आया था कि यहाँ तक शिवाजी का यश-विस्तार हुआ है अथवा नहीं, वे कुमाऊँ नरेश के दान को त्यागकर श्रीनगर गढ़वाल चले आए ।

कविवर मतिराम कृत छन्दसार पिंगल के कुछ अंश मैंने पढ़े हैं । उसमें फतेसाहि बुन्देला (श्रीनगर) का कहीं भी नाम नहीं है। शिवसिंह-सरोज द्वारा छन्दसार पिंगल में प्रस्तुत छन्द में कवियों के आश्रयदाताओं के नाम केवल उपमान के रूप में आये हैं। वृत्तकौमुदी के इस छन्द की अंतिम पंक्ति में भी कवि द्वारा राजा सरुपसिंह की ही प्रशंसा की गई है। फतेशाह श्रीनगर का तो उल्लेख मात्र है ।

शिवसिंह सरोज के ही आधार पर (पृ० 170) भाषाशास्त्री ग्रियर्सन ने सन् 1888 में छन्दसार के संबंध में लिखा है कि 'छन्दसार श्रीनगर के फतेसाहि बुन्देला के नाम एक पिंगल ग्रन्थ है । ग्रियर्सन के अनुकरण पर श्री भगीरथ प्रसाद दीक्षित ने भी सन् 1923 में लिखा है कि छन्दसार पिंगल और वृत्तकौमुदी जो एक ही ग्रन्थ के दो नाम हैं—फतेसाहि बुन्देला की प्रशस्ति में है । वह उस मतिराम द्वारा रचित है, जो भूषण का भाई नहीं है । 'मतिराम ग्रन्थावली' की भूमिका में श्री कृष्ण बिहारी मिश्र ने सन् 1926 में लिखा है कि छन्दसार की रचना श्रीनगर नरेश फतेसाहि बुन्देला के लिए है । आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने हिन्दी साहित्य का अतीत (1960) में छन्दसार पिंगल की रचना श्रीनगर नरेश फतेसाहि बुन्देला के लिए मानी है, परन्तु वे वृत्तकौमुदी की रचना किसी दूसरे मतिराम की रचना मानते हैं । डॉ० महेन्द्र कुमार ने सन् 1960 में मतिराम कवि और आचार्य में छन्दसार और वृत्तकौमुदी एक ही ग्रन्थ के दो नाम माने हैं । डॉ० त्रिभुवनसिंह ने महाकवि मतिराम और मध्यकालीन हिन्दी कविता (1960) से छन्दसार पिंगल और वृत्तकौमुदी को श्रीनगर के फतेसाहि बुन्देला की प्रशंसा में लिखे गये अलग-अलग काव्य-ग्रन्थ माना है ।

श्रीनगर गढ़वाल के नरेश फतेशाह अत्यन्त प्रतापी, गुणग्राही, यशस्वी और साहित्य प्रेमी व्यक्ति थे । हिन्दी साहित्य के उपर्युक्त इतिहास-कारों ने भूषण और मतिराम आदि महाकवियों के काव्य वर्णनों में राजा फतेशाह की यश-गाथा पढ़कर पूर्ववर्ती साहित्यकारों की निराधार घोषणाओं का अक्षरशः अनुकरण कर, फतेशाह को बुन्देलखण्ड का बुन्देला घोषित किया है । जब उन्हें बुन्देलखण्ड में श्रीनगर का अस्तित्व नहीं मिला, तो कुछ ने गढ़वाल के श्रीनगर को कश्मीर का श्रीनगर लिख दिया । भारत में गढ़वाल नामक कोई महत्त्वपूर्ण राज्य भी था, इसका हिन्दी के अनेक इतिहासकारों को कदाचित भान भी नहीं था । श्रीधर ने अपने प्रसिद्ध भाषाकोश में शिवसिंह सरोज की घोषणा के आधार पर लिखा है कि महाकवि मतिराम ने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छन्दसार पिंगल फतेशाह बुन्देला श्रीनगर के नाम से रचा है।

दिल्ली से भूषण कुमाऊँ दरवार आए और वहां कुछ दिन ठहरकर श्रीनगर, गढ़वाल को चले गए। श्रीनगर नरेश फतेशाह ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। भूषण ने उनकी प्रशस्ति में कहा :

लोक ध्रुवलोक ते ऊपर रहेगो भारो, भानु से प्रमानि की निधानि आनि आनैगी।
सरिता सरिस सुर सरितै करैगो साह, हर ते अधिक अधिपति ताहि मानैगो।
ऊरध परारध लौं गिनती गनैगो गुनि, वेद ते प्रमान सों प्रमान कछू जानैगो।
सुयश ते भलो मुख भूषण भनैगो बाढ़ि, गढ़वार राज पर राज जो बखानैगो।।

अर्थात् यदि कोई विद्वान् गुणी भारत के सबसे ऊँचे पर्वत प्रदेश में स्थित गढ़वाल राज्य और उसके राजा की उच्चता का वर्णन करना चाहे तो उसको ध्रुवलोक से भी ऊँचा स्थान, सूर्य से भी उज्ज्वल और ऊँची किरणों का घर, गगन से प्रवाहित गंगा जी से भी अधिक पवित्र देव नदी, तथा वेदों से प्रमाण खोजकर भगवान् विष्णु और शिव जी से भी कोई अधिक न्याय-कारी, समदर्शी राजा खोजना पड़ेगा। तब यह गढ़वाल राज्य का तुलनात्मक यश-वर्णन करने में समर्थ हो सकेगा।

श्री भगीरथ प्रसाद दीक्षित ने अपने महा-कवि भूषण में लिखा है कि इस कवित्त के द्वारा भूषण ने अनेक गुणों का समन्वय होने से (गढ़-वाल राज्य) की महत्ता उच्च कोटि की बतलाई है। वे कहते हैं कि जो कोई गढ़वाल राज्य को शत्रु-राज्य समझेगा उसका सुयश नष्ट हो जायेगा। इस छन्द ने राज्य की सारी धारणा को नया रूप दे दिया और प्रजा राजा की भक्ति में मग्न हो गई थी। इसके बाद ही प्रजा के बल पर फतेशाह ने औरंगजेब का इलाका सहारनपुर तब अपने राज्य में मिला लिया था, इसका इतिहास साक्षी है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि यह राजा प्रबल समाज सुधारक और राष्ट्र-वादी व्यक्ति था जिसे भूषण के सहयोग से गहरा बल मिला था। श्री दीक्षित फतेशाह की प्रशस्ति में रतन कवि कृत फते प्रकाश काव्य ग्रन्थ से भूषण का दूसरा छन्द भी उद्धृत करते हैं :

देवता को पति नी को पतनी शिवा को हर, श्रीपति नतीरथ विरथ उर अनियो।
परम धरम को है सेइबो न व्रतनेम, भोग को संजोग त्रिभुवन जोग जानियो।
भूषण कहा भगति कनक न मनि ताते, विपति कहा वियोग सोग न बखानियो।
सम्पत्ति कहा सनेह न गथ गाहिरो जहां, सुख को निरखिबोई मुकुति न मानियो।।

इस छन्द में महाकवि ने इन्द्र, महादेव तथा दुर्गा की प्रशंसा करते हुए वैष्णव धर्म, तीर्थ, व्रत, नियमादि को व्यर्थ बतलाया है। साथ ही संसार की महत्ता बतलाते हुए तीनों लोकों का उपयोग उचित ठहराया है। सोना और मणियों के सहारे की भक्ति को तुच्छ बतलाते हुए, विपत्ति-वियोग और शोक को अचिन्तनीय कहा गया है। जहाँ स्नेह नहीं होता वहाँ सम्पत्ति की प्राप्ति तुच्छ ही है। इसी प्रकार सांसारिक सुखों को मुक्ति का स्वरूप मानना भी ठीक नहीं है।

इन उदाहरणों से भूषण की भावना पर अच्छा प्रकाश पड़ता है तथा कुमाऊँ नरेश के दान के त्याग का कारण भी स्पष्ट होता है। श्रीनगर में भूषण का बहुत सम्मान हुआ तथा राजा फतेशाह ने अच्छी भेंट देकर, उन्हें सप्रेम बिदाई दी थी (महाकवि भूषण, पृष्ठ 27-28)।

शिवराज भूषण में भी भूषण ने श्रीनगर-नरेश को अपने आश्रयदाता के रूप में श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीनगर, नयपाल जुमिला के छितिपाल, मेवाड़, मारवाड़ और बुन्देलखण्ड कहकर भारत के अन्य प्रसिद्ध राज्यों से गढ़वाल का तुलनात्मक महत्व प्रतिपादित किया है। इसी शिवराज भूषण काव्यग्रन्थ में उन्होंने 'मोरग जाहु कि जाहु कुमाऊँ श्रीनगरै कि कवित्त बनाये' कह कर श्रीनगर गढ़वाल की महत्ता ही प्रकट नहीं की, वरन् श्रीनगर में रहकर अपनी कुछ काव्यों की रचना करने का उल्लेख भी किया है।

महाकवि भूषण कश्यप गोत्रोत्पन्न, कान्य-कुब्ज ब्राह्मण थे। वे टिकवापुर, कानपुर के निवासी थे और उनके पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी था। परन्तु 'अलंकार प्रकाश' और 'छन्दो-हृदय प्रकाश' के रचयिता मुरलीधर कवि भूषण के पिता का नाम उक्त दोनों काव्य ग्रन्थों में स्पष्टत: रामेश्वर त्रिपाठी बताया गया है। रत्नाकर के पुत्र महाकवि भूषण को सोलंकीवंशीय, चित्रकूट नरेश हृदयराम के पुत्र रुद्र ने कवि 'भूषण' की उपाधि से सम्मानित किया था और रामेश्वर के पुत्र मुरलीधर को बनपुर निवासी देवीसिंह बुन्देला ने, जो चन्देरी के नरेश थे, कवि 'भूषण' की उपाधि दी थी। उसी प्रकार कुमाऊँ राज्याश्रित भूषण के भाई महाकवि मतिराम का गोत्र कश्यप तथा पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी था। छन्दसार पिंगल (वृत्तकौमुदी) के रचयिता मति-राम बनपुर निवासी, वत्स-गोत्रीय त्रिपाठी थे और शूरवीर सिंह पंवार के अनुसार उनके पिता का नाम विश्वनाथ त्रिपाठी था। कवि भूषण की अलंकार प्रकाश और छन्दोहृदय प्रकाश बुन्देल-वंशीय राजा देवीसाह के लिए रचित हैं तथा वत्स-गोत्रीय, बनपुर निवासी, विश्वनाथ आत्मज मतिराम द्वारा राजा स्वरूपसिंह बुन्देला के लिए छन्दसार पिंगल लिखा गया। भूषण कृत अलंकार प्रकाश और छन्दोहृदय प्रकाश में तथा मतिराम रचित छन्दोसार पिंगल में, उन दोनों के अन्य काव्य ग्रन्थों से, पिता और गोत्र के अलग-अलग नाम होने के कारण साहित्यकारों ने अलंकार प्रकाश और छन्दोहृदय प्रकाश के भूषण को शिवराज भूषण के रचयिता से भिन्न तथा छन्दसार पिंगल के रचयिता मतिराम को रसराज और ललितललाम के मतिराम से भिन्न माना है। परन्तु शूरवीरसिंह पंवार भूषण और मति-राम नामक दो अलग-अलग कवियों का अस्तित्व नहीं मानते। उनके कथनानुसार मतिराम भूषण के सहोदर नहीं, वरन् मौसेरे अथवा ममेरे भाई थे। इस आधार पर मतिराम का गोत्र, पिता तथा निवास स्थान, भूषण से अलग होने की बात मान्य हो सकती है। परन्तु भूषण के पिता का नाम रत्नाकर के बदले रामेश्वर हो जाना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। रामेश्वर का उपनाम 'रत्नाकर' भी था। शिवराज भूषण के प्रसिद्ध कवि भूषण द्वारा इस नाम-उपनाम की मान्यता अनिवार्य है। जो कुछ भी हो, इस प्रकार दोनों महाकवियों का जीवन-वृत्त अभी भी अस्पष्ट और विवादास्पद है और गढ़वाल तथा कुमाऊँ दरबारों में शिवराज भूषण के रचयिता महाकवि भूषण और ललितललाम के रचयिता मतिराम का सम्मानित होना एक ऐतिहासिक वास्तविकता है।

आज से लगभग 60 वर्ष पूर्व एक अशिक्षित 'औजी' लोक गायक के मुख से देवी के गीत गाते समय मैंने जब भूषण का एक छप्पय सुना तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। वह उक्त छप्पय के केवल चार पद ही गा सका। अंतिम दो पद उसे स्मरण नहीं थे। पूछने पर उसने बतलाया कि उसके बाप-दादा के समय से ही केवल चार पद चले आ रहे हैं। वह छप्पय है :

जै जयन्ति जै आदि सकति जै कालि कपर्दिनि
जै मधुकैटभ छलनि देवि जै महिष विमर्दिनि
जै चमुंड जै चंड-मुंड भण्डासुर खडिनि
जै सुरक्त जै रक्तबीज चिड्डाल विहंडिनि

यहाँ के जागरियों में प्रचलित भूषण की ओजस्विनी काव्य पंक्तियों की अभी तक सुरक्षित इस परम्परा से भी इस क्षेत्र में भूषण की ऐतिहासिकता प्रमाणित होती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जहांगीर के आश्रित कविवर मतिराम ने सन् 1619 में उसकी आज्ञानुसार फूलमंजरी काव्य ग्रन्थ की रचना की थी। मालूम होता है कि कवि गुणग्राहक, साहित्यप्रेमी दाराशिकोह के मारे जाने के बाद हिन्दू और भ्रातृविरोधी औरंगजेब की कुटिल नीति से असंतुष्ट होकर महाकवि भूषण और मतिराम दिल्ली दरबार से चले गये थे। इनकी काव्य रचनाओं से सिद्ध होता है कि दोनों कवि दाराशिकोह के समर्थक और अत्याचारी औरंगजेब के विरोधी थे। ये भ्रातृद्वय दिल्ली दरबार में शाहजहां और उसके युवराज दारा के साथ कुमाऊं नरेशों के आदर भाव, असीम धन-सम्पन्नता एवं राजनीतिक प्रभुत्व से प्रभावित थे। अतः औरंगजेब की हिन्दू-विरोधी नीति के विरुद्ध हिन्दू-प्रजा को जाग्रत एवं हिन्दू-राजाओं को संगठित करने के राष्ट्रीय अभियान में ये दोनों देशभक्त कवि अपनी कलम-कृपाण लेकर साहित्य क्षेत्र में कूद पड़े थे। उन्होंने कई हिन्दू राज्यों में घूम-घूम कर अपनी वीर रस पूर्ण काव्य कृतियों द्वारा नीतिकालीन कुत्सित कवियों के रसराज श्रृंगार में डूबती-उतरती आत्मविस्मृत जनता में प्रथम बार राष्ट्रीय भावना जाग्रत की। इसी उद्देश्य से मतिराम इधर-उधर भारत के कुछ राज्यों से घूम कर दिल्ली से दूर कूर्माचल के निरापद एवं सर्वसम्पन्न सुरक्षित पर्वत प्रदेश में स्थित कुमाऊं नरेश उद्योतचन्द के दरबार में भी पहुंचे और कुछ दिन बाद उनके छोटे भाई भूषण भी वहां पहुंचे।

उद्योतचन्द सन् 1670 से 1698 तक कुमाऊं के राजा रहे। उस समय श्रीनगर गढ़-वाल में फतेशाह का शासन था। उद्योतचन्द बड़े विद्याव्यसनी और गुणग्राहक थे। भारत के अनेक भागों से कवि और विद्वानों को उनके दरबार में प्रतिष्ठा प्राप्त थी। पांडे कृत कुमाऊं का इतिहास के अनुसार सितारागढ़ के साहू महाराज के राज-कवि मतिराम राजा के पास अल्मोड़ा में आए। उन्होंने राजा की प्रशंसा में निम्नलिखित कविता सुनाई। राजा ने दस हजार रुपये तथा एक हाथी दान में दिया :

पुराण पुरुष के परम दृग दोउ, कहत वेदवानी यूं पढ़ गई।
वे दिवसपति वे निशापति जीत कर काहू की बढ़ाई ना बढ़ गई।
सूर्य के घर में कर्ण महादानि भयो, याहि सोच-समझ चित चिंता से मढ़ गई।।
अब तोहूं राज बैठत उद्योतचंद चंद के कर्ण की किरक करेजों से कढ़ गई।।

ऐसा कहा जाता है कि कोई मदन कवि भी उनके यहां थे जिनसे राजा रुष्ट हो गए और उन्हें देश-निकाले का हुक्म हुआ। कवियों को दरबार में आने से भी रोका गया। तब कविवर मतिराम ने यह कविता लिखकर राज-दरबार में भेजी :

कर्ण के विक्रम के भोज के प्रबन्ध सुनो, किस भांति कविन को आगे लीजियतु है।
कवि मतिराम सभा के राज-श्रृंगार हम, जाके बैन सुन पीयूष पी जियतु है।
एक के गुनाह नरनाह श्री उद्योतचंद, कविन पे ये तो रोष कहा की जियतु है।
काहूं मतवारे एक अंकुश न मान्यो तो, द्विरन दरबारन से दूर की जियतु है।

कहते हैं कि यह कवित्त सुनते ही राजा ने अपना हुक्म वापस ले लिया। पांडेजी द्वारा दोनों कवितायें अशुद्ध उद्धृत की गई हैं। श्री भगीरथ प्रसाद दीक्षित ने अपने ग्रन्थ भूषण-विमर्श में लिखा है कि सितारागढ़ नरेश साहू के राजकवि मतिराम राजा के पास अल्मोड़ा आए और उन्होंने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा की प्रशस्ति में उपर्युक्त कविता पढ़ी। परन्तु उसमें 'दोऊ' के बाद 'अहै' तथा 'कहत' से पूर्व 'भूषण' शब्द छूट गया है। शिवसिंह सरोज में उक्त छन्द भूषण के नाम से नहीं वरन् मतिराम त्रिपाठी के नाम से उद्धृत है, जिसे देखते ही स्पष्ट हो जाता है कि उसमें अशुद्धियां हैं। कविता का शुद्ध रूप निम्नलिखित है :

पूरन पुरुष के परम दृग दोउ जानि, कहत पुरान बेदबानी जोरि रढ़ि गई।
कवि मतिराम दिनपति औ निशापति या दुहुन की कीरति दिशान मांझ मढ़ि गई।
रवि के करन भये एक महादानि यह जानि जिय जानि चिंता चित माहि चढ़ि गई।
तोहि राज बैठत कुमाऊं श्री उद्योतचन्द, चन्द्रमा की करक-करेज हूते कढ़ि गई॥

अर्थात् सूर्य को अपने दानवीर पुत्र कर्ण पर गर्व था। निशापति को ऐसा कोई दानवीर पुत्र उत्पन्न न करने की कसक थी, परन्तु चन्द्रवंशी उद्योतचन्द जैसे दानवीर पुत्र को कुमाऊं के सिंहासन पर बैठते ही निशापति चन्द्रमा के कलेजे की कसक दूर हो गई।

दूसरे कवित्त में भी गतिभंग दोष है। 'करन के विक्रम के भोज के प्रबन्ध सुनो', होना चाहिए तथा 'कहे मतिराम सभा के राज-शृंगार हम' के बदले 'कहे मतिराम राज सभा के शृंगार हम' एवं 'जा के बैन सुन' के बदले 'जाके बैन सुनत' होना चाहिए। पांडे जी द्वारा लिखित 'मनिराम' के आधार पर ही शायद भगीरथ दीक्षित ने भूषण का असली नाम 'मनिराम' लिखा है। उनके कथनानुसार चूंकि साहू महाराज के दरबारी कवि केवल भूषण ही थे अन्य कोई नहीं, अतः 'मनिराम' हमारे चरित-नायक भूषण का वास्तविक नाम था। यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है।

डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने अपने लेख-संग्रह मकरन्द में, शायद पांडे जी के ही आधार पर, भूषण का नाम पतिराम बताया है। परन्तु अब अलंकार पंचशिका काव्य ग्रन्थ के प्राप्त होने पर (जो महाकवि मतिराम ने सन् 1708 से पूर्व राजा उद्योतचन्द के पुत्र ज्ञानचन्द की प्रशस्ति में लिखा है) महाकवि मतिराम का कुमाऊं दरबार में राजा उद्योतचन्द और ज्ञानचन्द का राज्याश्रित होना प्रमाणित हो गया है। कवि मतिराम द्वारा कुमाऊं नरेश राजा उद्योतचन्द की प्रशस्ति में सन् 1690 में अलंकार पंचाशिका की रचना की। यथा

उत्तर तपत तेज तपत 'उद्योतचन्द', ताको नन्द 'ज्ञानचंद' मूरति मनोज है।
कवि मतिराम नव निधन निधानं जाको विविधि विधान जो विलसत रोज है।
जैसो जो चहत ताहि वैसाहि दिखाइ देत, हेतु हूक परत न देखो करि खोज है।
बैरि कहै वाड़व विडौजा कहै बड़े जन, मामा कहे भामिनी भिखारी कहे भोज है।

साहस को सागर सुमेरु सरदारन की समर को सदन मदन बनितान को।
कवि मतिराम वह देव द्विज दीनन को कंचन बरस अस महिप पुरान को।
गजन गनी मन को रंजनगुनीमन को दान देन हार जग षोड़स विधान को।
ज्ञानिन को गुरु 'ज्ञानचंद' चन्द्रवासिन को, वासो सुभटन को टीको 'हिन्दुस्रान' को।

सहज शिकार खेले पुहुमि पहार पति भार रहो यतन गढ़ द्वार सों लपटि के।
कहे मतिराम नाद सुनत नगारन को नगन के गढ़पति गढ़ से निकरि कै।
साहे दलवृन्द में गयन्द पर 'ज्ञानचंद' परवत विजन्द रही सोभा ऐसी बढिकै।
मेरे जान मेघन के ऊपर अमारि कसि मघवा मही को सुख लेन आयो चढिकै। □

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तराई-भाबर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

नित्यानंद मिश्र

तराई और भावर के प्रान्त प्राचीन काल से ही पर्वतीय राज्यों के अविच्छिन्न अंग रहे हैं। नेपाल, कूर्माचल, गढ़वाल एवं हिमाचल प्रदेश के ऊँचे पहाड़ों के तटवर्ती मैदानी भाग पर्वतीय कृषक की अमूल्य थाती रहे हैं। भावर क्षेत्र औसतन 500 मीटर ऊँचे है। इसका निर्माण दक्षिण की ओर बहने वाली अनेक तीव्रगामी नदियों द्वारा तलहटी पर निक्षेपण किये वोल्डर, पत्थर, वालू आदि से हुआ है। भावर का ढाल तीव्र है तथा बड़े एवं भारी पदार्थों से निक्षेपित है। भावर की भूमि में पर्वतों से उतरने वाला समस्त जल प्रवाह भूमि-गत हो जाता है, अतएव यहाँ जल अधिक गहराई में मिलता है। तापमान एवं मिट्टियों की दृष्टि से इस क्षेत्र में सदा उन्नत कृषि हुई। प्रचुर वन यहाँ की अमूल्य प्राकृतिक संपदा हैं। तराई कूर्माचल का सबसे निचला तथा दक्षिणी क्षेत्र है। बारीक एवं सूक्ष्म पदार्थ एवं वालू तराई क्षेत्रों के निर्माण में सहायक हुए। यहाँ जल की प्रचुरता है। भाबर क्षेत्र में लुप्त हुआ जल तराई क्षेत्र में सतह पर प्रकट हो जाता है और प्रायः दलदली परिस्थिति पैदा कर देता है। यहाँ का तापमान एवं उपजाऊ मिट्टी कृषि के लिये अनुकूल है।

तराई का उर्वर प्रदेश कूर्माचल में मध्य देश के नाम से प्रसिद्ध था। मध्य देश का विगड़ा रूप मधेशिया आज भी प्रयोग में आता है। इसी को मढ़ौ की माल भी कहते थे (मढ़ौ भी मध्य देश का अपभ्रंश लगता है)। वैसे सर्वसाधारण इस प्रान्त को माल कहते हैं। कुछ विद्वान माल को फारसी शब्द महाल का रूपान्तर मानते हैं। यही माल कूर्माचली इतिहास में चौरासी माल या नौलखिया माल के नाम से प्रसिद्ध रहा। चौरासी कोस लम्बा होने के कारण यह चौरासी माल कहलाया और इसे नौ लाख रुपया लगान प्राप्त होने के कारण नौलखिया माल कहा गया। चौरासी माल की सीमा पूर्व में पूरनपुर, जिला पीलीभीत की शारदा नदी तक तथा पश्चिम में पीला नदी के पास राचगुर (जसपुर एवं रामगंगा के बीच) के निकट तक थी। इसके उत्तर में भाबर की उखड़ भूमि तथा दक्षिण में मैदानी भागों की (विशेष कर कठेड़ की) थी। कूर्माचल नरेश महाराज रुद्रचन्द देव (1567-1597 ई०) के काल में निम्नलिखित खण्ड चौरासी माल में सम्मिलित थे : (1) सहजगीर (जसपुर का पुराना नाम), (2) काशीपुर या कोटा (वर्तमान काशीपुर), (3) मुंडिया (वर्तमान बाजपुर), (4) गदरपुर, (5) बोक्सार (रुद्रपुर, किदमपुरी), (6) बक्शी (नानकमता), तथा (7) चिन्की (बिल्हरी, सरवना)।

हैहयवंशी कार्यवीर्य के वंशजों ने लम्बे समय तक (ईसा की लगभग चौथी सदी से दसवीं सदी तक) कूर्माचल, गढ़वाल, कठेड़ (वर्तमान रुहेलखण्ड) में राज्य किया। समुद्रगुप्त के प्रयाग वाले शिलालेख में कर्तृपुर (कार्तिकेयपुर) का उलेख मिलता है। एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में 1898 ई० में सी. एफ. स्ओल्डहैम ने सप्रमाण यह सिद्ध किया है कि कर्तृपुर वर्तमान कार्तिकेयपुर (कत्यूर) है। यहाँ के वैभवशाली शासकों का राज्य पश्चिम में सतलज नदी से पूर्व में गण्डक नदी तक, उत्तर में कूर्माचल-गढ़वाल से लेकर दक्षिण में कटेड़ (रुहेलखण्ड), तक फैला हुआ था। सम्पूर्ण तराई भाग इसी राज्य के अन्तर्गत था। 1844 ई० में इस भाग का बंदोबस्त अंग्रेजों के शासन काल में जे. एच. बैटन द्वारा किया गया, जिन्होंने एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल के एक लेख में लिखा, "I see no reason for doubting that the Tarai Throughout its whole extent

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

formed integral part of the Kuthoor kumaun Raj."

हुएन सांग-वर्णित गोविषाण राज्य : 634 ई० में प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएन सांग थानेश्वर से श्रुघ्न (वर्तमान सहारनपुर) होता हुआ बिजनौर के पास मडावर आया। वहाँ से मयूर अथवा मायापुर (हरद्वार) आया। वहाँ से ब्रह्मपुर राज्य से होता हुआ गोविषाण आया। फिर पांचाल प्रदेश में अहिच्छत्र की ओर गया। गोविषाण राज्य का पूरा वर्णन चीनी यात्री ने लिखा है। कनिंघम ने गोविषाण को वर्तमान काशीपुर के पास उज्झियानी (द्रोण सागर) के निकट स्थित बतलाया है। सम्पूर्ण तराई एवं पीलीभीत जिला इस राज्य के अन्तर्गत आते थे। एटकिन्सन गोविषाण को काशीपुर से 22 मील दूर ढिकुली के पास बतलाते हैं। पुरातत्व संबंधी अन्वेषण के लिये तराई का प्रान्त बहुत महत्त्वपूर्ण है। चीनी यात्री लिखता है कि गोविषाण नगर के पास दो बौद्ध मठ थे, जिनमें 100 भिक्षु हीनयान का अध्ययन करते थे। एक देव मंदिर भी था। नगर के पास एक बड़े मठ में अशोक का बनवाया हुआ स्तूप था। यह स्मारक सम्राट अशोक ने इसलिये बनवाया कि यहाँ पर भगवान बुद्ध ने स्वयं एक महीने तक धर्मोपदेश दिया। चीनी यात्री लिखता है कि नगर एक ऊँची जगह पर बसा है तथा इसके चारों ओर लताकुंज एवं सरोवर हैं। यहां की आबादी घनी है और अधिकांश लोग ब्राह्मण-धर्म का पालन करते हैं। इसी नगर के पास वह स्थान भी है, जहाँ शाक्य मुनि से पूर्व चार बुद्ध रहते थे। इसी स्थान के पास दो और स्तूप हैं जिस में भगवान बुद्ध के नख और केश रखे हैं (उत्खनन कार्य द्वारा इन स्तूपों का पता लगाया जा सकता है) रामनगर के पास ढिकुली के प्राचीन अवशेष बड़े महत्त्वपूर्ण हैं।

इसी ढिकुली का प्राचीन नाम विराटपत्तन या विराट नगर था। पश्चिम की ओर लालढांक चौकी के पास पाण्डुवाल में प्राचीन नगर के अवशेष मिलते हैं। पाण्डुवाल के पास ल्यूनी सोत प्राचीन ध्वंसावशेष हैं। नजीबाबाद से 6 मील उत्तर-पूर्व में मोरध्वज का दुर्ग है, जहाँ बौद्ध-कालीन अवशेष हैं। रामपुर और नैनीताल के बीच चतुर्भुज के पास जानार तथा ककरोला नदियों की बीच की भूमि में भी प्राचीन अवशेष प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। काशीपुर में उज्झियानी के पास मौर्य एवं कुषाण कालीन अवशेष मिले हैं। 1934 ई० में लेखक ने स्वयं इन क्षेत्रों का दौरा किया तथा इन प्राचीन अवशेष की ओर उत्तर प्रदेश हिस्टोरिकल सोसायटी का ध्यान आकर्षित किया था। फलस्वरूप भारतीय पुरातत्त्व विभाग द्वारा यहाँ कुछ स्थानों में उत्खनन कार्य भी किया गया। उज्झियानी के पास द्रोण सागर है जो कौरव-पाण्डवों के गुरु द्रोणाचार्य का आश्रम था। ढिकुली के निकट गर्जिया चौड़ के पास सीतामढ़ी है जहाँ प्राचीन अवशेष मिलते हैं। इन अवशेषों तथा हुएन सांग के वर्णन से ज्ञात होता है कि तराई प्रान्त में उर्वरा भूमि के कारण धन-संपदा प्रचुर मात्रा में थी। ईसा की सातवीं सदी में यहाँ घनी आबादी थी, लोग सीधे-सादे धर्म-निष्ठ एवं साहित्यप्रेमी थे तथा कृषि होती थी।

दसवीं सदी में सूर्यवंशी कत्यूरी शासकों के वैभव का सूर्य अस्त होने लगा था। केन्द्रीय सत्ता क्षीण होने पर कूर्मांचल एवं अन्य स्थानों में माण्डलिक सामन्तों की शक्ति बढ़ने लगी। छोटे-छोटे दुर्गों के अधिपति बन कर ये सामन्त आस-पास के गांवों से लगान वसूल करने लगे। अराजकता, कुव्यवस्था, कुप्रबंध के कारण अशान्ति बढ़ी। तराई-भाबर के प्रान्तों में भी इस विषम परिस्थिति का प्रभाव पड़ा। लहलहाते खेत अरण्य प्रदेश में परिवर्तित हो गए जो भयंकर पशुओं एवं दुर्दान्त दस्युओं के आश्रयस्थल बन गए।

चन्द राज्य का उदय : इस अराजकता के समय कूर्मांचल के पूर्वी अंचल में चम्पावत के निकट एक नयी शक्ति का उदय हुआ। यह शक्ति थी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काशी ... वाचनालय अस्सी—वाराणसी

प्रयाग के निकट झूंमी या प्रतिष्ठानपुर के चन्द्र-वंशी क्षत्रियों की । इस वंश का संस्थापक सोमचन्द था जिसका विवाह कत्यूरी राजा वैंचल देव की पुत्री से हुआ था। विवाह में सोमचन्द को 15 वीसी जमीन काली कुमाऊँ में और तराई-मावर में मढौ की माल दहेज में मिली। सोमचन्द्र के वंशजों ने कूर्मांचल में लगभग 1105 ई० तक राज्य किया । इस लंबी अवधि में केवल 200 वर्षों तक सत्ता खसों के हाथ में रही। किन्तु 1130 ई० के लगभग इसी वंश के वीरचन्द देव ने कन्नौज से आकर अपने पूर्वजों का राज्य खसों से छीन लिया । इस बीच कन्नौज में बड़ी उथल-पुथल हुई। 1194 ई० में कुतुब्उद्दीन ऐबक ने कन्नौज के शासक जयचन्द्र को पराजित किया। सारे अन्तर्वेद में इस्लामी राज्य स्थापित हो गया। बैसवाड़े के ठाकुर एवं ब्राह्मण इस नव-निर्मित चन्द राज्य में आकर बसे और वहीं के हो कर रह गये । इस संक्रमण से चन्द राज्य का बल बढ़ा। धीरे-धीरे इस नवीन शक्ति ने माण्डलिक सामन्तों को पराजित कर कूर्मांचल में केन्द्रीय सत्ता को दृढ़ किया। सोमचन्द्र की सैंतीसवीं पीढ़ी में कीर्तिचन्द देव (1488-1503) ने कत्यूरी मांडलिक सामन्त को लखनपुर (पाली पछाऊँ) में पराजित कर, कोटा-मावर एवं कोटुली से लेकर जसपुर तक चन्द्र राज्य का विस्तार किया। यह पहला चन्द शासक था जिसने तराई-माबर में प्रवेश किया। कीर्तिचन्द से पूर्व गरुड़ज्ञानचन्द के समय (1431-1476) संमल के सूबेदार ने तल्ला देश में मढ़ौं की माल पर अधिकार किया। पर राजा के वीर सेनापति नीलसिंह कठायत ने सूबेदार को पराजित किया और तल्ला देश में चन्द सत्ता कायम की।

राज्य के विस्तार होने पर बालो कल्याणचंद के समान चम्पावत से हटा कर राज्य के मध्य माग अल्मोड़ा में, 1563 में, राजधानी बनायी गई। बालोकल्याणचन्द के पुत्र रुद्रचन्द देव (1565-1598) ने तराई-माबर की ओर विशेष ध्यान दिया। वह मुगल सम्राट अकबर का समकालीन था। समस्त उत्तरी भारत में मुगल सत्ता का प्रसार हो रहा था। 1569 ई० में लखनऊ के सूबेदार हुसैन खाँ टुकड़िया ने नैपाल की तराई की ओर बढ़ना शुरु किया। रुद्रचन्द्र के मामा रैंका राजा हरिमल्ल ने सेती नदी के पास जुरायल, अजमेरगढ़, दुंदोलधुरा में हुसैन खाँ का कड़ा विरोध किया। लूट-पाट कर हुसैन खाँ शाहजहाँपुर की ओर लौटा, पर उसने लौटती सेना को नैपाली वीरों ने बहुत हानि पहुंचाई। इसी समय हुसैन खाँ ने 1575 में सारे तराई-माबर को रौंदते हुए पूर्वी दून में बसन्तपुर को लूटा। इसी समय रुद्रदेव चन्द अपनी सेना लेकर तराई प्रान्त में आए। तराई प्रदेश पर्वतीय राज्य की अमूल्य संपदा थी। और उसकी सुरक्षा अनिवार्य थी। हुसैन खाँ टुकड़िया के अत्याचारों से हिन्दू प्रजा त्राहि-त्राहि कर उठी। दूरदर्शी एवं उदार अकबर ने उसे आगरा बुलवा लिया। किन्तु मुरादाबाद की ओर से जो मुगल अधिकारी तराई की ओर बढ़ रहे थे, रुद्रचन्द ने उन्हें मार भगाया। इस पर आगरा से सेना मुगल अधिकारियों की सहायता के लिये मुरादाबाद एवं संभल में आई। यह कूर्मांचल के लिये बड़ी विषम स्थिति थी। भीषण नर-संहार को बचाने के लिये दूरदर्शी रुद्रचन्द ने संभल के अधिकारी के समक्ष मल्लयुद्ध का प्रस्ताव रखा। दाँव पर तराई प्रान्त रखा गया। स्वयं रुद्रचन्द अखाड़े में उतरे और उन्होंने क्षण भर में अपने प्रतिद्वन्द्वी को पछाड़ दिया। इस प्रकार भीषण नर-संहार बचा लिया गया और तराई प्रान्त भी वापस ले लिया। पर रुद्रचन्द को इससे संतोष नहीं हुआ। आये दिन मुगलों के छापे तराई पर पड़ते रहते थे। रुद्रचन्द ने स्वयं अकबर से भेंट करने का निश्चय किया। इस भेंट का वर्णन अब्दुल कादिर बदायूंनी, फरिश्ता, अबुलफजल तथा राजकुमार सलीम ने अपनी पुस्तकों में किया है।

राजा टोडरमल के पुत्र द्वारा यह भेंट लाहौर में कराई गई। अकबर रुद्रचन्द के तेजस्वी व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुआ। उसने रुद्रचन्द

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से नागौर लेने में सहायता माँगी । रुद्रचन्द ने वल-वुद्धि से नागौर जीत लिया । अकबर ने प्रसन्न होकर उसे चौरासी माल की सनद दे दी। रुद्र चन्द्र ने तराई का शासन प्रवंध दृढ़ किया । बोक्सार खण्ड में अपने नाम से प्रसिद्ध रुद्रपुर नगर की नींव डाली और एक मजबूत किला बनाया । राजा के एक अधिकारी काशीनाथ अधिकारी ने कोटा खण्ड में वर्तमान काशीपुर की नींव डाली । तराई की व्यवस्था में काशीनाथ अधिकारी तथा उसके वंशजों ने बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी । ये अधिकारी ग्राम रतगल, पट्टी अठ्ठागुली, पर्गना बारामंडल के रहने वाले थे और चन्द राजाओं के तराई-भावर में तहसीलदार थे । पुराने दस्तावेजों एवं ताम्रपत्रों के आधार पर काशीनाथ अधिकारी (काशीपुर के संस्थापक) के वंशज श्रीनाथ तथा शिवनाथ थे । कोटा-भावर में शिवनाथपुर गांव के स्वामी बाजबहादुर चन्द एवं उद्योतचन्द के अनेक ताम्रपत्रों में इनका नाम मिलता है । शिवनाथ के पुत्र परमानंद अधिकारी कल्याण चन्द के समय 1744 में मुनेस (मधेस) मध्यदेश तराई के तहसीलदार थे । इन्हीं के वंशज रामदत्त अधिकारी कोटा के गवर्नर थे । इन्हीं के समय रुहेला आक्रमण हुआ । इनके पुत्र कृष्णानंद अधिकारी अंग्रेजों के समय (1816 में) गंगोली में पटवारी थे । सिगौली के संधि के बाद इन्होंने अंग्रेजों को तराई पर एक अमूल्य विवरण दिया जिससे 1744 ई० में तराई की आमदनी पर प्रकाश पड़ता है । 1744 में यह ब्यौरा तराई के सात खंडों में से तीन खंडों का है । तीन खंडों की सालाना आमदनी कुल 4,25,251 रुपये थी । इन्हीं अधिकारियों ने प्राचीन दस्तावेजों की सहायता से अंग्रेज अधिकारियों को 1844 ई० में तराई का बंदोबस्त करने में मदद दी थी ।

रुद्रचन्द के बाद उसके पुत्र लक्ष्मीचंद ने मुगल सम्राट जहाँगीर से भेंट की, जिसका वर्णन तुजुक जहाँगीरी में मिलता है । त्रिमल्ल चन्द के समय में भी तराई का प्रवंध अच्छा रहा, पर उसके बाद ठाकुरद्वारा की ओर से कठेड़ी राजाओं ने तराई की ओर वढ़ना प्रारंभ किया । त्रिमल चन्द के पुत्र बाजवहादुर चन्द (1638-1678) के समक्ष यह विषम स्थिति आयी थी । इन कठेड़ियों की सहायता मुरादाबाद के मुगल अधिकारी करते थे । बाजबहादुर चन्द ने मुगल सम्राट शाहजहाँ से भेंट की । काबुल कन्दहार के अभियान में उन्होंने मुगल सम्राट की सहायता की थी । शाहजहाँ ने प्रसन्न होकर मुरादावाद के संस्थापक नवाव रुस्तम को आदेश दिया कि कठेड़ियों के विरुद्ध बाजवहादुर को सहायता दी जाए । कठेड़ियों का बढ़ना रोका गया तथा तराई में फिर से सुव्यवस्था स्थापित हुई । इसका रोचक वर्णन कल्याण चन्द्रोदय काव्य के दूसरे सर्ग में मिलता है । तराई की व्यवस्था दृढ़ करने में बाजबहादुर को बाड़ा खोड़ा, भीमताल के पं० विश्वेश्वर पाण्डे ने सहायता दी । द्वारका दास कायस्थ रमा पंडित, श्रीनाथ, जगन्नाथ एवं रामभद्र उनके प्रमुख सहायक थे । इसी दौरान मुंडिया में एक और नगर की नींव पड़ी जिसका नाम बाजवहादुर के नाम पर वाजपुर रखा गया ।

पं० विश्वेश्वर पाण्डे ने अपनी योजना को सफल बनाने के लिये रुद्रपुर को अपना केन्द्र बनाया । जंगल काटकर कृषि के लिए भूमि तैयार की गई तथा धान, ईख, गेहूँ, तिल एवं सरसों की खेती करवाई गई । जहाँ पानी का अभाव था, वहाँ नदी, नहर एवं गूलों द्वारा सिंचाई करवाई गई । पर्वतीय भागों से कृषकों बुलवा कर भूमि दी गई । सड़कों पर सुरक्षा के लिये स्थान-स्थान पर दुर्ग बनवाये व उनमें सैनिक रखे गए । पंजाब तथा जम्मू से सैनिकों की भर्ती की गई । सैनिकों के वेतन का भुगतान करने के लिये प्रजा से उपज का छठा भाग लिया गया । हैड़ियों को चौरासी माल की सीमा पर सुरक्षा के लिये रखा गया । शान्ति व सुरक्षा स्थापित होने पर पैदावार बढ़ी और चन्द राज्य की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आर्थिक दशा सुधरी। उन दिनों चन्द राज्य के अधिकारी मद्रपुर, बाजपुर एव काशीपुर में रहते थे। गर्मियों के दिनों में वे भीमताल के पास बटोश्वर या कोटा-भावर में देवीपुर अथवा शिवनाथपुर आ जाते थे।

कल्याण चन्द (1730-47) के समय तराई भावर में रुहेला सरदार मुहम्मद खाँ के आक्रमण हुए। इस समय रुद्रपुर में गवर्नर झिझाड़ के शिवदेश जोशी थे। इस वीर स्वामिभक्त अधिकारी ने चार युद्धों में रुद्रपुर, विजयपुर (भीमताल), गगास (कँड़ेरी) तथा द्वाराहाट में रुहेला सेना का सामना किया, हारा, पर इस वीर ने घुटने नहीं टेके। अन्तिम निर्णायक युद्ध भीमताल के पार बाड़ाखोड़ा में, 1745 में हुआ था जिसमें रुहेले पूर्णतः पराजित हुए और तराई-भावर से रुहेला सेना हटायी गई। शिवदेव जोशी तथा उनके बांधव हरीराम जोशी ने तराई का प्रबंध सुदृढ़ किया। रुहेला सरदार हाफिज रहमत खाँ नजीबुद्दौल्ला से मैत्रीपूर्ण संबंध रखे गए। मुगल सम्राट से भी सौहार्द भाव रखा गया। पर अवध के नवाब सफदर जंग की लोलुप दृष्टि सरबना पर थी। शिवदेव जोशी ने अवध की सेना का विरोध किया। इस युद्ध में घायल होने पर शिवदेव बंदी बनाये गए तथा दो साल तक फैजाबाद में कैद रहे। अन्त में मुगल सम्राट के हस्तक्षेप करने पर वे मुक्त हुए। इन्होंने फिर सरबना पर अधिकार कर लिया। लगभग 17 साल तक इस वीर और चतुर राजनीतिज्ञ ने इतनी दक्षता से तराई का प्रबंध किया कि सभी इतिहासकार मुक्तकंठ से उसकी प्रशंसा करते हैं। सन 1764 में इस योग्य अधिकारी की काशीपुर में हत्या हो गई। इसी तिथि से कूर्माचल में चन्द सत्ता का ह्रास प्रारम्भ हुआ और तराई की व्यवस्था पर इसका हानिकारक प्रभाव पड़ा।

शिवदेव की मृत्यु के बाद मनोरथ जोशी एवं जयकृष्ण जोशी ने तराई की व्यवस्था देखी, पर अल्मोड़ा में पद व शक्ति प्राप्त करने के लिये षड्यंत्रों एवं हत्याओं का ऐसा सिलसिला बंधा कि तराई से चन्द सत्ता उठ गई। शिवदेव के सहायक मुंडिया (बाजपुर) के निवासी शिरोमणिदास के पुत्र नन्दराम ने सुअवसर देखकर तराई पर अपना अधिकार कर लिया। अपनी स्थिति सुरक्षित करने के लिए इस व्यक्ति ने तराई को अवध के नवाब शुजा उद्दौल्ला को सौंप दिया और स्वयं नवाब का इजरारदार बनकर तराई का प्रबंध करने लगा। 1802 ई० में, लार्ड वैलेजली के समय अवध के नवाब ने सहायक संधि के अनुसार गोरखपुर एवं रुहेलखंड अंग्रेजों को सौंप दिए। रुहेलखण्ड के साथ ही तराई का प्रान्त भी अंग्रेजों के हाथ आ गया। उस समय नन्दराय के भाई हरगोविन्द के पुत्र शिवलाल तराई के आमील थे। कीर्ति चंद, रुद्रचंद व बाजबहादुर चंद के प्रयत्नों से अर्जित तथा विश्वेश्वर पाण्डे, शिवदेव जोशी व हरिराम जोशी जैसे कुशल प्रबंधकों से पोषित तराई इस प्रकार कुचक्र और षड्यंत्र के फलस्वरूप अंग्रेजों के हाथ में आ गई और इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय समाप्त हुआ। □

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परमपूज्य सोमवारी महाराज

वद्री साह ठुलघारिया

पूज्य सोमवारी महाराज का प्रादुर्भाव उन्नीसवीं सदी के अन्त में कूर्मांचल में हुआ तथा बीसवीं सदी के दूसरे दशक तक वे घर-घर प्रसिद्ध हो गए। महाराज उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त के पिण्डदादन नामक स्थान के रहने वाले थे। उनके पिता ब्रिटिश शासनकाल में सीमा प्रान्त में सेशन्स जज थे। सम्पन्न परिवार में जन्म लेने पर भी उनका मन सांसारिक माया-मोह में नहीं रमा। विरक्त हो, बचपन में ही अपनी जन्म भूमि छोड़कर, गुरु एवं ज्ञान की खोज में हिमालयी गिरिकन्दराओं में भ्रमण करते हुए, भीमताल के निकट पदमपुरी नामक स्थान को इन्होंने अपना साधना-स्थल बनाया। उन दिनों यहां गहन अरण्य थे। ठंड इतनी अधिक थी कि पास में बहने वाली नदी का जल जाड़ों में जम कर ठोस हो जाता था। पदमपुरी में श्री सोमवारी महाराज का आश्रम घने जंगल के बीचो-बीच, ऊंचे पर्वत शिखरों की तलहटी में स्थित, तीन पहाड़ी नदियों के संगम पर था। पर्वतों से घिरे रहने के कारण यहां धूप कम रहती थी। जंगल में बाघ आदि हिंसक जानवरों का बाहुल्य था। आश्रम के ठीक ऊपर एक खेत पर एक छोटा बुर्ज था, जिस बैठ कर साधक को अपूर्व आध्यात्मिक शान्ति मिलती थी। इसी स्थल पर सोमवारी महाराज ने एकान्त साधना की थी।

महाराज स्वयं बतलाते थे कि पदमपुरी बहुत ही पवित्र स्थल है तथा यहां एक सिद्ध पुरुष रहते थे। एक बार जाड़ों में जब चारों ओर हिमपात हो रहा था, तो पदमपुरी आश्रम के अधिष्ठाता उस सिद्ध पुरुष ने सोमवारी महाराज को दर्शन दिए थे। सम्भवत: यही सिद्ध पुरुष उनके गुरु थे। पदमपुरी सोमवारी महाराज का प्रमुख आश्रम था। गर्मी में महाराज कोसी के तट पर स्थित काकड़ी घाट चले जाते थे, जो बहुत गर्म स्थान है। काकड़ीघाट आश्रम में भयंकर विषधर घूमते थे और बन्दरों का उत्पात मचा रहता था। कोसी में बड़ी-बड़ी मछलियां थीं, पर महाराज के कड़े आदेश थे कि उन्हें कोई न तो मारे और न ही छेड़े। प्रेम और अहिंसा में महाराज का अटल विश्वास था।

सैकड़ों की संख्या में दूर-दूर से लोग सोमवारी बाबा के दर्शनार्थ आते थे। आश्रम में दो धूनियां सदा प्रज्वलित रहती थीं—एक ऊपर की और दूसरी नीचे की ओर। सभी भक्तजन नीचे वाली धूनी के पास बैठते थे। भक्तों के आने पर बन्दरों का समूह आस-पास के पेड़ों से उछलता-कूदता आता और उनकी चीजें उठा ले जाता। परन्तु कुछ देर बाद बन्दर स्वयं उन वस्तुओं को यथास्थान रख जाते थे। एक बार एक काला विषधर नाग आकर निचली धूनी के चारों आर घूमने लगा। दर्शक भयभीत हो कर भागने लगे। कुछ के मन में उसे मार देने का विचार आया। पर ऊपर की धूनी पर बैठे महाराज ने कहा, "इसे मत मारो"। उन्होंने सर्प से कहा, 'जाओ, शंकर बाबा, अब बहुत हो गया'। सर्प रेंग कर जंगल की ओर चला गया।

उन दिनों रानीखेत छावनी में ब्रिटिश सेना की एक पूरी ब्रिगेड गर्मियों में रहा करती थी। गोरे सैनिक एवं उनके अफसर अवकाश के समय कोसी नदी में मछली मारने आया करते थे। एक दिन फौज ने एक बड़े अफसर को गांव वालों ने बतलाया कि कुछ दूर आगे काकड़ी घाट में मन्दिर के पास बड़ी-बड़ी मछलियां मिलती हैं। उस अंग्रेज अधिकारी ने तुरन्त काकड़ी घाट के पास अपना पड़ाव डाला और दूसरे दिन मछली के शिकार की योजना बनाई। मन्दिर के पास वाला कोसी का क्षेत्र महाराज द्वारा वर्जित था,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह बात साहब को ज्ञात नहीं थी। सारा दिन काँटा-डोर-बलसी लिए साहब नदी किनारे बैठे रहे, पर एक भी मछली कांटे में नहीं फंसी। बड़ी-बड़ी मछलियां आतीं, चारा खा जातीं पर कांटे में एक भी नहीं फंसती। संध्या के समय साहब जंगल की ओर गए और एकान्त में सोचने लगे। बड़ी आश्चर्यजनक बात है। मछलियां आईं, चारा खा गईं, पर फंसी एक भी नहीं ? साहब विचारवान् व्यक्ति थे, अतः सोचा कि इस घटना का कोई अहैतुक कारण अवश्य है। उन्होंने पास-पास लोगों से पूछा, "क्या इस मन्दिर के पास कोई साधु बाबा रहते हैं !" लोगों ने बतलाया, "मन्दिर से पूर्व एक कुटिया में एक सिद्ध महात्मा रहते हैं"। वे उसी समय अपने कुछ आदमियों में साथ सोमवारी महाराज के दर्शन करने उनकी कुटिया में पहुंचे। एक कर्मचारी द्वारा महाराज के चरणों में भेंट रखने के लिए कुछ रुपए भिजवाए। कर्मचारी ने जब भेंट महाराज के चरणों में रक्खी तो वे बोले, "भाई, अपने साहब से कहो कि फकीर को पैसे से क्या वास्ता। इन रुपयों की मिठाई मंगवाओ और मछलियों को खिला दो"। साहब ने तुरन्त अपने आदमियों द्वारा पास की दुकान से मिठाई मंगवाई। एक आदमी ने कुछ मिठाई नदी में डाली, पर एक भी मछली ने उसे नहीं खाया। वे आतीं, सूँघकर चली जातीं। आदमी ने महाराज से कहा, "कोई मछली मिठाई खाने नहीं आयी।" महाराज ने कहा, "अपने साहब से कहो कि सच्चे दिल से ईश्वर का नाम लेकर खुद मिठाई डालें—मछलियां जरूर ही उसे खाएंगी।" साहब ने सच्चे दिल से ईश्वर की प्रार्थना की और मिठाई नदी में डाली। तुरन्त सैकड़ों छोटी-बड़ी मछलियां बड़े वेग से मिठाई पर झपटीं। उनके झपटने का वेग इतना शक्तिशाली था कि नदी में सैलाब-सा आ गया। लहरें किनारे की ओर इतने वेग से आयीं कि मिठाई की थालें डूब गयीं और किनारे खड़े हुए साहब तथा उनके आदमियों के कपड़े भीग गए। क्षण भर में मछलियां मिठाई चटकर गयीं और नदी में गायब हो गयीं। महाराज के अनन्य ईश्वर प्रेम और जीवों के प्रति अगाध अनुकम्पा का साहब पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसी समय उसने आजीवन शिकार न खेलने की प्रतिज्ञा की और जब तक रानीखेत रहा, महाराज के दर्शन हेतु नियमित रूप से काकड़ीघाट आश्रम मे आता रहा।

जिन भक्तों तथा सेवकों को महाराज का सान्निध्यलाभ प्राप्त हुआ है, वे बतलाते हैं कि महाराज का तपोबल एवं योग प्रभाव अलौकिक तो था ही, उनकी दिनचर्या भी ऋषि-मुनियों की भांति थी। नित्य प्रातःकाल योग, ध्यान तथा जप से निवट कर आठ बजे महाराज कुटिया के द्वार खोलते थे। उसी समय दर्शक भी स्नान, संध्या, पूजन कर उनके आश्रम में आते थे। महाराज उन्हें तुलसीदल मिश्रित मिठाई देते थे। थोड़ी देर में आश्रम की ओर से जड़ी-बूटी मिली हुई चाय दी जाती थी। फिर महाराज स्वयं नीचे की धूनी में आते थे और दर्शकों से बात करते थे। बीच-बीच में प्रसाद की मिठाई वितरित होती रहती थी। योग-प्रभाव से उन्हें ज्ञात हो जाता था कि कोई अतिथि आ रहा है, तो उसके लिए मिठाई एवं चाय अलग रख दी जाती थी। दिन में 10-11 बजे लोगों को नदी के तीर पर खाना बनाने का आदेश होता था। महाराज स्वयं तट पर तर्पण कर, आसन पर बैठ, माला फेरते थे। तत्पश्चात् हवन करते थे। फिर शंकरभगवानगुदड़ीकेबाबा की समाधि की आरती करते थे। वे जलपान भी नहीं करते थे। दोपहर में डेढ़-दो बजे स्नान करते थे। फिर माला फेरते थे। तब वे एक छटांक बिना दूध व चीनी की चाय लेते थे। उस समय भी भक्तों को प्रसाद वितरित होता था। इसके बाद दर्शक जहां जाना चाहें, जा सकते थे। संध्या गोधूलि के समय सब दर्शकों को संध्या वंदन करने की आज्ञा होती थी। वह आप भी माला फेरते थे। फिर वे अपनी धूनी एवं शंकर भगवान् की आरती करते थे। इसके बाद कुछ समय के लिए

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नीचे की धूनी में आकर भक्तों से बात करते थे। फिर दर्शकों को विभूति लगा कर विदा कर देते थे। आठ बजे के बाद कुटिया में किसी को रहने की आज्ञा नहीं थी। रात्रि में जब सब लोग चले जाते, तब वे अपने लिए डेढ़-दो छंटाक खिचड़ी या आटे की बाटी बनाते थे। इसके भी तीन भाग करते—एक भाग मछलियों को देते, दूसरा भाग अलग रख देते थे न मालूम किस के निमित्त और तीसरा भाग स्वयं ग्रहण करते थे। रात्रि में कितना विश्राम करते थे—कितना जप-ध्यान करते थे, किसी को कुछ पता नहीं। उस समय कोई भी वहां नहीं होता। दूसरे दिन प्रात काल आठ बजे बाद भक्तों को महाराज के दर्शन होते थे।

एक बार बदरीनाथ यात्रा करने महाराज के पिताजी पंजाब से गए। उन्हीं दिनों सोमवारी महाराज भी बदरी विशाल के दर्शन कर ज्योतिर्मठ में टिके थे। महाराज के पिताजी को सहयात्रियों ने बतलाया कि यहां एक सिद्ध महात्मा आए हैं तो वे दर्शनार्थ उनकी कुटिया में पहुँचे। दर्शकों की अपार-भीड़ थी। उनके पिताजी किसी तरह राह बनाकर भीतर गए और जैसे ही चरणों में दण्डवत् करने झुकने लगे, सोमवारी महाराज आसन से उठ गए और स्वयं प्रणाम करने लगे। लोग आश्चर्य चकित, क्योंकि महाराज ऐसा कभी नहीं करते थे। पिताजी भी आश्चर्य चकित थे। वे अपने पुत्र को पहचान न सके क्योंकि महाराज बाल्यावस्था में ही घर छोड़कर हिमालय की ओर आ गए थे। महाराज ने गौर से पिताजी की ओर देखा। कहा कुछ नहीं। उनके पिताजी को तुरन्त ज्ञात हुआ कि यह महात्मा तो मेरा वर्षों से बिछुड़ा पुत्र है। भाव विह्वल होकर उन्होंने महाराज को छाती से लगा लिया और रोने लगे। उन्होंने कहा "बेटा, मुझे तेरे घर छोड़ने का लेशमात्र भी दुःख नहीं है। तूने तो हमारी सात पीढ़ियों का उद्धान् कर दिया। आज मैं धन्य हो गया हूं।" इतना कह कर उन्होंने महाराज को साष्टांग प्रणाम किया और उनके चरणों में 100 रु० रख दिए। महाराज ने कहा, "मुझे तो आपकी भेजी भेंट मिल चुकी है। इन रुपयों से ज्योतिर्मठ में आए साधु-महात्माओं का भंडारा करा दो।" उनके पिताजी धनाढ्य थे, उन्होंने और रुपये लगा कर तीन दिन का भण्डारा करा दिया।

एक बार महाराज काकड़ी घाट में थे। दिन के समय अचानक अपनी धूनी से उठे और नदी के किनारे स्नान कर अंजलि देने लगे और तर्पण करने लगे। लोगों को आश्चर्य हुआ कि महाराज ऐसा क्यों कर रहे हैं? थोड़ी देर में लौटकर उन्होंने बतलाया, "आज मेरे पिताजी की मृत्यु हो गई है, इसलिए तर्पण कर रहा था।" पूरे 10–12 दिनों तक उन्होंने तर्पण किया। कहां पंजाब और कहां काकड़ीघाट, पर उनके अलौकिक योग प्रभाव ने काल व स्थान की दूरी मिटा दी। कुछ समय बाद पंजाब से प्राप्त पत्र से इस घटना की पुष्टि भी हो गई।

सोमवारी महाराज नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। वर्णाश्रम धर्म में उनकी अटूट श्रद्धा थी। नित्य हवन, संध्या-तर्पण, जप-ध्यान करते थे। प्रेम-अहिंसा पर उनका अगाध विश्वास था। जीव-जन्तुओं के अतिरिक्त, समस्त प्राणिमात्र के साथ उनका व्यवहार प्रेममय था। देश-काल के बंधन काटकर उन्होंने कूर्माचल को अपनाया था। यहां के त्यौहारों को भी वे उत्साह से मनाया करते थे। पदमपुरी आश्रम के पास एक जनजाति सौम लोगों की रहती है। ये लोग निर्धन किसान हैं और बड़े परिश्रम से खेती-बाड़ी कर जीवन-यापन करते हैं। इनके साथ महाराज का बड़ा प्रेम था।

अपने जीवन के अन्तिम दो-तीन वर्ष महाराज पदमपुरी आश्रम से बाहर कहीं नहीं गए। एक दिन हवन करते समय उनकी ऊंगली जल गई तो उन्होंने कहा, "अग्नि देव ने शरीर पकड़ लिया है। थोड़े दिनों में अब चोला बदल जाएगा।" इस घटना के कुछ दिनों बाद एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिरन हाँफते हुए आश्रम में आया और महाराज की ओर देखने लगा। महाराज ने कहा, "आज से इस हिरन को आश्रम से प्रसाद तथा दाना-पानी मिलता रहेगा।" सात दिन तक उसे दाना पानी मिलता रहा। आठवें दिन अचानक हिरन ने देह छोड़ दी। महाराज के आदेशानुसार उसको विधिवत् दफना दिया गया। इस घटना के बाद, 1919 ई० की पौष शुक्ल एकादशी को, मध्याह्न स्नान करके महाराज राम-राम जपते हुए अपनी कुटिया में गए और आसन पर पद्मासन लगा कर बैठ गए। जब देर तक आप की समाधि भंग न हुई तो सेवक कुटिया के अन्दर गए। देखा कि सोमवारी महाराज जी की गर्दन झुकी हुई है, शरीर निश्चेष्ट है, नेत्र भृकुटी के बीच निश्चल हैं। पतित पावन सोमवारी महाराज ने योग द्वारा निर्विकल्पक समाधि में पंचतत्व का पुतला छोड़ दिया।

प्रात: स्मरणीय श्री सोमवारी महाराज अद्‌भुत अलौकिक शक्ति-सम्पन्न सिद्ध पुरुष थे। तीस साल तक कूर्माचल, गढ़वाल एवं नपाल में सर्वत्र उनका व्यापक प्रभाव रहा। अन्य प्रान्तों से भी लोग उनके दर्शनार्थ आते थे, पर वे अपने साधना स्थलों को छोड़ कहीं नहीं गए। उनके भक्तजनों ने महाराज से जो अमूल्य थाती पाई, उसका सार-संग्रह इस प्रकार है :

प्रेम संसार का सार है। सोमवारी महाराज को समस्त प्राणिमात्र से प्रेम था। इसी परम प्रेम की पराकाष्ठा उनके अलौकिक चमत्कारों में प्रत्यक्ष थी। उनकी चुटकी भर विभूति से सैंकड़ों भक्तों की उलझनें दूर हो जाती थीं। उनका जीवन मर्यादित एवं अनुशासित था। वे सदबुद्धि, सुमति द्वारा भौतिक एवं आध्यात्मिक सम्पदा अर्जन करने में सफल हुए। इसी प्रेम में उनका दूसरा सिद्धान्त अहिंसा समाया हुआ था। जहां शुद्ध प्रेम है, वहां हिंसा का क्या स्थान ? हिंसा, घृणा व द्वेष उनसे कोसों दूर थे। कुछ लोग कहते हैं कि सोमवारी महाराज बड़े उग्र, तेजस्वी और क्रोधी थे, परन्तु यह बात दर्शकों की भावना पर आश्रित रहती थी। जो जैसी भावना लेकर जाता, वैसा ही रूप महाराज का देखता था। जिस स्तर के दर्शक आते, वे उनसे उसी स्तर की बातें करते। भक्त से भक्ति, ज्ञानी से ज्ञान, योगी से योग, सांसारिक से संसार की बातें करते थे। महाराज ने कुलाचार एवं वर्णाश्रम धर्म पर बहुत जोर दिया। कहते थे इसी से देश तथा समाज की रक्षा होती है। पर साथ ही यह भी कहते थे कि जो वर्णाश्रम धर्म नहीं मानते, उनसे कतई घृणा मत करो। सब धर्मों का समान आदर करो। अपने कर्तव्य को निष्काम रूप से करो। देश-काल की कभी उपेक्षा मत करो। साहस और पौरुष से कभी मुख न मोड़ो। होगा वही जो राम रचि राखा। दुख गाने के लिए योगी-तपस्वी के पास नहीं जाओ। भगवान के सामने हाथ जोड़कर खड़े रहने की अपेक्षा, उसके भक्तों की सेवा करने से अधिक लाभ होता है। (सौजन्य नियत्यानंद मिश्र)

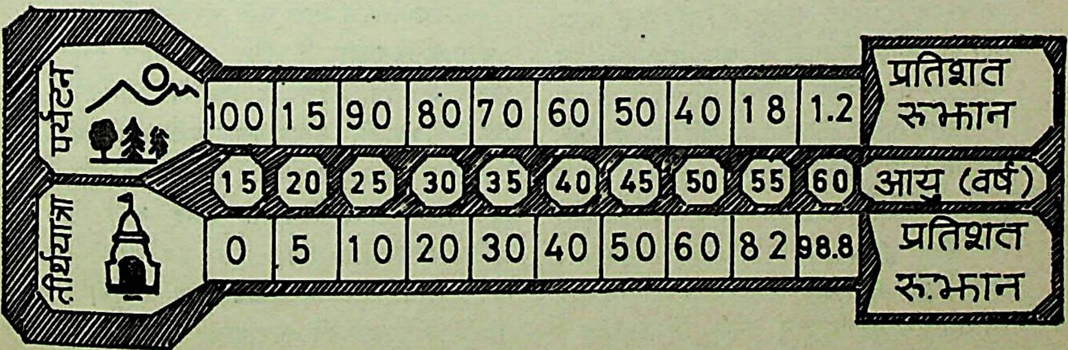

चित्र सन्दर्भ : तीर्थयात्री, पर्यटक और आयु। □

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तीर्थयात्री; पर्यटक और आयु

शंकर

तीर्थयात्री और पर्यटक की मानसिकता निर्धारण करने में आयु की महत्वपूर्ण भूमिका है। आज जबकि पर्यटन एक महत्वपूर्ण व्यवसाय का स्थान धारण कर लिया है तो पर्यटक की मानसिकता का विस्तृत अध्ययन किया जाना वांछनीय प्रतीत होता है।

वास्तव में तीर्थयात्रा व पर्यटन किसी व्यक्ति की दो भिन्न-भिन्न मानसिकताएं हैं, जो कि मूलतः यात्रा की आधारशिला पर खड़ी हैं। बिना भ्रमण न तो तीर्थयात्रा सम्भव है और न ही पर्यटन। इन दोनों की मानसिकता के निर्धारण में सम्बन्धित व्यक्ति की आयु की मुख्य भूमिका होती है। इस तथ्य की पुष्टि गढ़वाल-हिमालय में तीर्थयात्राओं व पर्यटनों पर किए लेखक के शोध-अध्ययन के दौरान हुई। मानसिकता निर्धारण की इस प्रक्रिया को जानने के लिए संक्षेप में तीर्थयात्रा व पर्यटन की विशिष्टता पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

तीर्थयात्रा वास्तव में मानव मस्तिष्क के धार्मिक व दार्शनिक चिन्तन की देन है, जो कि ईश्वर पर आधारित है। अर्थात् तीर्थयात्राएं ईश्वर के निमित्त की जाती हैं। प्रकृति की तमाम अव्यक्त, अविजित प्राकृतिक शक्तियों व गूढ़-रहस्यों—जिनको मानव न तो जीत पाया है और न ही समझ सका है—को ही मानव आदिकाल से ईश्वर के रूप में स्वीकारता आया है। इन तमाम शक्तियों में मृत्यु-भय मानव का सबसे प्रमुख अनबूझा, अव्यक्त एवं अविजित भय है, जिससे आतुर होकर उसने धार्मिक–दार्शनिक चिन्तन प्रारम्भ किया। चिन्तन के इसी क्रम में ईश्वर, पुनर्जन्म, पाप, पुण्य, मोक्ष आदि विचारों का जन्म हुआ, जिनके निमित्त तीर्थयात्राएं प्रारम्भ हुई और जारी रहेंगी। विश्व का कोई भी धर्म हो, तीर्थयात्राएं सभी में प्रचलित हैं और सभी जगह तीर्थयात्रा के मूल में मानव की असमर्थता निहित है। मृत्यु-भय के अतिरिक्त मनुष्य की असीमित इच्छाएं भी हैं, जिनकी पूर्ति में जब वह असमर्थ रहता है तो ईश्वर का सहारा लेता है। यदि मृत्यु-भय से मुक्ति पाने व सभी इच्छाओं की पूर्ति करने में मानव स्वयं सक्षम हो तो ईश्वर का अस्तित्व ही न रहेगा; फलतः तीर्थयात्राएं समाप्त हो जाएंगी।

जहां तक पर्यटन का प्रश्न है, यह सैर-सपाटे, आनन्द, खेल, शिकार, पर्वतारोहण आदि के लिए की गई यात्रा है, जो कि प्राचीन समय से ही प्रचलित रही है। वर्तमान विद्वान पर्यटन को भले ही ओलम्पिक खेलों से प्रारम्भ हुआ मानते हैं, लेकिन सम्भवतः यह सत्य से अधिक निकट नहीं है। पर्यटन मात्र यात्रा नहीं है। वास्तव में पर्यटन न केवल मानव की, बल्कि जीवमात्र की एक विशिष्ट मानसिकता है। प्राणी में सुख-दुख, हर्ष-वेदना आदि जो भी मूल मनोभाव हैं, उनकी पूर्ति व सन्तुष्टि वह न जाने कितने तरीकों से करता है। इन्हीं मनोभावों की सन्तुष्टि के लिए तीर्थयात्रा की ही तरह, पर्यटन भी एक साधन है। सामान्य रूप से तीर्थयात्रा धार्मिक मनोभावों व इच्छाओं की पूर्ति के लिए की जाती है जबकि पर्यटन ऐहिक या दैहिक सुखों पर आधारित है।

तीर्थयात्रा इस लोक और परलोक के पापों व दुखों के निवारण के लिए की जाती है तो पर्यटन वर्तमान जगत के सुखों को भोगने के लिए। तीर्थयात्री, सामाजिक, धार्मिक नियमों में हर वक्त बंधा हुआ रहता है। उसका रहन-सहन, खान-पान, दिनचर्या आदि सभी के निश्चित नियम हैं। दूसरी ओर इन नियमों से पर्यटक पूर्णतः मुक्त है (यदि कुछ कानूनी व राजनैतिक नियमों को अपवादस्वरूप छोड़ दिया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाए तो) पर्यटक स्वतन्त्र है; वह कुछ भी कर सकता है, कहीं भी जा सकता है; किसी भी स्थिति में रह सकता है। वह अपनी इच्छाओं पर निर्भर है। प्राय: प्रर्यटक अपने निर्धारण के लिए स्वतन्त्र हैं लेकिन कुछ ऐसे महत्वपूर्ण प्रेरक भी हैं जो कि उसके निर्धारण को प्रभावित करते हैं। ऐसे प्रेरकों में आयु की महत्वपूर्ण भूमिका है। आयु के कारण पर्यटक तथा तीर्थयात्री के निर्धारण में किस प्रकार परिवर्तन होता है, इसे गढ़वाल हिमालय क्षेत्र में तीर्थयात्रियों और पर्यटकों पर किए शोध अध्ययन पर आधारित चित्रों (पृ. 33 भी देखें) द्वारा स्पष्ट किया गया है।

इन रेखाचित्रों से स्पष्ट है कि तीर्थयात्री व पर्यटक के निर्धारण में आयु की अहम भूमिका है। निश्चित रूप से इसका कारण मानव की मानसिकता है। रेखाचित्रों से विदित होता हैं कि ज्यों-ज्यों व्यक्ति की आयु बढ़ती जाती है, उसकी धार्मिक मानसिकता बढ़ती जाती है। फलस्वरूप तीर्थयात्राओं के प्रति उसका रुझान भी बढ़ता है। इसका एकमात्र कारण व्यक्ति का असमर्थता-बोध और प्रकृति की अविजित शक्तियों तथा गूढ़-रहस्यों के प्रति उसका समर्पण हैं जो कि धार्मिक भावना को बड़ाता है। जैसे-जैसे व्यक्ति की आयु बढ़ती है उसमें शारीरिक अक्षमता बढ़ती है, मृत्यु के सत्य को वह समझने लगता है और ईश्वरीय सत्ता को स्वीकारने लगता है। कारण : इन असमर्थताओं व विवशताओं को जीतने का उसके पास कोई उपाय नहीं है। फलत: व्यक्ति धार्मिक होता जाता है और धार्मिकता की वृद्धि के कारण तीर्थयात्राओं के प्रति झुकाव स्वाभाविक है। गढ़वाल-हिमालय में आने वाले पाँच हजार यात्रियों पर किए गए अध्ययन से यह पता चलता है कि 50 वर्ष से ऊपर की आयु के व्यक्तियों में धार्मिकता अत्यधिक थी। इसके विपरीत, कम उम्र में सहजता से मृत्यु-भय एवं जीवन की अन्य असमर्थताएं व्यक्ति को प्रभावित नहीं कर पातीं, क्योंकि वह स्वयं को प्रत्येक इच्छा की पूर्ति हेतु सक्षम पाता है। आयु बढ़ने के साथ-साथ स्थिति विपरीत होती जाती है।

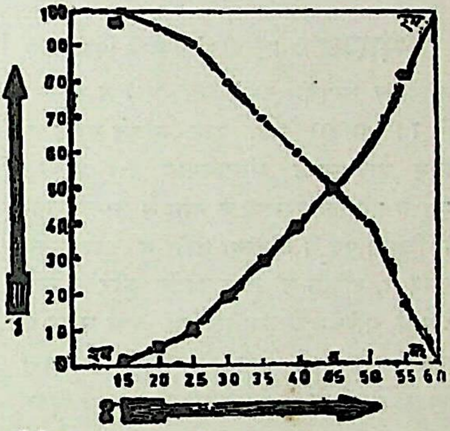

तीर्थयात्रा (ख) तथा पर्यटन (क) के रुझान (1) का आयु (2) से सम्बन्ध

अध्ययन से यह भी स्पष्ट है कि पन्द्रहवें वर्ष में व्यक्ति का घूमने के प्रति सर्वाधिक रुझान होता है और तीर्थयात्राओं के प्रति न्यूनतम। आयु के साथ-साथ यह कम होता जाता है और पचासवें वर्ष में व्यक्ति का पर्यटन व तीर्थयात्रा के प्रति समान रुझान रहता है। यह भी पता चलता है कि पन्द्रह से बीस वर्ष कों आयु तक तीर्थयात्रा के प्रति रुझान धीरे-धीरे बढ़ता है, जबकि पचपन वर्ष की आयु के बाद तीर्थयात्रा के प्रति रुझान तीव्रता से बढ़ता है। इसी प्रकार पर्यटन के प्रति कम उम्र में रुझान सर्वाधिक है और अधिक उम्र में कम। अत: कहा जा सकता है कि आयु का पर्यटक व तीर्थयात्री के निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान होता है।

यात्रियों का वर्गीकरण (%)

शिक्षा		व्यवसाय	
साक्षर	: 43·9	नौकरी	: 36·0
निरक्षर	: 56·1	व्यापार	: 16·9
		कृषि	: 37·0
आय			
उच्च	: 11·5	विद्यार्थी	: 6·8
मध्यम	: 46·1	साधू	: 1·5
निम्न	: 42 4	ज्ञात नहीं	: 1·8

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सड़क सभ्यता और सरिताओं के सिरे

गिरिराज शाह

हिमालय के 1500 मील लम्बे विस्तार के बीचो-बीच, लिपुलेख दर्रे (16,750) से थागला दर्रे (15,000) तक, रत्न मणित मुकुट के समान उत्तराखण्ड शोभायमान है। प्राचीन समय में इसे किन्नरखण्ड के नाम से जाना जाता था, जिसके पूर्व में लोहल्या नदी व प्राज्योतिष जनपद थे, दक्षिण में उत्तर कौशन और कुल्तर प्रदेश थे, पश्चिम में कम्बोज देश तथा उत्तर में अलका राज्य था। यही किन्नरखण्ड आजकल शारदा, काली तथा यमुना नदियों के मध्य स्थित भूखण्ड है और उत्तराखण्ड के नाम से जाना जाता है। इसके उत्तर में तिब्बत की ओर नरी खोरसम और गाडगरी खोरसम तथा दक्षिण की ओर तराई-माबर है। पुराणों के अनुसार इस क्षेत्र में यज्ञ, किन्नर व गुह्य निवास करते थे।

उत्तराखण्ड का प्रथम सर्वेक्षण सर्वेयर-जनरल राबर्ट कौलबुक की देखरेख में डब्ल्यू. एस. वैव द्वारा, 1807 में हरिद्वार से गंगोत्री तक की यात्रा करके किया गया। सन् 1812 में दूसरा साहसिक प्रयत्न मूरक्राफ्ट ने किया" जो रामनगर के रास्ते अलखनन्दा के किनारे-किनारे कर्ण प्रयाग पहुंचा और वहां से जोशीमठ व वम्या होते हुए, 16,628 फुट ऊंचे नीति दर्रे को पारकर, मानसरोवर व राक्सताल तक पहुंचा। इसके अतिरिक्त एक अत्यन्त प्रशंसनीय व साहसिक प्रयास कुमाऊं के डिप्टी कमिश्नर एटकिन्सन तथा चार्ल्स शेरिंग ने किया और क्रमशः हिमालयन डिस्ट्रिक्ट तथा वेस्टर्न तिब्बत एण्ड ब्रिटिश बार्डर लैण्ड नामक पुस्तकें लिखीं। सर्वेक्षण की दुनिया में मिलम निवासी दो भाइयों-नैनसिंह तथा किशनसिंह, जो 'ए' कहे जाते थे, ने भी अपनी महत्वपूर्ण खोजों से तहलका मचाया। डॉ० लांगस्टाफ का नाम भी इस दिशा में उल्लेखनीय है।

भारतीय सभ्यता व संस्कृति की आधार-शिला गंगा है। हिमालय से दो प्रमुख नदियाँ अलकनन्दा व भागीरथी निकलती हैं। दोनों देवप्रयाग में मिलकर और ऋषिकेश के पास मैदानों में उतरकर गंगा कहलाती हैं। अतः मेरी यात्रा संस्कृति की जननी के स्रोत तक थी और इस प्रकार मुझे इसके किनारे-किनारे बसी सभ्यता व सड़कों का अध्ययन व अवलोकन करने का अवसर प्राप्त हुआ।

परम गोपनीय एवं परम तत्व हिमालय प्रदेश में सम्पूर्ण तीर्थों से व्याप्त और अनेक देवताओं से सेवित ऐसा अत्यन्त पुण्यदायक क्षेत्र है, जहां पवित्र गंगा भागीरथी उत्तर की तरफ बहती है। वह सौम्यवाराणसी अर्थात् उत्तरकाशी नामपुण्य क्षेत्र वारणावत पर्वत के समीप है। जिस उत्तरकाशी में असी और वरुण यह दो पवित्र नदियां बहती हैं वहां ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवता नित्य विराजमान रहते हैं। पुराणों में वर्णित ऐसे महत्वशाली क्षेत्र का दर्शन करने का मौका मुझे सन् 1967 से लगातार मिला है। उत्तरकाशी में अनेक प्राचीन दर्शनीय स्थल देखने का सुयोग प्राप्त हुआ। साथ ही पर्वतारोहण सम्बन्धी ज्ञान भी बढ़ा। यहां सबसे प्राचीन शिव मन्दिर है और उसी के निकट अष्टधातु की शक्ति विराजमान है। उत्तरकाशी से कुछ आगे लाक्षगृह है, जहां पांडवों को जलाया गया था। यहाँ से हम लोग बस द्वारा हर्सिल (8400) गये, जहां विल्सन द्वारा 1864 में निर्मित डाकबंगला है। रात्रि विश्राम वहीं किया। यहां से बंदरपुंछ का सुन्दर दृश्य दिखाई देता है। निकट ही सेब के बगीचे भी हैं। अगले दिन पैदल गंगोत्री (16 मील) गए। हर्सिल से 2 मील आगे घराली और नदी के

नोट : स्थानों के अभी ऊंचाई फुट में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पास मुखवा गांव है। मार्ग देवदार, कैल, ब्लूपाईन व स्प्रूस के घने पेड़ों से भरा है। जांगला से भैरोंघाटी तक विकट चढ़ाई है। भव्य भैरोंघाटी (9500) तक विराट चट्टानें हैं जिनमें गंगा लुप्तप्राय: हो जाती है और बड़े वेग से जाह्नवी या भागीरथी से मिलती है। इसी के किनारे जाह्नयु ऋषि ने तपस्या की थी। कहा जाता है कि जब राजा भगीरथ गंगा को ला रहे थे तो उसने ने इठलाते हुए अपने वेग से ऋषि की पूजा-सामग्री बहा दी। ऋषि को क्रोध आ गया और वो गंगाजी को पी गये। राजा बड़े संकट में पड़े। उन्होंने ऋषि से अपनी व्यथा बखानी। ऋषि ने अपनी जंघा चीरकर भागीरथी को बाहर निकाला और तभी से भागीरथी का दूसरा नाम जाह्नवी पड़ा। उक्त पौराणिक गाथा की भौगोलिक रूपरेखा आज भी वहां विद्यमान है। भैरोंघाटी के निकट ही आसमान पर लटकता हुआ पुल है जिसे देखते हुए सिर से टोपी और देह से कलेजा छूटता है।

भैरोंघाटी से गंगोत्री (10300) तक का मार्ग सुगम है। गंगोत्री की तो छटा ही निराली है। श्रीकंठ दूर से ही यात्रियों का आह्वान करता है। प्रथम सौभाग्य गौरीकुण्ड देखकर होता है, जहां सम्पूर्ण जल एक शंख-रूपी शिला से उत्तरोन्मुख हो जाता है। आगे सप्तधारा है जहां पर भागीरथी एक विशाल झरने में बदलकर भीषण गर्जन करती हुई, सप्त धाराओं के रूप में नीचे गिरती है। इसके किनारे बहुत-से आश्रम व विश्रामस्थल बने हैं। वन विश्राम भवन में कुछ देर आराम कर, सायं-काल, दारगंगा पर लकड़ी का पुल पार कर साधु-सन्यासियों से मिलने गए, जिनमें स्वामी कृष्णाश्रम, स्वामी रामानन्द, स्वामी शारदानन्द, स्वामी सुन्दरा नन्द तथा सन्यासिनी कृष्णा भारती प्रमुख हैं। स्वामी कृष्णाश्रम के दर्शन से कृत्य-कृत्य हो गए। वो पिछले 60 वर्षों से मौन धारण किये हुए हैं, पर उन्होंने सांकेतिक भाषा में गंगोत्री की कथा व महत्व पर प्रकाश डाला। गंगोत्री मन्दिर का निर्माण नेपाली सेनापति अमरसिंह थापा ने 19वीं शताब्दी में कराया और तत्पश्चात् महा-राजा जयपुर ने इसका नव-निर्माण कराया। मन्दिर के ठीक नीचे भगीरथ शिला है, जिस पर राजा भगीरथ ने तपस्या की थी।

दूसरे दिन प्रात: स्नान-दर्शन कर, गोमुख हेतु प्रस्थान किया। प्रथम चीरवास (11700) तक गए, जहां पर पर्वतारोहण सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त किया। सबसे रोमांचक था रस्सी द्वारा नीचे उतरना, यानी रैपलिंग। यहां से भगीरथ पर्वतों की युगल जोड़ी अत्यन्त मनोरम लग रही थी—मानो राजा भगीरथ स्वयं आने वाले साहसी यात्रियों का स्वागत कर रहे हों। अगले दिन भोजवासा होते हुए हम लोग गोमुख (13000) पहुंचे। अब हम लोग सड़क-सभ्यता बहुत पीछे छोड़, सरिता-स्रोत 'गौमुख' तक पहुंच गए थे। विशाल हिमखण्डों के नीचे से भागीरथी निकल रही थी। पानी अत्यन्त निर्मल, परन्तु धारदार ठण्डा था। कहीं-कहीं विशाल हिमखण्ड पानी में तैर रहे थे। हिम्मत बांध हमने स्नान किया। एक क्षण तो लगा कि शरीर का अस्तित्व ही नहीं रहा। कुछ समय पश्चात् हम लोग तपोवन (15000) गए। मार्ग में पहले तो कठिन चढ़ाई और फिर 'मोरेन वाक' (ग्लेशियर के किनारे पत्थरों के ढेर पर चलना) करना पड़ा। वहां अलौकिक दृश्य देखने को मिले। तपोवन में रात्रि विश्राम कर दूसरे दिन प्रायः शिवलिंग शिखर की ओर उन्मुख हुए। 10 घन्टे तक लगातार बर्फ में चलने के पश्चात्, हम लोग सायंकाल तक शिव-लिंग की छोटी चोटी (19500) पर चढ़ पाए। आधे से अधिक साथी पीछे छूट गये थे। जहां हम खड़े थे, वह मुश्किल से 15 फुट चौड़ी जगह थी। दूर-दूर तक हिमनद व हिमश्रृंखलाओं का साम्राज्य दिखलाई दे रहा था। एक अतुल्य व अवर्णनीय दृश्य था।

□□

मां भागीरथी का पुण्य आह्वान मुझे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन् 1968 में पुनः उत्तरकाशी खींच लाया। इस बार गोमुख से हम लोग गंगोत्री हिमनद के बायें किनारे से होते हुए नन्दनवन (14230) पहुँचे। रात्रि में देखा कि भगीरथ पर्वत के पीछे से चन्द्रमा निकल रहा है और उसका प्रकाश शिवलिंग पर पड़ रहा है। क्या दृश्य था ?

सुन्दरता कहं सुन्दर करई।
दीप शिखा जनु छवि गृह बरई ॥

अगले दिन हम लोग वहां से वासुकीताल (16000) पहुँचे। इस मार्ग से स्वामी ब्रह्म-विद्यानन्द तथा अनेक श्रद्धालु भक्तगण कालिन्दी-खाल (18000) पारकर अरव घाटती होते हुए बद्रिकाश्रम गए हैं। वासुकीताल में रात्रि विश्राम किया। यहां प्रथम बार हिंवाल पक्षी देखा। अगले दिन 18000 फुट की ऊंचाई तक गए और वहां पर आधार कैम्प लगाया। दूसरे दिन 20000 फुट तक जाकर वापस आ गए। कठिन मार्ग में गीता के निम्न श्लोक ने बार-बार प्रेरणा दी :

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गंजित्वा
जा भोक्ष्यसे महीम्।
जस्मादुत्तिष्ट कौन्तेय
दृढ़ाय कृतनिश्चयः ॥

(श्रीमदभगवगीता)

अन्ततोगत्वा 16 मई के दिन सायं 3 बजे हम 8 पर्वतारोही साथी (मेजर सूरतसिंह, डॉ० स्वप्रराय चौधरी, है कां० एच० एम० विष्ट, नायक हृदयराम, कां० बागमल, इन्स-पेक्टर जमीद, इ० शांग बो तथा मैं) 21364 फुट ऊंचे भगीरथ-2 शिखर पर पहुँच गये। हमारे उल्लास का पारावार नहीं था। चारों ओर श्रीकुंठ, सतोबंध, माणा पर्वत, सुदर्शन पर्वत, भगीरथ-1, शिवलांग, केदारनाथ तथा सैकड़ों अन्य छोटे-बड़े हिमशिखर नजर आ रहे थे। और दोनों ओर था हजारों फुट का ढलान, जिसे देखते ही हृदय कांपने लगता है। चतुरगी ग्लेशियर नीचे 7000 फुट की गहराई पर था। उस समय के भावों का वर्णन करना उतना ही दुष्कर है, जितना आकाश को सीमाओं में बांधना। मन वहीं रम गया था। अधिक रुकना सम्भव नहीं था, अतः शीघ्र ही नीचे उतरना प्रारम्भ कर दिया और उसी दिन वासुकीताल आ गये। अगले दिन गोमुख और वहाँ से गंगोत्री। गंगोत्री में हम लोगों ने अगले दिन केदारगंगा का स्रोत देखने का निश्चय किया। प्रातः ही प्रस्थान किया। आगे मार्ग अत्यन्त दुष्कर था। एक स्थान पर तो गंभीर दुर्घटना होते-होते बच गई। करीब 9 मील आगे जाकर देखा कि सामने केदारगंगा कृशतनया होकर गंगोत्री पर्वतमालाओं के नीचे, हिमनदी से बहकर निकल रही थी। जहाँ हम खड़े थे, वहाँ चारों ओर मौज व पद्म के घने जंगल थे। कहीं-कहीं पर विशाल ग्लेशियर तथा वर्फ के ढेर थे। सायंकाल गंगोत्री वापस आ गए। रात्रि को तपस्वियों व पण्डों से मुलाकात की जिन्होंने एक अलौकिक कार्य के रूप में आरोहण का स्वागत किया और हमारा उत्साह बढ़ाया। दूसरे दिन प्रातः ही स्नान व दर्शन कर वापस आ गये। वर्ष 1972 तथा 73 में क्षेत्र समादेशक तथा प्रभारी पुलिस उपाधीक्षक पद की नियुक्ति मिलने के पश्चात् मुझे पुनः गंगोत्री जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हर बार कई प्रागैतिहासिक पौराणिक जान-कारियाँ मिलीं। सन् 1971–72 में भागीरथी की मुख्य सहायक नदी जान्हवी के स्रोत तक जाने का अवसर भी प्राप्त हुआ।

□□

वर्ष 1968 में मेरी नियुक्ति सीमान्त क्षेत्र के विशेष रक्षा दल में हो गई और सितम्बर 1968 मे मुझे धारचूला जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मुरादाबाद से धारचूला तक मोटर द्वारा यात्रा करीब 300 मील की है। यह मेरी इतनी लम्बी प्रथम बस यात्रा थी। एक रात हल्द्वानी रुकने के पश्चात् अगले दिन कौसानी पहुँचा। कौसानी (6000) अल्मोड़ा शहर से 32 मील दूर है। महात्मा गाँधी ने अपने प्रवास के दौरान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसकी तुलना स्विटजरलैण्ड से की थी। चौखम्बा से लेकर नन्दाघुण्टी तक की वृस्तृत हिमालयी पर्वतश्रृंखलाओं के यहाँ से दर्शन होते हैं। दूसरी ओर बैजनाथ घाटी के हरे-भरे वृस्तृत मैदानों का दृश्य है। चीड़ों के पेड़ों से आती हवा सारे वातावरण को संगीतमय बना देती हैं। यहीं जन्मे थे कविवर सुमित्रानन्दन पंत।

विजन पहाड़ी प्राँत,
हिमालय का था अंचल,
स्नेह क्रीड शैशव का,
गिरिवरियों का प्रिय स्थल,
और बाल्य चेना मेरी तुममें
जड़ीभूत आनन्द तरंगित

कौसानी से बैजनाथ की दूरी 18 मील है। मार्ग के दोनों ओर चीड़ के वन है। मनोहरी दृश्यों के मध्य में स्थित है वैद्यनाथ का सुप्रसिद्ध मन्दिर, जो गोमती तथा गरुड़ी सरिताओं के संगम पर स्थित है। पुराणों के अनुसार भगवान शंकर ने कामदेव के दमन के पश्चात् यहाँ पर तप किया था। यद्यपि मन्दिर भग्नावस्था में है, परन्तु उनके अन्दर व बाहर पाई जाने वाली मूर्तियाँ अपने कला वाङ्मय के कारण जगत प्रसिद्ध है—विशेषकर भगवान सत्यनरायण की मूर्ति। बैजनाथ से मील भर आगे गोमती के बाईं ओर बसे डाल्लाडाट ग्राम में भी कुछ प्राचीन मन्दिरों के अवशेष हैं।

बैंजनाथ से बागेश्वर, चौकड़ी, बैणीनाग, कांडा, थल, तेजन तथा डीडीहाट होते हुए सायं-काल अस्कोट पहुँचे। मार्ग की दृश्यावली इतनी सुन्दर थी कि प्रत्येक स्थान पर कुछ दिन रहने की इच्छा होती थी—विशेषकर चौकड़ी व बैणीनाग तो अत्यन्त रमणीक स्थल है। अस्कोट प्राचीन राजाओं की राजधानी थी जहाँ आज भी उनके परकोट व गढी विद्यमान है। यहाँ से नेपाल स्थित पहाड़ियाँ व उनके मध्य माउन्ट एप्पी का दृश्य अत्यन्त मनमोहक लगता है। अस्कोट से एक पैदल मार्ग मुन्स्यारी को गया है। धारचूला यहाँ से 30 मील है। धारचूला यूँ तो एक छोटा सा कस्बा है, परन्तु उसका सामरिक व राजनैतिक महत्व बहुत बढ़ गया है। यहाँ से तिब्बत को जोड़ने वाला विलूलेख दर्रा (16780) कुल 50 मीटर दूर है। दूसरी ओर नेपाल है यहाँ भारत-नेपाल के बीच आपसी शादी-ब्याह इत्यादि से सम्बन्ध इतने घने हैं कि यह जानना मुश्किल है कि कौन इस पार का है और कौन उस पार का। शाम को दहकती आग के चारों ओर नृत्य करते हुये नर्तकों के सामूहिक गान के यह शब्द सुनाई पड़ते हैं।

दाई कांको
मैं काली पार को
सुवा कांको
सिलगुड़ी नेपाल को

धारचूला से 10 मील आगे तवाघाट में मोटर छोड़ दी और कर्तव्य की कसौटी पर धोलो गंगा के किनारे-किनारे दरमा घाटी की ओर उन्मुख हुआ। मार्ग में विकट चढ़ाई थी। दर (8000) नाम स्थान तक पहुँचते-पहुँचते शाम हो गई। यहाँ पर गरम पानी के सोते हैं। अगले दिन नागलिंग (9500) हेतु प्रस्थान किया। मार्ग में रिंगाल, वांज अखरोट तथा देवदार के सघन वन है। खड़ी चढ़ाई और तीव्र उतार के कारण बहुत थकान लगती है। वहाँ पर एक विशाल चट्टान पर सर्प की आकृति बनी है जिसे देखकर ही शायद उसे नागलिंग नाम मिला। नागलिंग से गौ तक के मार्ग में देवदार व ब्लूपाइन के सघन बन हैं तथा मुनाल, थार और च्याखूं आदि पशु-पक्षी पाये जाते हैं। मार्ग में वालिंग व दुखदू नामक दो गाँव पड़ते हैं। दुखदू का अर्थ है कि दुःख देने वाला। यथा पंचचूली पर्वतों के प्रांगण में होने के कारण यहाँ भीषण हिमपात तथा ग्लेशियरों के बहने का भय सदा बना रहता है। दुखदू के सामने ही दो अन्य गांव है जहाँ से पंचाचूली का दृश्य अत्यन्त मनमोहक दिखाई देता है। धौली नदी के बायें किनारे आगे सित्पू डाकर व गलम गांव हैं। गौ (12000) आगे है। हमारे अन्तिम सीमावर्ती गांवों की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बड़ा आदित्य, मढ़, पिथौरागढ़

अपनी मान्यतायें और रीति-रिवाज हैं। इनमें बहुपत्नी प्रथा भी है। विधवा की शादी अमूमन मृतक के बड़े या छोटे भाई से हो जाती है। संभवत: इनके ऊपर तिब्बती प्रभाव अधिक है। तिब्बतियों की भाँति गांव के देवता के पास पत्थर, कांटे व झाड़ियाँ पायी जाती हैं। गौ से दाबा (15000) 18 मील दूर है। वेदार्ग तक कठिन चढ़ाई है। वेदार्ग में पुरानी हाट के चिन्ह आज भी स्पष्टत: दृष्टिगोचर होते हैं। मार्ग में जंगली बरड़ देखी, जो 14000 फुट से ऊपर ही पाई जाती हैं और चट्टानों पर आसानी से कूदती-फाँदती है। दाबा पहुँच कर अनुभूति हुई कि नीरवता के मध्य लक्ष्मण-रेखा पर खड़े हैं। निकट ही लुवे दर्रा (18000) तथा नुवे दर्रा (17740) है— जिनका अर्थ है पुराना व नया। धौली नदी के पास एक काफी ऊँचा पर्वत शिखर है, दूसरे दिन प्रात: ही उस पर चढ़ना शुरु किया और एक बजे तक 19000 फुट तक पहुँच गए। आगे बढ़ना नहीं हुआ। यहाँ से दूर-दूर तक का दृश्य दिखाई दे रहा था। सामने पंचाचूली पर्वत था। दूर बर्फ के तालाब थे। शाम को कैम्प में वापस आ गये। अगले दिन गौ, नार्गलिंग, दर होते हुये धारचूला वापस।

धारचूला कुछ दिन रहने के पश्चात् मैंने मिलम घाटी की ओर प्रस्थान किया। उस दिन कार्तिक पूर्णिमा थी। जौलाजीवी में कार्तिक मेला लगा हुआ था। जौलाजीवी धारचूला से 18 मील दूर गोरी व काली नदियों के संगम पर है। मेले में दार्मा, नेपाल, ब्यांत-चौदांस, जोहार, दानपुर, बागेश्वर, अलमोड़ा, बरेली, कानपुर तथा पंजाब तक के व्यापारी आकर घी, शहद, ऊन, शिलाजीत, पश्मीना, दन गलीचे, जड़ी-बूटियाँ, कस्तूरी, मिट्टी तेल, कपड़ा व दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं का क्रयविक्रय तथा आदान-प्रदान करते हैं। इस प्रकार, वहाँ पर विभिन्न जातियों व सभ्यताओं का संगम होता है। इस मेले में प्राचीन समय में तिब्बत एक बहुत बड़ा भागीदार था परन्तु आज·········? स्त्रियाँ सुन्दर रंगीन कपड़ों में सजीधजी, आभूषणों से अलंकृत होकर आती हैं। सारा वातावरण उनकी पगध्वनि से गुंजायमान रहता है। बच्चों के उल्लास की सीमा नहीं रहती। राज्य-सरकार इस अवसर पर विशेष प्रदर्शनी का भी आयोजन करती हैं ताकि नवीनतम प्रगति से जनता का परिचय हो सके।

□□

मिलम गाँव (12000) जौहार घाटी का अन्तिम गाँव है और सबसे बड़ा भी। यहाँ कोई 500 मकान हैं और उनके मध्य में एक छोटा-किलेनुमा भवन भी। परन्तु आज सारा गाँव उजाड़ है क्योंकि तिब्बत से व्यापार खत्म हो जाने के कारण अब लोग इन गाँवों में नहीं जाते हैं। मिलम गाँव से 2 मील आगे जाते ही विश्व

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रसिद्ध मिलम ग्लेशियर प्रारम्भ हो जाता है। वर्फ का असीम साम्राज्य ! ग्लेशियर के मध्य में कहीं-कहीं वर्फ के जमे हुए सुन्दर तालाब हैं। इनमें वशिष्ट तालाव सवसे प्रसिद्ध है। ग्लेशियर के मध्य में हरदाल शिखर है। ग्लेशियर में कहीं-कहीं पर वर्फ के जमे हुए तालाव हैं जो सुन्दर लगते हैं। ग्लेशियर में कहीं-कहीं पर भयंकर दरारें भी हैं। यहीं से निकलती हैं जीवनदायिनी सरितायें, जो हमारे हरे-भरे खेतों को सींचती हैं। गोरी नदी का यही उद्गम-स्थल है। मिलम से एक मार्ग दुंग होते हुए उटाधूरा के रास्ते तिब्बत चला जाता है। उटाधूरा से ही एक मार्ग टोलीढूंगा, सचममाला होते हुए सौमना-मलारी या बाराहोती निकल जाता है। ये सव प्राचीन व्यापारिक मार्ग हैं। गाँव के पुराने वाशिन्दों ने मुझे वतलाया कि व्यापारियों को ढोल-नगाड़े तथा ऊंचे झण्डों (निशान) के साथ विदाई दी जाती थी।

आजक दिन हूं घर···आज
भोल कतीन्हें जानू परदेश
आजक दिन हूं आज
तुम भली है रया
यो गो, परोस
बन, नाना, ढुला सब झान
आज यह सब एक कहानी बन गयी है !

आठ-दस दिन मिलम में रहने के वाद वापस आ गया, वहुत-सी यादों को दिल में संजोये हुये। मार्ग में 2 दिन मुन्स्यारी रहा और इस बार मुन्स्यारी से नीचे सतकोट, छ्योंडी· बगड़, गैंरपाढ़, ब्रम्ह, गर्जिया होते हुए जौल-जीवी पहुँच गया। यह 65 मील लम्बा पैदल मार्ग अत्यन्त मनोहारी है। चारों ओर हरियाली का साम्राज्य है। लोग खुशहाल हैं। उन में से बहुतों तक अभी नये जमाने की लहर नहीं पहुँची है।

□□

वर्ष 1969 तथा 1972 में मुझे पिथौरा-

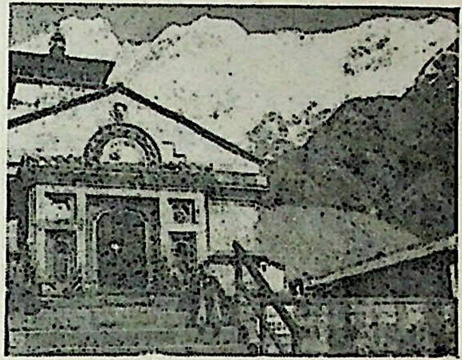

केदार नाथ मन्दिर

गढ़ जाने का अवसर मिला। यह स्थान अल्मोड़ा से 66 मील, धारचूला से 60 मील तथा टनकपुर से 65 मील है। सीमान्त क्षेत्र में इसका राजनैतिक व सामरिक महत्व बहुत अधिक है। इसके अनुरूप ही है, यहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य। सारा क्षेत्र एक विस्तृत घाटी में मीलों तक फैला हुआ है। बीच-बीच में छोटी-छोटी पहाड़ियाँ हैं, जो अत्यन्त सुन्दर लगती हैं। सामने पंचचूली पर्वत के शिखर ऐसे लगते हैं, मानो घाटी की सम्पूर्ण दृश्यावली को निहार रहे हों। टनकपुर-पिथौरागढ़ मार्ग में चम्पावत नामक स्थान भी है जो प्राचीन समय में चन्द राजाओं की राजधानी थी। यहाँ पर अनेक प्राचीन मन्दिरों के भग्नावशेष पाये गये हैं। मन्दिर के निकट कुछ दानपात्र भी पाये गए हैं जिनसे इन मन्दिरों का काल निर्णय 7वीं या 8वीं शताब्दी प्रतीत होता है। इनका कलाशिल्प अत्यन्त सुन्दर है। इस जिले के गंगोलीहाट नामक स्थान में भी कई मन्दिर हैं। इस प्रकार पिथौरागढ़ एक अनूठी सभ्यता व पूर्व प्राकृतिक छटा को अपने गोद में छुपाये हुए है।

□□

वर्ष 1969 के अगस्त माह में मुझे जोशीमठ क्षेत्र में नियुक्ति मिली। अतः प्रथम तो भगवान श्री बद्रीनाथ के परमधाम बद्रीकाश्रम के दर्शन करने की ठानी और तत्पश्चात् प्रारम्भ हुआ सड़क सभ्यता और सरिता स्रोत तक जाने का एक और सिलसिला।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जोशीमठ से बद्रीनाथ धाम मोटर द्वारा 30 मील है। मार्ग में विष्णुप्रयाग पड़ता है जहाँ अलकनन्दा व गिरथी गंगा का संगम पड़ता है। आगे गोविन्दघाट से एक मार्ग फूलों की घाटी की ओर जाता है। मैंने निश्चय किया कि बद्रीनाथ धाम से वापस आकर फूलों की घाटी जरूर जाऊँगा। पान्डुकेश्वर में योगबद्री व वासुदेव के प्राचीन मन्दिर हैं। हनुमान चट्टी से मोटर विकट मोड़ों को पार करती बढ़ती है। आगे कंचनगंगा वाहनों व यात्रियों को स्वच्छ करती है। देवदर्शनी से भगवान की सुरम्य नगरी के दर्शन होते हैं। सारा दृश्य अलौकिक लगता है। चित्त में एक असीम शान्ति छा जाती है। आगे चलकर हिमाच्छादित नीलकण्ठ के दर्शन होते हैं जहाँ से निकलकर पृथ्वी गंगा निकट ही अलकनन्दा के चरण छूती है। बद्रीनाथ मन्दिर की तो छटा ही निराली है। तप्त कुंड में स्नान करते व आते-जाते यात्रीगण जय बद्री विशाल की ध्वनि से वातावरण से भक्ति व श्रृद्धा प्लावित करते हैं। कुंड के निकट ही पंच शिलायें हैं जिनमें नारदीय शिला व गुरुडी शिला अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। ब्रह्म कपाली में पितरों का श्राद्ध व पिन्डदान दिया जाता है। नित्य हजारों की भीड़ लगी रहती है। प्रातः और सांयकाल क्रमशः श्रृंगार व निर्वाण दर्शन के समय श्रद्धालु, भक्तों का उत्साह देखने लायक होता है। मन्दिर के प्रांगण में वीणा महाराज का सितारवादन व भजन देवी-संगीत सा लगता है। ऐसी है भगवान की नगरी, जिसके विषय में पुराणों में लिखा है :

यदत्र क्रियते कर्म कोटि-कोटि गुण भवेत्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन न पापं स चरेत्॥

□□

फूलों की घाटी का नाम ही एक विशिष्ट आकर्षण है। मोटर द्वारा गोविन्द घाट पहुंचे। वहाँ से घाघरिया (9000) तक 9 मील की विकट चढ़ाई है परन्तु इस घाटी (भ्यूंडार) का सौन्दय इतना अलौकिक है कि दृश्यावलोकन में ही यात्री थकान भूल जाता है। भ्यूंडार गाँव से हाथी पर्वत का भव्य दृश्य दिखाई देता है। प्राकृतिक सौन्दर्य के अनुसार ही यहाँ के निवासियों का सौन्दर्य भी है। देवदार, अखरोट व पांगर के सघन वृक्षों से सम्पूर्ण मार्ग मे शान्ति दायक छाया मिलती है। घाघरिया में वन विभाग का विश्राम गृह और सिक्खों का गुरुद्वारा भी है। यहाँ से फूलों की घाटी करीब 3 मील दूर है। इसका पता 1932 में फ्रैंकस्माइथ ने लगाया था, जब वह कामेत पर्वत पर सफलता प्राप्त कर लौट रहा था। प्रकृति का विराट और अत्युत्तम उद्यान यहाँ पर दृष्टिगोचर होता है। नानाविध बहुरंगी पुष्प व जड़ी-बूटियाँ मीलों तक फैली हैं, जिन्हें देख नशा सा छा जाता है।

अब भी वही बसन्त विचरता,
पुष्प शरों से भर विगंतति।
गंधोपदाम धरा ही,
पाषाण शिलायें पुलक पल्लवित॥

—सुमित्रानन्दन पंत

दूसरे दिन प्रातः ही घाघरिया से लोकपाल हेतु प्रस्थान किया, जो साढ़े लगभग तीन मील है। दूर मार्ग में विकट चढ़ाई है। हर पग के साथ करीब 3/4 इंच ऊंची जमीन पार करनी पड़ती है। मार्ग के दोनों ओर सघन लतायें, झाड़ियाँ, फर्न व नानाधिक पुष्प हैं। लोकपाल के चारों तरफ सफेद कमल (ब्रह्मकमल) बिखरा पड़ा है जिसके सन्दर्भ में पुराणों में अनेकानेक प्रशस्तियाँ गायी गई हैं। लोकपाल या हेमकुण्ड (15500) विशाल पर्वत शिखरों के मध्य एक सुन्दर विशाल झील है। झील के किनारे लक्ष्मण का प्राचीन मन्दिर है, जिसे स्थानीय लोग लोकपाल के रूप में पूजते हैं। रक्षाबन्धन पर यहाँ मेला लगता है। सिक्खों के अनुसार गुरु गोविन्दसिंह ने यहाँ तपस्या की थी। ऐसा लगता है लक्ष्मण तथा गुरु गोविन्दसिंह की तपस्या स्थल एक ही हैं। यहाँ 25 लाख रुपये की लागत से एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विशाल गुरुद्वारा बन रहा है। श्रद्धालु यात्री हिम्मत कर झील में स्नान करने हैं और तत्पश्चात् लोकपाल व गुरुद्वारे का दर्शन करते हैं।

□□

गंगा की मुख्य पोषक नदियाँ भागीरथी व अलकनन्दा हैं। भागीरथी के स्रोत तक पहुँचने के बाद मेरे लिये आवश्यक था कि अलकनन्दा स्रोत तक भी पहुँचा जाए। अतः अक्टूबर 1969 में मैं पुनः जोशीमठ चल दिया। मुरादाबाद से कोटद्वार (70 मील) तथा वहाँ से पौड़ी (82 मील) तक की दूरी प्रथम दिन पार की। पौड़ी (5500) अत्यन्त सुरम्य नगरी है जहाँ बाँज, देवदार व चीड़ के सघन वृक्षों के मध्य, नगर की छटा अनूठी लगती है। यहाँ से चौखम्बा व अन्य हिमशिखरों का मनमोहक दृश्य दिखलायी देता है। बीच में हैं छोटी-छोटी, नीले रंग की पहाड़ियाँ। अगले दिन प्रातः श्रीनगर हेतु प्रस्थान किया। वहाँ अलकनन्दा के प्रथम दर्शन किए। श्रीनगर से ही अलकनन्दा देवप्रयाग की ओर मुड़ जाती है। यहाँ से 40 मील आगे रुद्रप्रयाग है, जहाँ पर मन्दाकिनी नदी अलकनन्दा से मिलती है। इसके किनारे-किनारे एक मार्ग केदारनाथ तक गया है। आगे गोचर व कर्णप्रयाग पड़ते हैं। कर्णप्रयाग में पिण्डार नदी अलकनन्दा से मिलती है। पिण्डार नदी के किनारे-किनारे एक मार्ग ग्वालदम-गरुड़ बैजनाथ होता हुआ अल्मोड़ा व बागेश्वर गया है और दूसरा कर्णप्रयाग से पाडियाखाल (जहाँ भविष्य बद्री है), गनाई चौखुटिया, द्वाराहाट होते हुए रानीखेत गया है। कर्णप्रयाग से एक मार्ग अलकनन्दा के किनारे नन्दप्रयाग होते हुए चमोली-गोपेश्वर गया है। चमोली से आगे बिरही नदी (जो बिरही ताल से निकलती है) अलकनन्दा से मिलती है। पीपलकोटी प्राचीन चट्टी है और बड़ा ही रमणीक स्थल है। यहाँ से जोशीमठ 20 मील दूर है पर मार्ग में विकट उतार-चढ़ाव हैं। यहीं हैं बेचाकूची, हेलंग इत्यादि स्थान, जो 1970 की भयंकर बाढ़ में ध्वस्त हो गये थे। जोशीमठ (6200) का प्राचीन नाम ज्योतिर्मठ है। यहां आदिशंकराचार्य की पीठ है। वह कल्प-वृक्ष आज भी विद्यमान है, जिसके नीचे बैठकर जगद्गुरु शंकराचार्य को ज्ञान प्राप्त हुआ था। आश्चर्य की बात तो यह है कि उसके निकट ही भविष्य केदार प्रकट हो रहे हैं। ज्योतिर्मठ के दर्शनीय स्थलों में वहाँ का भविष्य बद्री मन्दिर भी है, जो यहाँ से 20 मील मोटर मार्ग से जाने के पश्चात् रैनी नामक स्थान से साढ़े तीन मील ऊपर है। यहाँ पर सेब का राजकीय उद्यान भी है। यहाँ से कामेत व दूणागिरि पर्वत दिखलाई देते हैं। दूसरा दर्शनीय स्थल है आवली (9500) जो जोशीमठ से ऊपर है। यहाँ से विभिन्न पर्वतमालाओं का बड़ा सुन्दर दृश्य दिखलायी देता है। सितम्बर में यहाँ अति सुन्दर रंग-बिरंगे फूल भी खिले रहते हैं।

अलकनन्दा की एक पूरक नदी उर्गम, कल्पनाथ से आती है। यहाँ भगवान शंकर का गुफा मन्दिर है। हैलंग तक गाड़ी द्वारा जाने के बाद रस्सी का पुल पैदल पार कर आगे प्रस्थान किया। मार्ग में बांज व देवदार के घने जंगल हैं जिसमें नाना हिंसक पशु रहते हैं। 9 मील आगे उर्गम गाँव है जहाँ आदि काल में उर्वा ऋषि ने तप किया था। यहाँ ध्यान बद्री का प्राचीन मन्दिर भी है जिसमें अति सुन्दर मूर्तियाँ हैं। डेढ़ मील आगे कल्पनाथ का मन्दिर है। यहाँ से एक विकट दुर्गम मार्ग तुंगनाथ केदारनाथ को गया है। इस घाटी में नीरव, शुद्ध व परिष्कृत वायुमंडल है वह अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं है।

□□

बद्रीकाश्रम धाम से 2 मील आगे इस घाटी का अन्तिम ग्राम व मोटर का आखिरी कयाम है। बद्रीकापुरी से माणा तक अलकनन्दा के दोनों ओर अत्यन्त महत्वपूर्ण धार्मिक क्षेत्र, मठ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व मन्दिर हैं। इन सबमें दर्शनीय शालिगराम का मन्दिर है जिसकी मूर्तियां अत्यन्त भव्य हैं। यहाँ पर अथक प्रयत्न से एकत्रित विभिन्न शालिगराम शिलायें हैं, जिनका पौराणिक महत्व वहाँ का पुजारी अनन्य श्रद्धा के साथ वर्णित करता है, उक्त शिलायें नेपाल तथा भारत तिब्बत सीमा में मिलती हैं। मार्ग में बांये ओर नगर पर्वत है और दाहिने तरफ नारायण। नारायण पर्वत के ऊपर कुवेरू नामक ग्लेशियर है।

माणीग्राम सरस्वती व अलकनन्दा के संगम पर बसा हुआ है। यहाँ कोई 200 घर हैं। गाँव के ऊपर गणेश तथा व्यास की गुफायें हैं। कहा जाता है कि जब द्वैपायन व्यास महाराज ने सम्पूर्ण वेद, पुराण व महाभारत को लिपिबद्ध करने की ठानी, तो लिखने के लिये उन्होंने गणेश को चुना। निकट ही एक विशाल, पुस्तकाकार शिला है। तनिक आगे जाकर अन्य एक विशालकाय चट्टान पर नजर पड़ती है जो काई से बने एक घोड़े के आकार का स्मरण होता है, जिसे श्यामकर्ण घोड़ा कहा जाता है। माणा ग्राम को पार करते ही भीम पुल पड़ता है। एक विशाल चट्टान पर एक विशाल पाँव के चिन्ह भी परिलक्षित होते हैं। यहाँ पर माँ मूर्ती तथा द्रौपदी के मन्दिर हैं। यहाँ पर सरस्वती का वेग अत्यन्त तीव्र है। कहते हैं कि सरस्वती यहाँ पर अन्तर्धान हो जाती हैं और फिर प्रयागराज में प्रकट होती हैं। यहाँ से अलकनन्दा के किनारे-किनारे एक मार्ग बसुधरा (12000) तथा चक्रतीर्थ को जाता है। वसुधारा जलप्रपात दूर से ही दिखलायी देता है। लेकिन ज्यों ही हम जलप्रपात के निकट पहुँचते हैं, इसकी विलणण इन्द्रधनुषी छटा मन को हर लेती है। इसकी विशाल जलधारा 436 फुट की ऊंचाई से गिरती है। यहाँ से आगे ग्लेशियर है जहाँ से एक मार्ग नीलकण्ठ की ओर चला जाता है और दूसरा चक्रतीर्थ तथा संतोपंथ शिखर की ओर। अलकनन्दा का स्रोत संतोपंथ व नीलकण्ठ से निकलने वाला विशाल ग्लेशियर ही है।

अलकनन्दा की प्रमुख पूरक नदी सरस्वती के स्रोत तक जाने का सुअवसर मुझे 1972 तथा 1978 में लगा। माणा ग्राम पार करते ही प्रकृति की अद्‌भुत कलाकारी देखी, जो भय व रोमांच से रोंगटे खड़े कर देती है। संपूर्ण नदी भयंकर चट्टानों को भेदकर सैकड़ों फुट नीचे पहाड़ो की तलहटी में भीषण गर्जन-तर्जन के साथ गिरती है। कुछ आगे बढ़ने पर सरस्वती सरला हो जाती है। दोनों ओर सुन्दर लुभावने दृश्य हैं। घासतोली पहुँचते-पहुँचते एक नई आबो-हवा का अहसास होता है। यहाँ पर एक काफी बड़ा मैदान है, जिसमें स्थान-स्थान पर छोटे-छोटे रंग-बिरंगे फूल खिले रहते हैं। यहाँ से एक मार्ग अरवा घाटी से होते हुए गोमुखा तक आया है। घासतोली से चढ़ाई धीरे-धीरे बढ़ती जाती है और रक्तकोना पहुँचने तक सांस में घुटन पैदा होने लगती है। वैसे यह मार्ग आम यात्रियों के लिये है भी नहीं। हाँ, कुछ वर्ष पहले तक यह भारत-तिब्बत व्यापार का प्रमुख मार्ग था। माणा दर्रा (18400) पार कर व्यापारी ज्ञानिया मंडी पहुंचते थे। श्रद्धालु यात्री इस मार्ग से मानसरोवर-कैलाश की परिक्रमा करते थे। इसी दर्रे के निकट तारा ग्लेशियर है, जहाँ से सरस्वती निकलती है। रक्ताकोना के दाहिने करीब 17000 फुट की ऊँचाई पर राक्सताल है। यहाँ से दूर-दूर तक उत्ताल हिम शिखरों के दर्शन होते हैं। यहाँ से माणा दर्रा व तारा ग्लेशियर भी साफ दिखाई देता है। और दिखलाई देता है सभ्यता, सरिता व सड़कों का अन्त !

□□

सीमान्त क्षेत्र में निवास के दौरान मुझे पर्वतीय नदियों के बदलते रूप देखने को मिले। गर्मियों में शुष्क तथा कृश-तनया, कंचन जल से शान्त-कलांत। बरसात में भीषण वेग से गर्जन-तर्जन करती तथा भयंकर बाढ़ से तटीय गांवों-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खेतों को नष्ट करती हुई। जाड़ों में शीतल और शान्त और कहीं-कहीं पर ग्लेशियर या ठंड से बर्फ के रूप में जमी हुई। अलकनन्दा का जो रूप 20 जुलाई 1970 को देखा, वह फिर कभी और न उसकी तमन्ना है। दृष्टिगोचर नहीं हुआ। 19 और 20 जुलाई को जो वर्षा हो रहा थी, उसके परिणाम इतने भयंकर होंगे यह हमें स्वप्न में भी आभास नहीं था। हाँ, 20 जुलाई की रात आंखों-आंखों में टल गई। रात भर पत्थरों के गिरने व पेड़ों के टूटने का भय व्याप्त रहा। प्रातः ही खबर मिली कि बेलाकूची के पास कुछ मोटरें, पुल सहित वह गई हैं। हमारी भी एक गाड़ी मार्ग में थी, अतः उसकी चिन्ता सताने लगी। शीघ्र ही अपने मित्र हरीशचन्द्र नेगी व एक सहायता पार्टी के साथ रवाना हुआ। वाकी-टाकी सैट भी साथ ले लिया ताकि सम्बन्धित अधिकारियों को आँखों-देखा हाल भेजा जा सके।

कैम्प से एक फर्लांग भी आगे नहीं गए होंगे कि विशाल क्षति का आभास होने लगा। मार्ग का अता-पता न था। स्थान-स्थान पर वेग मे झरने गिर रहे थे। चार मील आगे पहुंच कर देखा कि एक फर्लांग तक मलवा ही मलवा भरा हुआ है। सात गांव दब गये थे। 15 आदमी व 9 जानवर जिन्दा ही कब्र बन गये थे। घुटने-घुटने कीचड़ भरा था। किसी प्रकार हैलंग पहुंचे। वहां कर्मनाशा नाला प्रलयंकारी वेग से बह रहा था। रस्सी का पुल बनाकर उसे पार किया। यहां से गुलाबकोटी होते हुए लांगसी पहुंचे। यहां पर पुलिस की शस्त्र चौकी व सैनिकों को मरहम पट्टी चौकी थी। उनके मुँह से अलकनन्दा में जल स्तर के अचानक वढ़ने व गरुड़गंगा मे जल के अप्रत्याशित चढ़ाव के बारे में जानकारी प्राप्त की। लांगसी के विशाल पुल व सड़क का मीलों तक पता नहीं था। यहां से बेलाकूची नहीं पहुचा जा सकता था, अतः गरुड़ गंगा के किनारे-किनारे 28 मील दूर, एक गांव में पहुंचे जहां- भूखे-प्यासे रात बिताई। कुछ यात्री भी वहां तक जान बचाकर आ पहुंचे थे।

दूसरे दिन जंगल ही जगल पीपलकोटी की ओर रवाना हुए। मार्ग में जब बेलाकूची से सैकड़ों फुट ऊपर, चोटी पर पहुँचे तो देखा कि मीलों तक सड़क व पुल का पता नहीं था। बस्ती का नामोनिशान मिट गया था। आगे जाकर मार्ग में अनेक भयभीत व त्रस्त यात्रियों से मुलाकात हुई। उनसे आंखों देशी दुर्घटना सुनी। हृदय कंपा देने वाली कहानी थी। ऐसे कठिन समय में बेलाकूची के ग्रामसेवक ने अभूतपूर्व साहस, सूझबूझ व विलक्षण बुद्धि का परिचय देकर बहुत से यात्रियों की जान बचाई। कई यात्री तो तब भी उसके घर पर थे। उनसे आँखों देखा हाल पूछा, प्राथमिक उपचार किया। वहाँ पर तत्कालीन बद्रीनाथ कमेटी के प्रबन्धक श्री गोविला भी मिले जो सहायता प्रबन्ध में हाथ बँटा रहे थे। पीपलकोटी पहुँचकर घटना की प्रथम सूचना सम्बन्धित अधिकारियों को दी। हमारी मोटर व पार्टी वहीं खड़ी थी जिन्हें देख कर जान में जान आयी। दूसरे दिन वापस आ गये।

उक्त रोमांचक यात्रा के पश्चात् मुझे कितनी बार पीपलकोटी व वापस जोशीमठ आना पड़ा। स्वयं याद नहीं। पर आज उस मार्ग की कठिनाइयाँ व खतरों को सोचते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

□ □

माणा घाटी से वापस आने के पश्चात् मैंने अलकनन्दा की दूसरी पूरक नदी गिरथी गंगा के स्रोत का सर्वेक्षण व निती घाटी में सभ्यता के चिन्हों को देखने का निश्चय किया। वैसे निती घाटी में टिमरसैंण तक और होती घाटी में रिमखिम तक में पहले भी जा चुका था, परन्तु यात्रायें जल्दी में की गई थीं और वह भी जाड़ों में, जब जनजीवन मैं सारे निशान मिट चुके होते हैं। अतः अक्टूबर 1970 में जोशीमठ से मोटर द्वारा मलारी (50 कि० मी०) को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

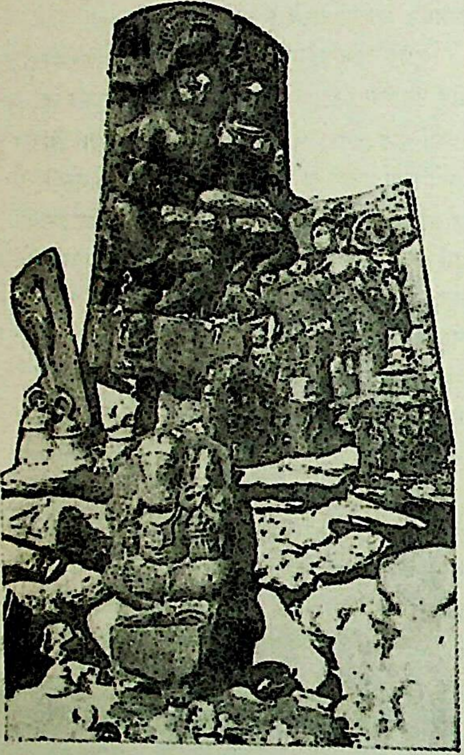

वलुआकोट की मूर्ति सम्पदा

प्रस्थान किया। मार्ग में बडगांव में सेब का बाग है। तनिक आगे गुड़डी बाबा का आश्रम है। बाबा सिद्ध हैं। बडगांव से मोटर नीचे उतरती है। जहाँ तपोवन के तप्त कुंड में स्नान किया जा सकता है। आगे सड़क के किनारे से एक मार्ग भविष्य बद्री को जाता है। रैनी के पास नन्दादेवी के आँचल से उतरकर ऋषि गंगा अलकनन्दा से मिलती है। मार्ग से उतार-चढ़ाव को पार करते हुए गाड़ी सुराही थोटा मापकुण्डा से मलारी पहुँचती है। मलारी ग्राम में मार्च्छा लोग रहते हैं। रात्रि विश्राम मलारी में किया।

दूसरे दिन प्रातः 26 कि० मी० तक मोटर से गया और फिर सोमना तक पैदल। सोमना के निकट ही एक विशाल झील का निर्माण प्रकृति द्वारा 1969 में हो गया, जब शीशा पहाड़ के गिरने से गिरथी नदी का मार्ग अवरुद्ध हो गया। यह झील 70–80 फुट गहरी 150 फुट चौड़ी तथा 2 मील लम्बी है पत्थर तब भी गिर रहे थे। सोमना से दूसरे दिन योर्ग गाढ़ के किनारे-किनारे संचममाला व लपचल पहुँचा। इनके निकट अत्यन्त सुन्दर, छोटी-छोटी पहाड़ियाँ हैं जो हरे व पीले रंग के घास से आच्छादित रहती हैं। यहाँ पर विभिन्न प्रकार के सुन्दर पत्थर मिलते हैं, जिनमें गोल चक्र व अन्य आकार बने होते हैं। एक गोलीनुमा पत्थर मिलता है और जो कहते हैं कि कैंसर में काम आता है। भूवैज्ञानिकों के अनुसार उक्त पत्थर उस प्रागैतिहासिक युग की याद है, जब यहाँ पर समुद्र था। ऐसे कुछ पत्थर मैंने एकत्रित किए। चाँदनी रात थी, अतः मैं रात में ही संचममाला (14000) पहुँच गया। यहाँ से बेल्चा धूरा (18000) कोई साढ़े पाँच मील पड़ता है। अतः निश्चय किया कि रातों-रात वहाँ पहुँच जाएँ ताकि प्रातः ही कैलाश मानसरोवर के दर्शन हो सकें। करीब ढाई बजे रात प्रस्थान किया। घुप अंधेरा और चुपचाप बढ़ते कदम। अचानक निकलने वाले दुश्मन का भय भी। सीमा पर रक्षा टुकड़ियाँ बराबर गश्त करती रहती हैं। दर्रे पर बर्फ थी। यहाँ से एक ओर था आक्रान्ताओं के आक्रोश से त्रस्त तिब्बत और दूसरी ओर स्वतन्त्रता की उत्ताल तरंगों में लहराता भारत। भारत की ओर ऊँचे-नीचे पहाड़ थे और तिब्बत की ओर छोटी-छोटी पहाड़ियाँ। उनके मध्य गगन में सिर उठाये खड़ा था कैलाश। सामने सतलुज भी झिलमिला रही थी। यह दर्रा जो आज शान्त रहता है, कभी यात्रियों, व्यापारियों के पदचापों तथा घोड़ों, खच्चरों व बकरियों के स्वर व घंटियों की ध्वनि से गुंजायमान रहता था। दर्रे पार करते हुए श्रद्धालु यात्री 'ऊमाणीपघ्मेहुम' (खुदे हुए पत्थर) रखते जाते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थे, जिसका ढेर आज भी दिखाई पड़ता है।

दर्रे में अधिक रुकना ठीक नहीं था क्योंकि यह अन्तर्राष्ट्रीय स्थल है। यहाँ पर एक सभ्यता की सरिताओं व सड़कों का अन्त होता है और दूसरी का प्रारम्भ। कैम्प वापस आकर खुले आसमान के नीचे धूप में कुछ देर सो गए। शाम को कुछ और पत्थर एकत्रित किए और दूसरे दिन प्रातः सोमना हेतु प्रस्थान किया।

सोमना से रिमखिम बाराहोती जाने का निश्चय किया। दूरी कोई 10 मील होगी परन्तु चढ़ाई इतनी कि बार-बार रुकने को बाध्य करती है। खैर, इसी बहाने चारों ओर की हरियाली देखने का सुयोग मिल जाता है। बाराहोती मैदान के ऊपर एक पहाड़ी में बहुत-सी कब्रें व स्मृतिस्तम्भ छुपाये हुए हैं। यहाँ पर 1962 में बहुत से मराठा सुरक्षा सैनिक ठंड व पैराशूट से कूदने के कारण काल के गाल में चले गए थे। यहाँ स्मृति स्तम्भों के बीच है हमारे जवानों द्वारा निर्मित एक मन्दिर, जो आने वाले सैनिकों को आशीर्वाद तथा सांत्वना देता है। उक्त पर्वत-शृंखला के छोर पर पहुँचने पर दिखलाई देता है बाराहोती का विस्तृत मैदान। इसका विस्तार कोई 8-10 मील का होगा। इसके बीचों-बीच पार्वती कुंड व एक मन्दिर है। कहते हैं यहाँ पर परियाँ नहाती हैं। मैदान के पार हैं तनजुला दर्रा (17000)। प्राचीन समय में इस मैदान में दोनों देशों का बाजार लगता था; आज चीन ने अन्तर्राष्ट्रीय विवाद का बाजार लगा रखा है।

मलारी वापस आकर अगले दिन ही निती घाटी में जाने का कार्यक्रम बनाया क्योंकि सभ्यता के अन्तिम पगचिन्ह बम्पा तथा निती गाँव यहीं है। मलारी से मार्ग प्रायः समतल है। सड़क के दोनों ओर आलू के खेत हैं। बम्पा में इन्टर-मीडिएट कॉलेज है। यहाँ लोग सभ्य व सुसंस्कृत है। युग के साथ इन्होंने अपने आप को बदल लिया है। बहुत-सी पुरानी सामाजिक मान्यतायें बदल डाली हैं। बम्पा से आगे घमसाली गाँव है। इस गाँव से एक मार्ग काकभुसुण्डी पर्वत की ओर गया है। आगे टिमरसैंण नामक स्थान पड़ता है। आप शाम को यहाँ से पीछे बम्पा गाँव व द्रोणा-गिरी पर्वतमाला का अत्यन्त मनोहारी दृश्य दिखलाई देता है।

टिमरसैंण में भगवान शंकर लिंग एक गुफा के अन्दर स्थापित है। वहाँ लगातार पानी टपकते रहने से बड़ी फिसलन रहती है परन्तु श्रद्धालु भक्तगण दर्शन हेतु जाते हैं। यहाँ रक्षा-बन्धन पर काफी बड़ा मेला लगता है और स्थानीय रस्म रिवाज, वस्त्राभरण व लोकगीत सुनने का अवसर मिलता है। टिमरसैंण से एक मील आगे निती गाँव है। 100 मकानों के इस गाँव के लोग भी सभ्य व सुसंस्कृत हैं। अक्टूबर में यहाँ के परिवार नीचे उतर आते हैं और चमोली के आस-पास रहते हैं। नीचे उतरते परिवारों का दृश्य देखने लायक ही था। नगाड़े व तुरही की ध्वनि के साथ प्रत्येक परिवार को गाँव का ढोलची छोड़ता है। स्त्रियाँ सुन्दर परिधानों में सजी-संवरी, बच्चों के उल्लासित। प्रत्येक परिवार अपने गाय, चंवर, घोड़ा बकरी इत्यादि लेकर उतरता है। अनादिकाल से यह क्रम चला आ रहा है।

टिमरसैंण से एक मार्ग कालाझोबर और चोरहोती-घूरा होते हुए बाराहोती गया है और दूसरा विमलास की ओर। विमलास (14000) टिमरसैंण से कोई साढ़े तीन मील दूर है। कठिन चढ़ाई है। एक पैर आगे रखो तो दूसरा फिस-लता है। परन्तु विमलास पहुँचकर उत्ताल हिम-शृंगों व हरे-भरे मैदानों का जो दृश्य दिखलायी देता है, वह सारी थकान दूर कर देता है।

□ □

हमारा ऋषि उर्ध्वबाहु होकर यह उद्घोष करता आया है कि बैठे हुए का भाग्य बैठा रहता है, लेटे रहने वाले का लेटा रहता है, खड़ा रहने वाले का खड़ा रहता है और चलने वाले का चलते रहता है, इसलिये सदैव चलते रहो, चलते ही रहो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आस्ते भग आसीनस्य उर्ध्वस्तिष्ठति
तिष्ठत: शेते तिष्ठमानस्थ
चराति चरतो मग:
चरंवति, चरैवति ॥

भगवान की कुछ ऐसी असीम कृपा रही कि वर्ष 1971 में उत्तरकाशी क्षेत्र मे ही कार्यभार सम्भालना पड़ा, जिसके फलस्वरूप मुझे फिर से गंगोत्री यात्रा का संयोग स्वामी सुन्दरानन्द जी का साथ तथा स्कन्दपुराण तथा तत्सम्बन्धित साहित्य पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। तीन माह के भीतर मुझे जान्हवी के किनारे-किनारे दो बार नैलंग-छागला तक और तीसरी बार उसके स्रोत तक जाने का अवसर मिला, उत्तरकाशी से लंका (91 कि० मी०) तक मोटर द्वारा जा सकते हैं। यहाँ आजकल एशिया का सबसे ऊँचा पुल बन रहा है। लंका से नैलंग तक 12 मील का पैदल मार्ग है। थोड़ा आगे बढ़ते ही गर्तागडांग का काष्ठ-सेतु (436 फुट) पड़ता है जो सब्बलों व बल्लियों के सहारे अटकाया गया है। इसके सैकड़ों फुट नीचे जान्हवी बहती है। मार्ग में कारछा व धुमकू के सघन देवदार वन पड़ते हैं। विकट चढ़ाई व उतार है। धुमकू से एक मार्ग चोरगाड़ के किनारे-किनारे हिमाचल प्रदेश व तिब्बत गया है। तेलंग कोई 150 घरों का गाँव है। चीरवास पर्वत (21420) व कालीढाँग (20908) के आँचल में फैला यह गाँव अत्यन्त सुन्दर है। स्थानीय लोग इसे नन्दीपर्वत के रूप में जानते हैं। यहाँ पर एक तिब्बती मन्दिर भी है जिसमें पानी के वेग से "ऊँ माणीपचमेहम मंत्र" घूमता रहता है।

नैलंग से जान्हवी के किनारे-किनारे छागला तक मार्ग सरल है। यहाँ पर नीलापानी व जान्हवी का संगम है। मैं नीलापानी के किनारे-किनारे आगे तक गया। मार्ग तो बिल्कुल है ही नहीं। रेतीले कंकर-पत्थरों पर बकरियों की भाँति चलना पड़ता है तो कहीं विशाल शिला-खण्डों पर। पांव फिसला नहीं कि......। नीलापानी (13000) के निकट माना गाड़ आकर मिलती है। नीलापानी के किनारे-किनारे एक मार्ग मुलिंग ला दर्रा (18600) की ओर गया है। इसके आगे एक विस्तृत मैदान भी है जहाँ पर बकखाल हजारों बकरियों के साथ रहते हैं। छागला से दूसरा मार्ग जान्हवी के किनारे-किनारे पुलिनसिन्धु की ओर गया है। जान्हवी का पानी इतना शीतल, निर्मल व स्वच्छ रहता है कि मानो जमीन पर शीशे की चादर बिछा रखी हो। मार्ग के दोनों ओर जूनिपेरस व पद्‌म के जंगल हैं। दोसिन्धु नामक स्थान पर जादुग गाड़ जान्हवी से मिलती है। इस गाड़ के किनारे-किनारे करीब 7 मील आगे जादुग गाँव है, जो आज निर्जन व सुनसान है। पुलिनसिन्धु पहुँचने से पूर्व एक पड़ाव सोनम (14000) में किया। यहाँ पर भी पद्‌म व जूनिपेरस का विशाल वन है। यहाँ से चीरबास शिखर अत्यन्त सुन्दर लगता है। सोनम से आगे एक विशाल मैदान पड़ता है जो कभी ग्लेशियर के गिरने से बना होगा। ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते है, जान्हवी पतली होती जाती है। पुलिनसिन्धु से पूर्व, श्रीपानी नामक स्थान पर दो जलधारायें और आकर मिलती हैं। पुलिनसिन्धु के निकट तो सारा दृश्य ही भिन्न है। ऐसा लगता है मानो पुष्पों से भरे बाग में एक नहर बह रही हो। चारों ओर हरीतिमा छाई रहती है। छोटे-छोटे पुष्प बड़े सुन्दर लगते हैं।

ऊँचा-ऊँचा डाना कपुवा राणमणि लगाली,
हंसि-हसि के भलि कुंज लपटि चलाली।
इचाला निसाला कुर-कुर घुघुति कुराली,
तला-मला मिठा पिरुड़ि न्यूड़ि हंसली।

पुलिनसिन्धु के निकट जान्हवी की दो पूरक नदियाँ थागलादर्रा तथा झेलूखागा से आती हैं। यहाँ से उक्त दर्रे क्रमश: 13 व 9 मील की दूरी पर हैं और उस पार है तिब्बत।

□ □

आज उत्तराखण्ड की ओर देशवासियों का ध्यान अधिकाधिक आकृष्ट हो रहा है। बहुत कुछ लिखा जा रहा है पर हम अपने ऋषि-मुनियों की वाणी को न भूलें। □

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तराखण्ड की लोकगाथाओं का ऐतिहासिक आधार

प्रयाग जोशी

कुमाऊंनी-गढ़वाली बोलियों में उपलब्ध होने वाली लोक गाथाओं की संख्या बहुत अधिक है। वर्ण्य-विषयों के विस्तार की दृष्टि से उनका एक कोना अवदान और धर्म गाथाओं की उस प्राचीन परम्पराओं तक पहुंचता है जिसको सँवार कर पुराणों की रचना हुई है। उनका दूसरा कोना वीरगीतों की उस परम्परा में एकता है, जिसे अंग्रेजी में 'बैलैड' कहते हैं और जिसका हिन्दी समानार्थी शब्द 'वीरगाथा' है।

इसीलिए इस उत्तराखण्ड की समस्त लोक गाथाओं की विवेचना के लिए एक ओर व्यास-कुल की परम्पराओं द्वारा निर्मित धर्म गाथाओं के अध्ययन की जरूरत है तो दूसरी ओर वीर-गाथाओं की उस परम्परा की समझ जरूरी है जिससे भारत की आधुनिक आर्य-भाषाओं के परिनिष्ठित प्रबन्धों की रचना हुई है। हिन्दी साहित्य के इतिहास की पृष्ठभूमि में हम जिस चारण काव्य-परम्परा का अध्ययन करते हैं, वह लोक गाथाओं से ही विकसित हुई है।

लोक में प्रवहमान धर्म गाथाओं के विकास के मूल में आनुष्ठानिक परम्परायें जुड़ी हुई थीं। पुराणकारों ने इन अनुष्ठानों के साथ अपने इतिवृत्तों को जोड़ा। अनुष्ठान, धर्म का प्राक्तन रूप हैं, जिसके साथ गाथाएं जुड़ीं तो मिथक निर्मित हुए। मिथक ने धर्म और साहित्य दोनों क्षेत्रों में व्याप कर भारतीय जन-मानस को कैसे प्रभावित किया, उसके सामाजिक चैतन्य की विवेचना एक अलग वस्तु है। संस्कृत भाषा में जो कृति 'पुराण' है उसकी मूल मौखिक प्रति 'अवदान' है। पुराणों में निबद्ध धर्मगाथाओं की प्रेरणा का स्रोत यहाँ लोक-विश्रुत 'अवदान' साहित्य है। दोनों के वर्ण्य-विषय एक हैं। पुराण ने उसके आयामों को अधिक व्याप्ति दी है, अवदान ने कम।

धर्मगाथाओं की रचना विधि में मानव जीवन, मानवेतर सृष्टि, संस्कृतज्ञों द्वारा अर्जित विशेष ज्ञान एवं लोक के मध्य की खाई के पाटने में महर्षि व्यास और उसकी शिष्य परम्परा के प्रयत्न सार्थक सिद्ध हुए। लोक में उनका स्वरूप अविकृत ही रहा। लोक की समस्त रूढ़ियाँ जिस प्रकार अवदानों के साथ सम्पृक्त हैं, उसी प्रकार परिनिष्ठित संस्कृति के तन्तु पुराणों से मिल गए हैं। लोक के सर्वतोमुखी ज्ञान को मानवों के कर्तव्यों से सम्पृक्त कर 'मिथक' बनाने की प्रक्रिया अवदानों में भी देखी जाती है। यह प्रक्रिया मानवीय जीवन को दैवी अवतार बनाने के लिए बड़ी सहायक सिद्ध हुई और संस्कृत पुराणों की देखा-देखी बौद्धों ने भी, अपने धर्म तत्त्व निरूपण सम्बन्धी ग्रन्थों में इनका उपयोग शुरू किया। बौद्धों की हीनयान शाखा पालि भाषा को माध्यम बनाकर गौतम बुद्ध की पूर्व-जन्म की कथाएं रचने लगी और महायान शाखा ने अवदानों की रचना करना आरम्भ किया। उनमें आए हुए पद्य भाग के लिए 'गाथा' शब्द ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया गया। गाथा का लोकतत्त्व वहां अपनी स्पष्ट पहचान बनाए रखता है। यहाँ तक कि भाषा के विद्वानों ने उसको नाम ही दिया है—'गाथा संस्कृत'।

लोक जीवन में प्रवहमान अनेक साहित्यधर्मी परम्पराओं की अनुकृति पर ही महर्षि व्यास ने जयकाव्य का ढांचा तैयार किया था, जिसका व्यासपीठों के आचार्यों द्वारा परिवर्द्धित संस्करण 'भारत' कहलाया। विकास होते-होते वही 'महाभारत' बन गया। कुमाऊंनी अवदान गाथाओं के लिए 'भारत' शब्द का ही प्रयोग होता है। इतना कहने को पुष्कल प्रमाण सुलभ हैं कि व्यासकुल और उसकी पीठ परम्परा का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्बन्ध हिमालय पर्वत के केदार-मानस खण्डों के साथ गहरा था।

प्रसिद्ध है कि अपनी सतसाहस्री संहिता (महाभारत) के रचना की योजना का प्रारूप व्यासमुनि ने नर-नारायण पर्वत के मध्य में स्थित उस स्थान में तैयार किया था, जिसे मणिभद्र ग्राम कहा गया है। मणिभद्र का खण्डहर नाम 'माणा' आज भी जीवित है और एक गाँव के रूप में उसकी सत्ता मौजूद है। वहाँ की लोक प्रसिद्ध व्यास गुफाओं में ही महामुनि ने पैल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तु नामक चार शिष्यों की सहायता से वैदिक संहिताओं का पारायण किया था और स्वयं ही वैदिक मन्त्रों का क्रमबद्ध वर्गीकरण करके, उन्हें सार्वजनीन और सहज रूप में लोक के सामने प्रस्तुत करने के ध्येय से लोक चेतना (विश्वात्मा) की खोज में वे लोक यात्रा में निकल पड़े थे। उस यात्रा में लोक में प्रवहमान उन समस्त अभिव्यक्ति-माध्यमों के पृथक्-पृथक् अंगों तक उनकी बारीक सूझ दौड़ी जिनमें लोक सत्ता की धड़कनें सुरक्षित थीं। उन्हें लोकाभिव्यक्ति की जो-जो शैलियां मिलीं, उन्हीं के परिमार्जित-शोधित शिल्प से वैदिक दर्शन को पुनः प्रस्तुत करने की योजनाएं बनीं। चार शैलियाँ विशेष उल्लेखनीय थीं—आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धि। विष्णु पुराण का कथन है कि उक्त चार शैलियों से जो पुराण-संहिता बनी, उसका मूल सूत्र उन्होंने लोमहर्षण को प्रस्तुत किया। लोमहर्षण के छः शिष्य थे—सुमति, अग्निवर्चा, मित्रायु, अमृतवंश, शांख्यायन एवं सावर्णि। अंतिम तीन शिष्यों में से प्रत्येक ने मूल संहिता का अवलम्बन लेकर अपनी एक-एक संहिता बनाई। इन्हीं संहिताओं से पुराणों की रचना हुई।

हस्तिनापुर, कुरुक्षेत्र और गन्धमादन पर्वतों की उपत्यकाओं के सम्बन्धों की चर्चा भारतीय धर्म साहित्य में बहुत है। दुनियादारी के और कामों में भले ही पीछे रहे हों, हिमालय के कोने-कोने में वे सहस्रों वर्ष पूर्व पहुंच चुके थे। पौराणिक भुवनकोशों के भूगोलज्ञ जब सारे देश की सीमाओं की खोज-बीन में प्रवृत्त थे तो गंगा-यमुना, अलकनन्दा, मन्दाकिनी-कर्णाली के यात्रापथों को भूल जाते। ऋषिकुलों और तत्त्व-दर्शी संन्यासियों का तो यह तपःस्थल था।

विवेचित अंचलों की जिस वीरगाथा विधा की ओर ऊपर संकेत किया था वह विशुद्ध इतिहास की प्रेरणा है, यद्यपि उसमें निजन्धरी तत्त्व बहुत मिल गए हैं। इस वर्ग की गाथाओं के लिए सर्वमान्य शब्द 'पवाड़ा' हो सकता है। इस वर्ग की गाथाओं की एक शाखा 'कत्यूरी' राजवंश के इतिहास के सन्दर्भ से जुड़ती है व दूसरी चन्द और पंवार वंश से जिनका कुमाऊँ और गढ़वाल के विभिन्न अंचलों में सदियों तक राज रहा। एक स्थिति ऐसी भी आई जब केन्द्रीय राज-शक्ति के निर्बल हो जाने पर बहुत-सी ठकुराइयाँ निर्मित हुई और स्थान-स्थान पर छोटे-छोटे भड़ों (थैंगों) की वीरतामूलक करतूतें, गाथाओं का विषय बनने लगीं।

एक और गाथा वर्ग उन लौकिक चरित्रों के अद्भुत कृत्यों से सम्बद्ध है, जिनकी प्रेरणा का स्रोत मध्यकालीन भारतीय सांस्कृतिक आन्दोलन रहे हैं। इन गाथाओं के नायक पूर्णतः निजन्धरी हैं। मल्लवंशीय वीरगाथाओं को इस वर्ग में रखा जा सकता है। इसी वर्ग में, कुछ राजाओं की वंशावलियाँ भी हैं। इन लोकगाथाओं के नायकों को अलौकिकता प्रदान करने वाली समूह मस्तिष्क की वह संस्कारिता है, जो किसी शासक, सम्राट अथवा योद्धा मानव को देवता के प्रतिरूप या अवतार के रूप में प्रतिस्थापित कर देती है। लोक दृष्टि इतिहास को इतिहास की तरह नहीं देखती, अपितु 'तिलिस्म' समझती है।

अपने परिपूर्ण कलेवर में खड़ी होने से पूर्व लोकगाथा धार्मिक अनुष्ठान, वीरत्वपूर्ण कृत्य, प्राकृतिक पूजा अथवा प्रजनन सम्बन्धी किसी प्राक्तन अवधारणाओं में प्रच्छन्न रहती है। इन धारणाओं से लोक रीतियाँ जन्म लेती हैं। लोक रीतियाँ स्वतः अलग-अलग दिशाओं में फैलकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मानव जातियों को अपने साथ जोड़ती हैं ।

कुमाऊं-गढ़वाल में जीवित गाथा-परम्पराओं के साथ जुड़े पेशेवर लोगों की पहचान हो जाने पर वह विचार पुष्ट होता है, जो हिमालय में नागों, पक्षों, गन्धर्वों, किरातों, दासों आदि को वहाँ की पुरातन जातियाँ सिद्ध करने की मान्यता पर आधारित है । निश्चित ही ये मानव-जातियाँ वहाँ की प्रागैतिहासिक जातियाँ थीं—जिनकी सांस्कृतिक विधियाँ, वहाँ कालान्तर में पहुंची मानव-जातियों की संस्कृति की एक समन्वयात्मक धारा में मिल गई। फलतः उनकी पृथक् अस्मिता लुप्त तो होती गई, परन्तु उनके जातीय अवशेष आज भी जीवित दिखाई देते हैं । यह बात ध्यान देने योग्य है कि लोक गाथाओं की रक्षक जातियों में अधिकांश अन्त्यजों में शामिल हैं । सवर्णों का इसमें बहुत कम योगदान है । वे जातियाँ 'आर्य' नहीं हैं; इसकी पुष्टि उनके लोक सांस्कृतिक स्तर, पेशेवर, श्रेणी-व्यवस्था और सामाजिक पिछड़ेपन से होती है ।

पौराणिक भुवनकोशों में इन जातियों की ओर स्पष्ट संकेत मिलते हैं । मानव-भूगोल को समझाने की पौराणिक शैली विचित्र है। वे समूचे एशिया महाद्वीप को कूर्म संस्थान कहते हैं। उसके भूगोल की आकृति का कछुवे की आकृति से सदृश्य स्थापित किया गया है । कूर्म संस्थान अर्थात् कछुवे के ढाँचे के सदृश द्वीप को वे नौ अंगों में विभक्त करते हैं—पृष्ठ भाग, मुख, दक्षिण कुक्षि, दक्षिण-पश्चिमी पैर, दांया पैर, पूंछ, उत्तर-पश्चिमी बांया पैर, बांयी कोख और पूर्वोत्तर पैर । उक्त 8वें और 9वें भाग में माध्य हिमालय (उत्तराखण्ड) की जानकारियाँ आती हैं । कुमाऊँ के लिए कूर्मांचल (कछुवे की गोद) शब्द का प्रयोग होता है जिसमें कितना इलाका वे सम्मिलित करते थे—इसका सही ज्ञान नहीं होता । हां, मानसखण्ड और केदारखण्ड नामक ग्रन्थों में यह स्पष्ट करने की कोशिका की गई है ।

कूर्म की वाम कुक्षि (बाँयीं कोख) में पौराणिकों ने जो पर्वत गिनाए हैं उनमें पहला नाम कैलास का है । उसके बाद के अनेक स्थान नामों से वसुमान, क्रौंच, भोगप्रस्थ, यामुन, त्रिगर्त, अश्वमुख, कैरात, तक्षशिला, अम्बाला, मालव, हूण, माण्डव्य, गान्धार आदि नामों को स्पष्ट पहचाना जा सकता है । कूर्म के पूर्वोत्तरी भाग में जिन राज्यों का उल्लेख मिलता है उनमें किन्नर राज्य का नाम सबसे पहले आता है । उसके बाद पशुपाल आता है और अब कश्मीर । इसी क्रम में त्वंगन, वनराष्ट्रक, एकपाद, खश व गन्धर्व जनपदों का जिक्र है ।

वसुमान पर्वत के पार्श्व में ही अलकापुरी अवस्थित होनी चाहिए क्योंकि 'वसु' का अर्थ धन-वैभव होता है । इसी कारण तो मेघदूत में कवि 'कालिदास' ने इसे वास्वोकसारा (वसुओं से भरी) कहा है । अलकापुरी का अलकनन्दा से सम्बन्ध जरूर है । इसी प्रकार क्रौंच शब्द को लिया जा सकता है । कुमाऊं नेपाल के सीमान्त से तिब्बत की ओर जाने वाले दर्रे का यह पौराणिक नाम है । इस से भारत के क्रौंच पक्षी उड़कर तिब्बत और मंगोलिया की ओर आते-जाते रहे हैं । इसीलिए कालिदास ने इसे 'क्रौञ्चरन्ध्र' कहा है । इसका 'हंसद्वार' नाम भी इसी कारण दिया गया है ।

भोगप्रस्थ तो हिमालय की कोई महत्त्वपूर्ण रियासत थी जिसका उल्लेख महाभारत में है । इसी प्रकार यमुना नदी के उद्गम को 'यामुन' कहा गया है जिसे गढ़वाल में 'बन्दरपूंछ' कहते कहते हैं । त्रिगर्त कुल्लू-कांगड़ा के लिए प्रयुक्त नाम है और अश्वमुख तो छुरमल्ल की लोक गाथा में 'घोड़मुखा देश' ही कहा गया है । वहाँ के आदमी घोड़े के समान मुख वाले हैं । उक्त लोकगाथा में जौनसार प्रदेश को ही उक्त अंचल बताया गया है ।

कैरात अथवा किरात राज्य वर्तमान नेपाल का पश्चिमोत्तरीय भाग है जिसमें आज भी राई, याखा, लिम्बू आदि जन-जातियाँ निवास करती हैं । राहुल सांकृत्यायन की मान्यता के अनुसार एक समय में ये किरात गंगा के पनढर से पूर्वी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छोर के लिए सारे नेपाल तक फैले थे। गोरखा-जुमला के बीच के प्रधान किनासी मगर और गुरुंग जातियों को यद्यपि किरात में नहीं गिना जाता था किन्तु मानव तत्त्व की दृष्टि से ये भी उसे विशाल किरात जाति का अंश थीं।

'हूण' जाति का स्थान कुमाऊँ-गढ़वाल के जन साधारण को आज भी पूर्ण विदित है। इसके लिए वहा 'हुणियाँ' शब्द व्यवहृत होता है जो तिब्बत निवासी के लिए रुढ़ है। इसी प्रकार किन्नर राज्य वर्तमान हिमाचल प्रदेश का 'कन्नौर' अंचल है और 'पशुपाल' पशुचारक जातियों का इलाका। संभवतः कांगड़ा के गद्दी और रामपुर बुशहर के गूजर आज गढ़वाल की पयारों में भैंसें और गाय-बकरियाँ चराते हैं उसी तरह प्राचीन युगों में भी चराते रहे हों। लोक गाथाओं में बकरिया, 'अण्वाल' भी पशुचाकर हैं और ढाकर-बाकर लेकर चलने वाले 'शौका' भी।

त्वंगन का शुद्ध पाठ तंगण है जो जौनसारी बोली में आज भी सुरक्षित है। 'तगणी चट्टी' बदरीनाथ के पास है। इसका अर्थ 'सौदा करना' होता है। ये सौदे दैनंदिन उपयोग की साधारण सी वस्तुओं, जैसे हल्दी-मिर्च, नमक, अदरक, लहसुन आदि से लेकर स्त्रियों के आभूषणों तक के माने जाते हैं। महाभारत में यह शब्द जाति बोधक है और किरात, पुलिंद, अलिन्द आदि जातियों के साथ उसका प्रयोग हुआ। सम्भव है आज की जौनसारी तक आते-आते उस प्राचीन शब्द का अर्थ परिवर्तित हो गया हो और जाति का वाचक शब्द उस जाति के व्यवसाय के लिए प्रचलित होने लगा हो। यदि ऐसा है तो तंगण और खश एक ही जाति की शाखायें ठहरती हैं।

वनराष्ट्रक जाति वर्तमान, 'वनराजी' है जिसकी जनसंख्या घटते-घटते केवल तीन-चार सौ ही रह गई है। 'वनरौत' नाम से प्रसिद्ध यह जाति पिठौरागढ़ जिले के धानधूरा, चिफलतारा, गणगांव, औलनड़ी, खिरडारी आदि दस बस्तियों में विभाजित है और आज भी शुद्ध आखेट जीवी और फल-मूल बटोर कर जीविकोपार्जन करती हैं।

संस्कृत पुराणों में वर्णित एकपाद, गढ़वाली इन्द वाग शीर्षक गाथा में 'एक खुटिया राज' नाम से याद किया गया है। गढ़वाली 'हृदयवास' लोक कथा में एक खुटिया राज आता है। इसी से मिलता-जुलता एकघनियाँ और लमकनियाँ राज भी हैं। लमकनियाँ का संस्कृत नाम 'लम्पाक' है।

'खश' जाति उत्तराखण्ड में सर्वविदित है जिसे 'खशिया' कहा जाता है। केदारखण्ड के अनुसार राज्य की सीमा अलकनन्दा के दायें भाग से लेकर हरिद्वार से ऊपर, टोंस नदी तक थी और उत्तर में बौद्धाचल तक जाती थी। बहुपतिप्रथा को मानने वाली यह जाति आज टिहरी (गढ़वाल) जिले के जोंनपुर तथा देहरादून जिले के जोंनसार-बावर तथा उत्तरकाशी के खाँई अंचल में रहती है और समूचे उत्तराखण्ड की जातियों में इसके मिश्रण के तत्त्व ढूंढे जा सकते हैं।

पुराणकार जम्मू-कश्मीर से लेकर नेपाल तक के मानव भूगोल का जो खाका खींचते हैं उसकी रीढ़ खम्भ है महाहिमालय की श्वेत सीमा। सैंकड़ों उपगिरि श्रृंखलाएं पसलियों की भाँति इससे चिपकी हुई हैं। रीढ़ खम्भ और पसलियों के जोड़ों से ही गंगा-सिन्धु-सरस्वती-शतद्रु-चन्द्रभागा-इरावती-वितस्ता नदियों के सोते फूटे हैं। उनकी अन्तर्वेदियों में रमणीक वादियाँ बन गई हैं जिनकी आड़ी-तिरछी रेंजों में साल, देवदारु, द्राक्षा, सौवीर-स्रोतोञ्जन, सैंधा नमक, वैदूर्य उत्पन्न होता है। उनकी हरि-भरी बुग्यालों में घोड़े चरते हैं। हिमालय के इस विशाल पञ्जर के आधोआध में कैलास पर्वत है जिसके चरणों में स्थित बिन्दु सरोवर (मानसरोवर) को भारतीय मनीषियों ने भारत राष्ट्र की अन्तिम सीमा बताया है। बिन्दु सरोवधि जिस प्रकार चक्रवर्ती के भू-दिग्विजय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की आखिरी हद है उसी प्रकार जीवन की हद है कैलास। वैल शब्द वैकुण्ठ का वाचक है जिस पर आरोहण की सीढ़ी है कैलास। इस प्रकार भूगोल के साथ मिथक की जो परिपाटी पुराणों में अंगीकृत है, वह लोकगाथाओं में अपने अविकृत रूप में सुरक्षित रहती आई है। मलैनाथ की लोकगाथा में, मार्गलिंग राजा के हुक्म से इन्द्र राजा की सेवा-टहल के लिए चला हुआ पंचकोटि देवताओं का दल मल्ली जोहार परगन्ने से हिमपथ में चलकर पंचचूली शिखर पर पहुंचता है वहां से नन्दा-चन्दा द्वार होकर आकाश मार्ग से काला काफर। क्रमशः आगे बढ़ते हुए वे अन्तरिक्ष के रास्ते सूर्यमण्डल, चन्द्रमा मण्डल और 'जमू के द्वार' पहुंचते हैं। उसके भीतर इन्द्रराजा की 'नीलहरी' चौकी है। पुराण और लोकगाथा के अन्तसम्बन्धों की जानकारी के लिए ये वर्णन जितने उपयोगी हैं उतने ही महत्त्व की चीज है लोकगाथा और इतिहास के सम्बन्ध की जानकारी।

लोकगाथाओं में उत्तराखण्ड के जिस प्राचीनतम इतिहास का सन्दर्भ जुड़ा वह 'कत्थूरी' राज-वंश से सम्बन्ध रखता है। इस राजवंश की राजधानी कर्तृपुर थी, जिसका अपभ्रंश नाम आज कत्यूर है। चौथी शताब्दी ई. में भारत के महान् प्रतापी राजा समुद्रगुप्त का यह सीमान्तीय राज्य था। प्रयाग के अशोक स्तम्भ में उत्कीर्ण कवि हरिषेण की प्रशस्ति में इस राज्य का नाम आया है। समुद्रगुप्त, दिग्विजय करके चक्रवर्ती सम्राट बना था। लगभग 350 ई. में उसकी दिग्विजय समाप्त हुई थी। उसके द्वारा पराजित नौ राजाओं के नाम उक्त प्रशस्ति में अंकित हैं (समतट उवार कामरूप नेपाल कर्तृपुरादि प्रत्यन्त नृपतिभिः)। इन राज्यों के अतिरिक्त अनेक जंगली जातियों, सीमा प्रान्तीय जाति-नायकों पर भी उसने विजय प्राप्त की थी। इसी प्रशस्ति में कन्योपायनदान' ग्रहण करने का उल्लेख भी है। जिसका आशय है विजित राजाओं की कन्याओं से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करके उसने मैत्री संधि स्थापित की थी।

समुद्रगुप्त के बाद उसका लड़का चन्द्रगुप्त द्वितीय गद्दी पर बैठा था। 413 ई. के आस-पास तक उसका शासन रहा। उसने विक्रमादित्य की पदवी धारण की। यह महज संयोग की बात नहीं है कि समूचे उत्तराखण्ड में आज भी शक सम्वत् का ही प्रचलन है जबकि शेष भारत में विक्रमी सम्वत् ज्यादा चलता है।

चन्द्रगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त था जिसका गद्दी से उतरने का कारण इतिहास की एक सनसनीखेज घटना है जिसका सन्दर्भ कार्तिकेयपुर राज्य से जुड़ा हुआ है। रामगुप्त की रानी ध्रुवदेवी (ध्रुवास्वामिनी) थी। रामगुप्त, उत्तर की तरफ से शकों के आक्रमण को विफल करने के लिए कार्तिकेयपुर राज्य की सीमा पर गया परन्तु शकराजा से पराजित हो जाने के कारण उसने ध्रुवदेवी को शकराजा के हाथों सौंपने का वायदा किया। इससे क्षुब्ध हो चन्द्रगुप्त ध्रुवदेवी के वेष में शकराजा के शिविर में गया और उसने शकराजा को मार दिया और ध्रुवदेवी के साथ पुनर्लग्न करके वह वापस लाया। डॉ. भण्डारकर के मत से यह ऐतिहासिक घटना अल्मोड़े के आधुनिक 'कत्यूर' में गोमती की घाटी के पास घटित हुई थी। यह घटना संस्कृत साहित्यकारों ने अनेक ढंग से अपनी रचनाओं में उद्धृत की। सातवीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवि बाणभट्ट ने लिखा है—शत्रु शिविर में परकलत्र-कामुक शकपति को स्त्रीवेश में चन्द्रगुप्त ने समाप्त किया। ग्यारहवीं शती के काव्य शास्त्री ने तो उपर्युक्त सम्पूर्ण घटना को ही जैसे एक छन्द में बांधने की कोशिशें की हैं—

दत्वा रुद्धगतिः खसाधिपतये देवी ध्रुवस्वामिनी
यस्मात् खण्डितसाहसो निववृते श्रीरामगुप्तोनृपः।
तस्मिन्नेव हिमालये गिरिगुहा कोणक्करत्किन्नरैः
गीयन्ते तव कार्तिकेयनगर स्त्रीणां गणैः कीर्तयः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसी घटना पर विशाखदत्त कृत 'देवी चन्द्रगुप्त' नामक नाट्य रचना जब प्रकाश में आई तो उससे इतिहास जगत में नई खलबली मची। कुछ इतिहासज्ञों का यह मानना था कि यह नाटक जीवन-परिचय परक है और यह वही लेखक है जिसने विख्यात नाटक 'मुद्राराक्षस' लिखा था और चन्द्रगुप्त की सभा का राजकवि बताया जाता है।

कत्यूरी राजा किस मानव-वंश के थे—यह निश्चित नहीं है। कुछ लोग उन्हें काबुल के कटोरमान वंश की शाखा बताते हैं। कुछ लोगों की धारणाएं हैं कि ये खश हैं। ये अपने अतीत में जो भी रहे हों। 'कत्यूरी' से मिलती-जुलती एक जाति 'कैंनुरा' आज भी जीवित है। इस राजवंश के संस्थापक राजाओं में 'वासुदेव' का नाम लिया जाता है। लोकगाथाएं कत्यूरी वंश के प्रथम राजा आसन्ती के बाद 'बासन्ती' का होना बताती हैं जो वासुदेव का ही परिवर्तित नाम लगता है। कत्यूरी राजाओं की वंशावली में कहा गया है कि प्रथम राजा आसन्ती का पाट, वासन्ती का पाट, सावला का पाट, नीली चौंरी उझान का पाट आदि। उत्तराखण्ड के महत्त्वपूर्ण मन्दिर जिनकी शैली को कत्यूरी शैली कहा जाता है में सूर्य की मूर्तियां उपलब्ध होती हैं जिनके पैरों में बूट पहिनाए गए हैं। पुरातत्त्व-विद् इन्हें शकों के इष्ट देव 'सूर्य' की मूर्ति मानते हैं। डोटी और अरकोट में उनकी जो खानदानें बची हैं वे अपने को सूर्यवंशी कहते हैं।

वे किसी भी मानव-वंश के रहे हों और किसी भी देवता की पूजा करते रहे हों, इतना निश्चित है कि 'कर्तृपुर' अथवा कार्तिकेयपुर में स्थापित होने से पूर्व उनकी राजधानी जोशीमठ के समीप तपोवन के आस-पास कहीं थी। 'कार्तिकेयपुर' नगर से जारी किए गए चार ताम्रपत्र इस वंश का प्राचीनतम ऐतिहासिक दस्तावेज हैं जो अलग-अलग नरेशों के अपने विजयराज सम्वत्सर के क्रमश: चौथे, इक्कीसवें, बाइसवें और पच्चीसवें वर्ष जारी किए गए हैं। उनमें दो ताम्रपत्र ललितसूर के हैं, एक पद्मदेव का तथा एक सुभिक्षराज का। इन्हीं ताम्र-पत्रों की शैली में बागेश्वर का शिलालेख है जो ललितसूर के पुत्र भूदेव के द्वारा लिखवाया गया है।

कर्तृपुर अथवा कार्तिकेयपुर शब्द सम्भवत: एक ही राजवंश की अलग-अलग स्थानों पर बसी दो राजधानियों का आभास देते हैं। इन नामों के साथ पार्वती के पुत्र स्वामी कार्तिकेय का नाम अनुस्यूत है जिसका वाहन गरुड़ है। आज की कत्यूर घाटी का गरुड़ स्थान जो कत्यूरी शैली के मन्दिर-समूहों के लिए विख्यात है—सम्भवत: नाम की उक्त पौराणिक अवधारणा का ही मूर्त रूप है। अलकनन्दा-मन्दाकिनी ही अन्तर्वेदी के बीचों-बीच कार्तिकस्वामी का डण्डा है और नागनाथ-पोखरी में 'कार्तिकस्वामी' का मन्दिर भी। इन स्थान-नामों का भाषा भौगोलिक अध्ययन बहुत रोचक है जो लोक-गाथा और पुराण के मिले-जुले रूप के दिग्दर्शन में बड़ा सहायक है।

कत्यूरी राजा कार्तिकेयपुर को छोड़ने के बाद खेमों कई में वंट गया। एक खेमा कत्यूर में गया दूसरा द्वाराहाट में। एक अन्य खेमा लखन-पुर में बसा जिसकी शाखा का आखिरी कुख्यात राजा वीरदेव (विरमदेव) हुआ।

लगता है चौथी सदी ईस्वी से छठी सदी तक के इतिहास में वहाँ कम उलटफेर हुए परन्तु 7वीं शती में इतिहास कई धाराओं में बहने लगा। इसी समय उत्तराखण्ड के पड़ोसी देश तिब्बत में त्सांगचेन गमपो राजा बना जिसने तिब्बत में बौद्धधर्म को आश्रय दिया। इसी के समय में भारतीय विद्वानों की मदद से तिब्बती लिपि का आविष्कार हुआ। दूसरी ओर कश्मीर के राजा ललितादित्य युक्तापीड़ ने दिग्विजय करते-करते गढ़वाल के स्त्री-राज्य में प्रवेश किया था और पँवार वंश का एक नया राजवंश गढ़वाल के चाँदपुरगढ़ में आ बैठा था। भारत में यह समय हर्षवर्धन और पुलिकेशिन के महान्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राज्यों की स्थापना का समय है। चीन और भारत के दूत और एलिची, इस समय एक दूसरे देशों में आ-जा रहे थे और सबसे महत्त्व की बात यह कि गढ़वाल में बौद्ध धर्म गहरी जड़ें जमा चुका था। चीनी यात्री हुएत्सांग जो तमाम बौद्ध स्थानों और तीर्थों के पर्यटन के लिए यहाँ आया था, उस समय कुमाऊं, गढ़वाल के चार मुख्य नगरों में घूमा था। वे चार नगर थे स्युघ्र (सु लो कि न) अथवा कालसी, मतिपुर (म ति पु लो) ब्रह्मपुर (पो लो हि मो पो लो), और गोविषाण (क्यू पि स्वा ङ् न)।

हुएत्सांग ने स्युघ्र नगर में पाँच संघाराम देखे थे जिनमें एक हजार बौद्ध भिक्षु रहते थे। यहाँ से यमुना के किनारे सम्भवतः लाखा मंडल होकर गंगोत्री गया था। उत्तरकाशी और गंगोत्री के बीच कहीं गंगा को पार करके वह पूर्व की ओर घूमा जहाँ उसे 'मतिपुर' नाम की एक रियासत मिली थी जिसे वह 'शूद्र' राजा की राजधानी बताता है जो माप के अनुसार 20 मी० के घेरे में फैली हुई थी। वहाँ उसने फलों के उद्यान देखे थे। 6000 ली के क्षेत्रफल में फैले उस राज्य में जादू-टोने का बहुत रिवाज था। उस राज्य की उत्तर-पश्चिमी सीमा में, गंगा के पूर्वीय तट पर एक और नगर 'मयूलो' उससे देखा था। वहाँ ताँबे की खानें थीं। उसने होकर हुएत्सांग गंगाद्वार (हरिद्वार) आया था।

हरिद्वार से 300 मी० पैदल चलकर वह ब्रह्मपुर पहुँचा था जो गुप्तयुग से लेकर कत्यूरियों के अंतिम दिनों तक प्रसिद्ध रहा है। हुएत्सांग ब्रह्मपुर को 400 मी० के क्षेत्रफल में फैला हुआ देश कहता है। वह चारों ओर से पर्वतों से घिरा हुआ है। वहाँ के लोग धनी और कम शिक्षित हैं। वे व्यापारी स्वभाव के हैं। इस राष्ट्र का नाम मार्कण्डेय पुराण में भी आता है, जिसके एक ओर वनराष्ट्रक देश है और दूसरी ओर एकपाद, खश और सुवर्णभूमि के प्रदेश। सुवर्णभूमि का वर्णन हुएत्सांग भी करता है जहाँ कि शुद्ध सोना निकाला जाता था। पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक के व्यापारी यहाँ खरीद-फरोख्त के लिए आते थे। वहाँ की धरती वर्ष में केवल एक फसल देती थी। वहाँ से हिमालय की चोटियों के दर्शन होते थे। उस राज्य की अद्भुत विशेषता थी, स्त्रियों के हाथों में शासन की बागडोर का होना। कल्हण की राजतरंगिणी इसे 'स्त्रीराज्य' कहती है और हुएत्सांग 'पूर्वीय स्त्रियों का राज्य'। वहाँ शासन को सम्भालती हुई स्त्री के पति को 'राजा' तो कहते थे परन्तु शासन के कार्यों के बारे में वह कुछ भी नहीं जानता था। पुरुष केवल लड़ने का काम, खेती और पशु पालन करते थे।

गजेटियर लेखक अंग्रेज एटकिंसन इसे 'मानसरोवर क्षेत्र' में होना मानता है। हुएत्सांग के अनुसार स्त्री राज्य के उत्तर में तिब्बत है जिसे चीनी भाषा में फान कहा गया है।

कुमाऊंनी लोक गाथाओं में स्वर्णगोत्र जैसा ही एक स्थान है 'पुरचूंण' जहाँ सोने की खानें हैं। लोकगाथाओं की अनेक नायिकायें मोती-माला, ध्यानमाला, जोतमाला और पिंगला के चरित्र स्त्री राज्य की शासिकाओं से मेल खाते हैं। ये बहुपति-प्रथा को मानने वाले कबीलों के राजाओं की रानियाँ हैं। उनकी पलंगों में 'धतिया घंटियाँ' बंधी हैं। सोने के जाजम और चाँदी के स्तम्भों से निर्मित झरोखों में बैठकर वे आखेट से लौटकर आते पतियों के पथ निहारती हैं।

हिमालय के अंचलों में जब यह बहुराजकता पल्लवित हो रही थी, हर्षवर्द्धन के मृत्यु के बाद के वर्षों में वहाँ एक अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटी। यह घटना 667 ई० के बाद की है। तब हर्षवर्द्धन के मन्त्री अर्जुन (अरुणाश्व) ने हर्ष का उत्तराधिकारी बनने का उद्योग शुरू किया था। 646 ई० से तीस घुड़सवारी का एक चीनी प्रतिनिधिमण्डल तब भारत की यात्रा पर आया हुआ था। अर्जुन ने उसे लूट लिया। सम्भवतः वह कूटनीति से प्रेरित कोई चाल थी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिससे रुष्ट हो त्यांग ये न गम्यो ने 1200 तिब्वतियों, 700 नैपालियों की सेना के साथ चीनी दूत वङ्गह्यूनसी की अध्यक्षता में उत्तराखण्ड की सीमाओं में उतार दी। उसका परिणाम यह हुआ कि मानसरोवर क्षेत्र और उत्तरी गढ़वाल-कुमाऊं का बड़ा सा भाग तिब्वती कब्जे में आ गया। इस जबर्दस्त मुठभेड़ में हजारों हिन्दू मारे गए और अर्जुन को कैद करके चीन भेज दिया। इतिहासज्ञ डॉ० बेनी प्रसाद का कथन है कि इन लोगों ने तिरहुत तक को जीतकर दीवारों से घिरे हुए 538 कस्बों पर अधिकार किया। शायद कुछ दिन तिरहुत में तिब्वती शासन भी रहा पर विदेशी सेना वापस लौट गई। प्रत्याक्रमणों का सिलसिला यह था कि कश्मीर के क्षेत्र से ललितादित्य ने तिब्बत के एक बड़े से भाग को सर कर लिया। कश्मीर की देखा-देखी ही अनेक रियासतों ने हिमालय के पार के तिब्बत के हिस्सों को अपने राज्य में मिलाने की कोशिशें सदियों तक जारी रखीं।

एक ओर इतिहास की ये घटनायें घट रही थीं दूसरी ओर बौद्ध भिक्षुओं के जत्थों के जत्थे वहां के तीर्थों में पड़े रहने लगे थे। हुएत्सांग ने बौद्ध भिक्षुओं को ही नहीं अनेक मतों और पंथों के साधुओं को वहां देखा था जो मोरपंख पहनते थे, खोपड़ियों की मालायें डालते थे, घास में नंगे बदन सोते थे और केश नोचते थे। इतिहास और संस्कृति की यह गड्ड-मड्ड स्थिति एक ऐसे सांस्कृतिक 'नेतृत्व' के इन्तजार में बैठी थी जो भगवान शंकर का अवतार होकर जगद्गुरु की ख्याति पाने वाला था। आचार्य शंकर के साथ तीर्थों की इस भूमि का सम्बन्ध सेतुबन्ध तक पहुँचा। शंकर के उस महान् संस्कृति पथ में मध्यकाल की न जाने कितनी ही धर्म साधनाएँ, दार्शनिक मतवाद और सम्प्रदाय वहां आते-जाते रहे जिन्होंने ग्यारहवीं शती के आते आते धर्मपीठ ज्योतिर्पीठ को राष्ट्र की उस सर्वोच्च ख्याति के शिखर पर पहुँचा दिया था जहाँ अद्वैत दर्शन के कठोर तर्क ही नहीं संस्कृत वाङ्मय, ज्योतिष, योगशास्त्र तथा इतिहास पुराणों की पठन-पाठन की प्रणाली प्रवेश पा गई थी। पर्वतीय लोक चेतना में यह एक आदर्श गुरुकुल का स्थान पा चुका था। 8वीं शताब्दी में शंकराचार्य द्वारा पराजित प्रताड़ित बौद्ध मतावलम्बियों के छिन्न-विच्छिन्न घटक राजनीतिक शक्तिकेन्द्रों की स्थापना में जुट गए थे। सन् 1191 ई० के बौद्ध आक्रान्ता अशोकचल्ल के जोशीमठ की तहस-नहस करने की वारदातों और आगजनी की योजनाओं से इसकी पुष्टि होती है। उस दुर्दान्त आक्रान्ता की चढ़ाइयों के साक्षी गोपेश्वर तथा उत्तरकाशी के वे लेख हैं जो लोहे के त्रिशूलों में उत्कीर्ण किए गए हैं। अपने को अभिनव बोधिसत्त्वावतार कहने वाले इस 'दानवभूतल' के राजा के सही स्थान की खोज बहुत मुश्किल है। कहीं दानवभूतल आज का 'दानपुर' तो नहीं है जहाँ असन्तुष्ट शकों (शौकों) के किसी बौद्धधर्मी खानदानी ने अपने पूर्व पुरुषों की पुरानी रंजिश से बदला लेने के लिए उपयुक्त अवसर पाकर यह सब किया हो। धर्म के लिबास में लिपटे इस बर्बर सामन्त के हमले ने उत्तराखण्ड के मिथक को झकझोर कर रखा दिया और शान्त आदतों की पहाड़ी जातियों के सिंहत्व को जगा दिया। लगता है इसी युग से, तलवार, दुर्ग और सेवाओं का महत्त्व बढ़ गया और जनम लिया सैकड़ों वीरगाथाओं ने जिनमें कत्यूरी, चन्द, पंवार आदि वंशों के नरेशों की प्रशस्ति तथा शौर्य-गाथाएं सम्मिलित हैं।

अशोकचल्ल के उपर्युक्त आक्रमण के 32 वर्ष बाद क्राचल्लदेव ने उसी शैली का दूसरा हमला किया। बालेश्वर वाले देशटदेव के ताम्रपत्र की पीठ पर इस आक्रान्ता का एक लेख अंकित हुआ है। उसमें उल्लिखित है कि परम सौगत (बौद्ध) श्रीमान क्राचल्लदेव नरपति ने अपने 16वें विजयराज सम्वत्सर में अधिकृत क्षेत्र में हथियारों से अपने सारे शत्रु पक्ष को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परास्त किया और विध्वस्त कीर्तिपुर (कार्तिकेयपुर) के राजाओं को नष्ट कर, वहाँ अपना अधिकार स्थापित किया। सन् 1227 ई० में घटित इस घटना ने जहाँ सांस्कृतिक समन्वय के महान् राष्ट्रीय प्रयास में जुड़े उत्तराखण्ड को क्षत-विक्षत कर दिया, वहीं दूसरी ओर सांस्कृतिक अभ्युत्थान से उपेक्षित पड़ी हुई राजनीतिक शक्ति को एक करने में मदद भी की। 18वीं शताब्दी के आसपास ही कालीकुमाऊँ के चम्पावत नगर में जो 'चन्द' राजवंश कहीं बाहर से आकर रहने लगा था, इस समय शक्तिशाली होकर अपनी शक्ति का प्रसार करने लगा। कत्यूरियों के इधर-उधर बिखरे छोटे-छोटे रजवाड़े पहले से ही कायम थे। उस युग की बहुराजकता नेपाल से कश्मीर तक सर्वत्र विद्यमान थी। छोटे-छोटे हितों के लिए वे उत्पात मचाते और एक-दूसरे को बन्दरघुड़की देते। बौद्धों के उपर्युक्त सशक्त हमलों से इन बिखरी शक्तियों को एक होने की प्रेरणा मिली और अजयपाल नामक पंवार वंश के राजा ने एक नये गढ़वाल का निर्माण करना शुरू किया। इस समय तक दिल्ली में तुर्क सल्तनतें गद्दीनशीन हो गई थीं। वे अपनी सल्तनत को फैलाने के प्रयास में इन पहाड़ियों में घुसने का मौका ढूँढ रहे थे। पश्चिमी के रामगंगा (रहब) और गंगानदी को पार करके हिमालय के इन राज्यों में उनकी चढ़ाइयों के उल्लेख तुर्क इतिहास लेखकों ने दिए हैं।

कटेहर और दिल्ली सल्तनत के बीच चली आती वैमनस्य की रक्तरंजित परिणति 1380 ई० की घटना है। उस समय फीरोज तुगलक सल्तनत का मालिक था और खड़गू के हाथ में कटेहर राज्य की बागडोर थी। इस दुर्घटना की शुरुआत एक दावत से हुई जिसमें बदायूँ के तुर्क प्रशासक सैय्यद मोहम्मद और उसका भाई सैयद आलमदीन खड़कू के यहाँ आमन्त्रित थे। अपनी पुश्तैनी रंजिश से प्रेरित होकर खड़गू ने दोनों को मरवा दिया। इसकी सूचना पाते ही फीरोज तुगलक दलबल सहित कटेहर पर चढ़ आया। खड़कू डर गया और कुमाऊं की पहाड़ियों में भूमिगत हो गया। कुमाऊं की जिस रियासत में वह भूमिगत हुआ, उसे तारीखे फीरोजशाही में 'मेहताओं का देश' कहा गया है (Elliot and Dawson, History of India as told by its own Historians)। फीरोज तुगलक के आक्रमण के समय कत्यूरी राज्य की गद्दी पर राजा पृथ्वीपाल आसीन थे, ऐसा अनुमान होता है। पृथ्वीपाल की प्रशस्ति में कहा जाता है कि उसने पृथ्वी हिला दी। सम्मान झलका दिया। आकाश तक बवंडर उठे। 'रहब' के घाटे में कठैतों के खंग खनके तो उनको मदद की पृथ्वीपाल ने परन्तु इस सारी वीरता के बावजूद उसकी पत्नी जिया को 'तुर्कों' द्वारा उठा दिया गया जिसके सत्त और धर्म को कुमाऊंनी लोक गाथाएं बहुत महत्त्व देती हैं। जिया, मालवा के प्रतापी क्षत्रिय महाराज खाती की लड़की थी। ऐसी प्रसिद्धि है कि उसको तुर्कों की कैद से मुक्त कराने के लिए 'हँसकुंवर' के 9 लाख कत्यूरियों का दल तराई में युद्ध करने गया। वह वीर माता कैसे शहीद हुई, यह तो ठीक-ठीक नहीं मालूम है, परन्तु काठगोदाम के गोलाघाट चित्रशिला में उसके नाम का आज भी मेला लगता है और वह माँ (जिया) करके स्मरण की जाती हैं।

इस समय कटेहर से सहस्रों शरणार्थी पहाड़ों में आए। उनकी विपत्तियों को सहृदयतापूर्वक समझ सकना पहाड़ी लोगों के लिए स्वाभाविक था। वहाँ के युद्ध पीड़ितों ने हीन स्थितियों को झेलकर भी पहाड़ों में रहकर दिन काटना उचित समझा होगा। कटेहर के नाम का वाचक शब्द 'कठुआ' कुमाऊँनी भाषा में आज तक जीवित है। यही नहीं, लोक गाथाओं का एक पूरा वर्ग कड़ौक, कड़कू या कटकू नाम से ही प्रसिद्ध है, जिसमें कटक (सेना) के युद्धों सम्बन्धी विषय-वस्तु पर आधारित घटनाओं के वर्णन को महत्त्व दिया गया है। ☐

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तराखण्ड के चरागाह

निरंजन प्रकाश मेलकनिया

उत्तर प्रदेश के आठों पर्वतीय जिलों-अल्मोड़ा, पिथौरागढ़, नैनीताल, चमोली, टिहरी, उत्तरकाशी, पौड़ी एवं देहरादून-को सम्मिलित रूप से उत्तराखण्ड या मध्य हिमालयी क्षेत्र कहा जाता है। भौगोलिक दृष्टि से उत्तराखण्ड 28°44′—31°30′ उत्तरी अक्षांश एवं 78°2′–81°5′ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है जो हर प्रकार की जलवायु [यथा उष्ण कटिबन्ध (tropical) से लेकर अत्यधिक ऊँचाई अथवा अल्पाइन (alpine) तक] एवं स्थलाकृति (topography) की विभिन्नताओं से परिपूर्ण है। उत्तराखण्ड में भूमि उपयोगिता की स्थिति निम्नवत है (साभार के० एम० तिवारी, 1983, सोशल फॉरेस्ट्री इन इण्डिया) :

श्रेणी/क्षेत्रफल (लाख हैक्टर)

कृषि उपयोग में प्रयुक्त क्षेत्र—14

वन क्षेत्र – 12

चरागाह क्षेत्र—·05

बोया गया वास्तविक क्षेत्र—42·9

समुद्र तल से ऊँचाई के आधार पर इस क्षेत्र को मुख्यतया निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है :

1. निचली ऊंचाई वाला क्षेत्र : इस क्षेत्र में 900 मी० की ऊँचाई तक के स्थान सम्मिलित हैं। तराई-भावर तथा शिवालिक पर्वत श्रेणियाँ इस क्षेत्र का मुख्य भाग बनाती हैं। यहाँ की जलवायु उष्ण कटिबन्ध से सम-शीतोष्ण (Sub-tropical) तक तथा मिट्टी जलोढ़ (alluvial) किस्म की हाती है। भावर की अपेक्षा तराई का क्षेत्र अधिक नम है, जहाँ भूमिगत जल 75 से 90 से० मी० की गहराई पर पाया जाता है।

2. मध्यम ऊंचाई वाले क्षेत्र : इसमें 900 से 1650 मी० की ऊँचाई के स्थान हैं, जहाँ पर जलवायु समशीतोष्ण से गर्म शीतोष्ण (warm temperate) प्रकार की होती है। भूमि हल्के ढलान युक्त अथवा घाटी युक्त है। मिट्टी रेतीली दुमट (sandy loam) से मटियार दुमट (clayey loam) प्रकार की होती है। कृषि क्षेत्र मुख्यता असिंचित है तथा वर्ष में दो फसलें प्राप्त की जाती हैं। चावल की उपज केवल सिंचित क्षेत्र में ही सीमित है।

3. अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्र : समुद्र सतह से 1700 मी० से 2900 मी० तक की ऊंचाई पर स्थित भाग इस क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। इस क्षेत्र की जलवायु नम शीतोष्ण (moist temperate) है। भूमि मुख्यतया रेतीली अथवा रेतीली दुमट है। भूतल अधिक ढलान युक्त है। तथा पूर्णतया असिंचित है। वर्ष में प्रायः दो फसलें प्राप्त की जाती हैं। इस क्षेत्र के कुछ स्थानों, जैसे सोसा (चौदांस घाटी) में मौन पालन एवं फलोत्पादन तथा 2000 से 2700 मी० तक की ऊँचाई वाले स्थानों पर सब्जी (आलू, अदरख, मटर आदि) एवं फल-उत्पादन अत्यधिक सफल है।

4. अत्याधिक ऊंचाई वाले क्षेत्र : इसमें 2900 से 4200 मी० की ऊँचाई तक के स्थान सम्मिलित हैं। इस क्षेत्र की जलवायु नम शीतोष्ण से अल्पाइन शुष्क ठण्डी (alpine dry cold) तथा 5000 मी० से अधिक ऊँचाई पर शीत आर्कटिक रेगिस्तानी (cold arctic desert) है। 4200 मी० से अधिक ऊँचाई पर कृषि कार्य नहीं किया जाता है। केवल मई-जून से नवम्बर तक ही कृषि कार्य संभव है, फलतः एक ही फसल प्रति वर्ष प्राप्त की जा सकती है। शीतकाल में 1800 मी०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में हिमपात हो जाता है। 2800 मी० से अधिक ऊँचाई के क्षेत्र दिसम्बर से मई तक वर्फ से ढके रहते हैं, जबकि 5000 मी० से अधिक ऊँचाई के क्षेत्र वर्ष भर हिमाच्छादित रहते हैं। विषम जलवायु एवं विस्तृत चरागाह होने के कारण यह क्षेत्र भेड़-पालन के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इस क्षेत्र में वनौषधियों एवं सुगन्ध-युक्त प्रजातियों का बाहुल्य है।

सम्पूर्ण उत्तराखण्ड विविधताओं से परिपूर्ण है—यह जीव जन्तुओं के वितरण और मानव की कार्य प्रणाली एवं व्यवहार में भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। निचली ऊँचाई के क्षेत्रों में चीता, हाथी, हिरन, खरगोश, वन-मुर्गी तथा जंगली सुअर आदि की अधिकता है; मध्य भाग में भालू, काकड़, घुरड़, चकोर, तीतर आदि की प्रचुर संख्या है, तथा ऊँचाई वाले क्षेत्रों पर कस्तूरी मृग एवं मृणाल (Himalayan pheasant) पाये जाते हैं। ये सभी वन्य जन्तु शनैः शनैः समाप्त होते जा रहे हैं, यहाँ तक कि कस्तूरी मृग एवं मृणाल को उन जन्तुओं की श्रेणी में रखा जाता है, जिनके लुप्त होने का खतरा है।

1982 की पशु गणना के आधार पर उत्तराखण्ड में कुल 65·4 लाख मवेशी, 31·5 लाख भैंस, 21·5 लाख भेड़ बकरियाँ, 9·9 लाख मुर्गियाँ तथा 4·1 लाख अन्य पशु-पक्षी हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण हिमालय क्षेत्र की कुल पशु संख्या का 28·8 प्रतिशत उत्तराखण्ड में विद्धमान है। (Paroda, R. K. 1982, IHED Report)। फसलों एवं पशु मिश्रित पद्धतियों के आधार पर इस क्षेत्र में मुख्यतया तीन प्रकार की कृषक श्रेणियाँ पाई जाती हैं:

(1) स्थायी कृषि एवं पशुधन मिश्रित पद्धति वाले स्थायी कृषक: सम्पूर्ण निचले एवं मध्य ऊँचाई के क्षेत्रों (<2700 मी०) के कृषक इस श्रेणी में आते हैं, जिनका मुख्य व्यवसाय कृषि है। इस क्षेत्र में दो वर्षों में केवल तीन फसलें प्राप्त की जाती हैं तथा मात्र 5–6 माह की अवधि के लिए कृषि भूमि को पोषण-तत्वों के संतुलन नियमन हेतु परती छोड़ा जाता है। पशुपालन मुख्य रूप से कृषि कार्यों के संचालन (पशुशक्ति एवं जैविक खाद) हेतु किया जाता है। प्रत्येक सामान्य कृषक का भूमि क्षेत्र

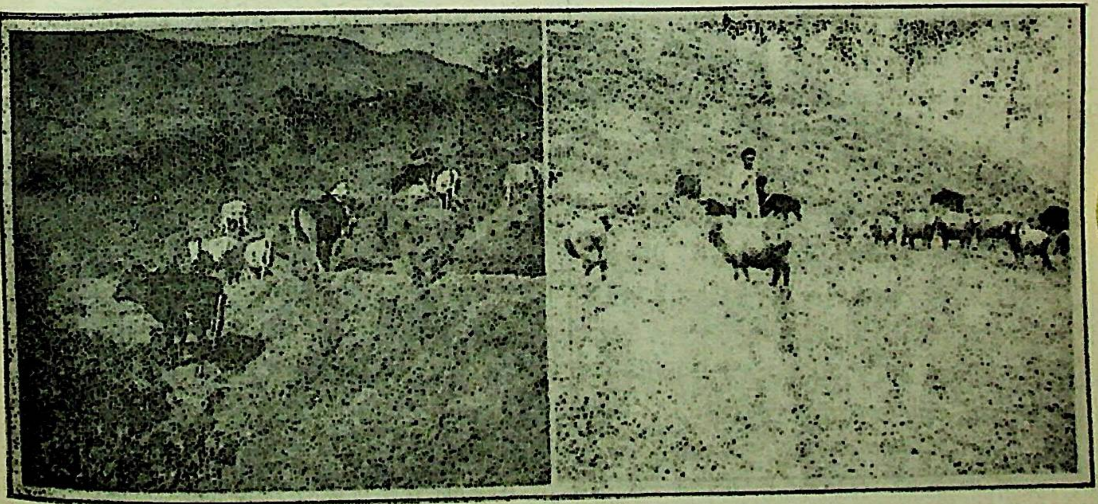

चित्र 1: निचले पर्वतीय क्षेत्र (बाएं) और अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्र (दाएं) के चरागाहों में चराई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लगभग 0·60 हैक्टर होता है। घाटी वाले क्षेत्रों में चावल (Oryza sativa) तथा शुष्क क्षेत्र में मडुवा (Eleusine coracana) मादिरा (Echinochloa frumentacea), मक्का (Zea mays) जैसे मोटे अनाज मुख्य फसलें हैं। प्रत्येक कृषक प्रायः 2 बैल, 5–7 गायें, 1–2 भैंसें एवं 25–30 भेड़-बकरियों एवं शिशु-पशुओं का पालन करता है। इसके अतिरिक्त कुछ विशिष्ट कृषक चरावाहों का कार्य भी करते हैं। चारा आवश्यकता का 60 प्रतिशत भाग चरागाहों व चारा-वृक्षों से प्राप्त किया जाता है तथा 40 प्रतिशत कृषि फसलों व खरपतवारों से। भैंसों के अतिरिक्त अन्य सभी पशुओं को चराने हेतु छोड़ा जाता है।

2. स्थाई कृषि एवं पशुधन मिश्रित पद्यति वाले अर्धचल कृषक : इस प्रकार के कृषक अधिक तथा अत्याधिक ऊँचाई वाले क्षेत्र (2700 से 4200 मी०) से सम्बन्धित हैं, जो वातावरण की प्रतिकूलता के कारण शीतकाल (नवम्बर से मार्च) में निचली ऊँचाई के क्षेत्रों एवं तराई-भाबर में लौट जाते हैं। झूठे अनाज (Pseudo-cereal) जैसे फाफर (Fagopyrum tataricum), रामदाना या चौलाई (Amaranthns spp.) तथा छिल्का रहित जौ (Hordeum himalayanse) इस क्षेत्र की मुख्य फसलें हैं। भूमि उपयोगिता के आधार पर कहीं-कहीं आलू, मटर एवं सरसों का उत्पादन भी किया जाता है। प्रत्येक कृषक 2–4 गाय, 2 बैल, 3–4 बछड़े-बछिया एवं 50—100 भेड़-बकरियां रखता है। ये कृषक कृषि की ही भाँति पशु-पालन को भी समान महत्ता देते हैं, एवं भेड़ बकरियों का व्यापार व ऊन का कुटीर उद्योग भी करते हैं। समीपवर्ती चरागाह ही प्रायः 95 प्रतिशत चारे की पूर्ति करते हैं। चारा वृक्षों का प्रायः पूर्णरुपेण अभाव है।

3. कृषि विहीन पूर्णतया चल पशुपालक : ये वास्तविक रूप में पूर्ण चल कृषक हैं जिनका मात्र व्यवसाय पशुपालन (भेड़ एवं बकरियाँ) ही है। ये प्रायः छोटे-छोटे समूहों में पशुओं को लेकर चरागाहों की खोज में स्थान-स्थान पर जाते रहते हैं (चित्र 1 ख)। हिमालय में 5000 मी. की ऊँचाई तक के चरागाहों में भी ये कृषक पशु चराई हेतु माह अगस्त एवं सितम्बर तक जाते रहते हैं तथा अक्टूबर अंत अथवा नवम्बर प्रारम्भ में पुनः निचली ऊँचाई के चरागाहों की ओर वापस लौटना प्रारम्भ करते हैं। गुज्जर तथा जाट समुदाय के चल पशुपालक भैंसों को भी चराई हेतु इन दुर्गम स्थानों पर ले जाते हैं। इस श्रेणी के कृषक भेड़-बकरियों द्वारा ऊँचाई के स्थानों हेतु सामान ढोने का कार्य भी करते हैं। इस श्रेणी के पशुपालक चारा उपज एवं चराई हेतु पूर्णतया प्राकृतिक चरागाहों पर ही निर्भर रहते हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि उत्तराखण्ड में पशुपालन मुख्य रूप से प्राकृतिक चरागाहों पर आश्रित है। इस क्षेत्र के सम्पूर्ण भौगोलिक भाग का मात्र 10.76 प्रतिशत भाग ही प्राकृतिक चरागाहों के अंतर्गत है। (Bhadula, S. K. 1982. SEDHH Report)। क्षेत्र में सिंचित भूमि के अभाव (सम्पूर्ण कृषि भूमि का 10 प्रतिशत मात्र) के फलस्वरूप पौष्टिक चारे जैसे बरसीम आदि का उत्पादन सम्भव न होने के कारण चरागाहों का पशुधन विकास में महत्त्व अग्रणीय हो जाता है, पुनः बढ़ती हुई पशु संख्या के फलस्वरूप आवश्यकतानुसार पौष्टिक एवं भरपेट चारा उपलब्ध नहीं हो पाता। कृषकों मुख्यतया स्त्रियों को 6–7 कि० मी० की दूरी तक जा-जा कर चारा संग्रह करना पड़ता है। कुमाऊँ क्षेत्र में प्रति पशु इकाई को चरने हेतु औसतन 0·32 से 0·60 हैक्टेयर चरागाह ही मिल पाता है तथा गढ़वाल क्षेत्र में प्रति इकाई को मात्र 0·20 हैक्टेयर, जबकि जीवन निर्वाह हेतु प्रति पशु इकाई कम से कम 0·50 हैक्टेयर चरागाह की आवश्यकता होती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। आदर्श स्थिति में प्रत्येक मवेशी को 15 हैक्टेयर चरागाह उपलब्ध होना चाहिए। अत: चरागाहों के व्यापक विकास हेतु परियोजनाओं का गठन एवं क्रियान्वयन आवश्यक है।

उत्पत्ति एवं अनुक्रम (Origin and Succession) : उत्तराखण्ड में "चरागाह" का अर्थ व्यापक है। प्राय: वह सभी क्षेत्र जो पशुओं को चराने एवं हरा तथा शुष्क चारा (कृषि उपज को छोड़कर) प्राप्ति हेतु प्रयुक्त होते हैं, चरागाह कहलाते हैं। अत: सम्पूर्ण वेकार भूमि waste land), वंजर भूमि (old Fallow land), बेनाप भूमि, ग्राम पंचायत भूमि, व्यक्तिगत चरागाह (घासनी), प्राकृतिक घास के मैदान (alpine meadows) तथा वन धरातल उपज (Forest undergrowth) सभी चराई एवं चारे हेतु प्रयोग किए जाते हैं।

सम्पूर्ण हिमालय क्षेत्र में चरागाह चरम सीमा (climax) वनस्पति नहीं है। निचली ऊँचाई पर स्थित चरागाहों की उत्पत्ति प्राय: वनों के कटने एवं कृषि भूमि को एक लम्बी अवधि तक परती छोड़ने के कारण हुई है तथा इन्हें चराई (grazing) एवं अग्नि (fire) द्वारा नियमित रखा जाता है। यदि किसी निचली व मध्य ऊँचाई के चरागाह से लम्बी अवधि (कम से कम 10 वर्ष तक चराई का कार्य न किया जाए व आग न लगाई जाए तो चरागाह में शनै: शनै: झाड़ी एवं वृक्षों के बीजांकुरों (seedlings) का समावेश होने लगता है तथा कालान्तर में यही क्षेत्र क्रमश: एक झाड़ी युक्त चारा क्षेत्र अथवा वन में परिणित हो जाएगा। डवडघावों एवं शंकरनारायण (1973, The Grasscovecr fo India) ने हिमालय के चरागाहों के उपक्रम (succession) का अध्ययन किया है जिसे क्रमवद्ध रूप में पृष्ठ 62 में प्रदर्शित किया गया है।

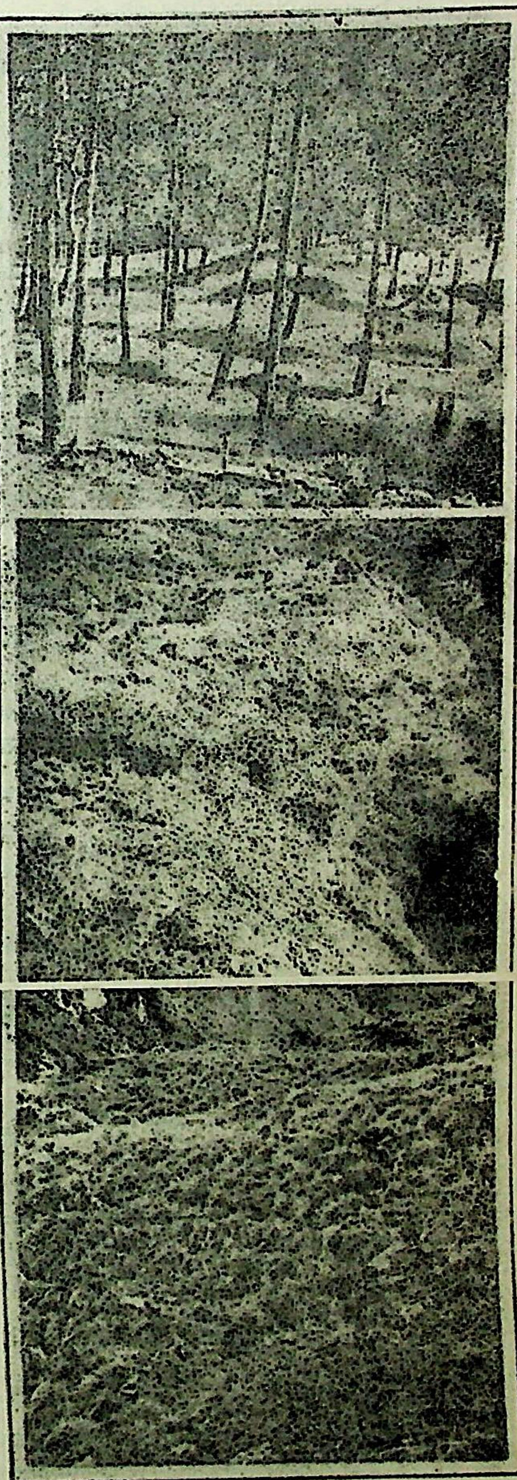

मध्य तथा निचले पर्वतीय क्षेत्रों में चीड़ वन धरातल (ऊपर) तथा बेकार भूमि (बीच में) चारा संसाधन क्षेत्र हैं जबकि ऊंचाई पर सर्वत्र बुग्याल (नीचे) हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकार के चरागाहों को सराय अवस्था (seral stage) में रखा जाता है। अत: स्पष्ट है कि हिमालय की निचली एवं मध्य ऊँचांई के चरागाह (<3000 मी०) बहुवर्षीय परती कृषि अथवा वन विहीन धरातल उपज एवं विकसित वनों के मध्य की अवस्था है।

ऊंचाई पर स्थित चरागाहों (>3000 मी०) का नियमन पूर्णतया जलवायु पर आधारित है। तीव्र वायु गति, ठंड एवं ऊँचाई के बर्फीले क्षेत्र होने के कारण इन स्थानों पर वृक्षों तथा झाड़ियों का विकास सम्भव नहीं हो पाता है, अत: शाकीय वनस्पति ही प्रमुख है। इस

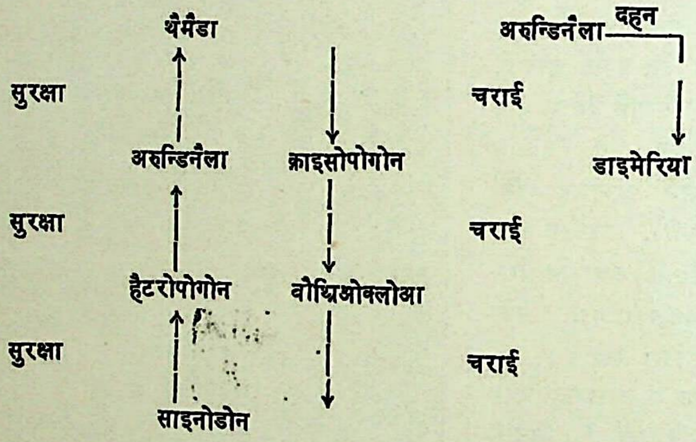

थैमैडा-अरुन्डिनैला चरागाह में अनुक्रम

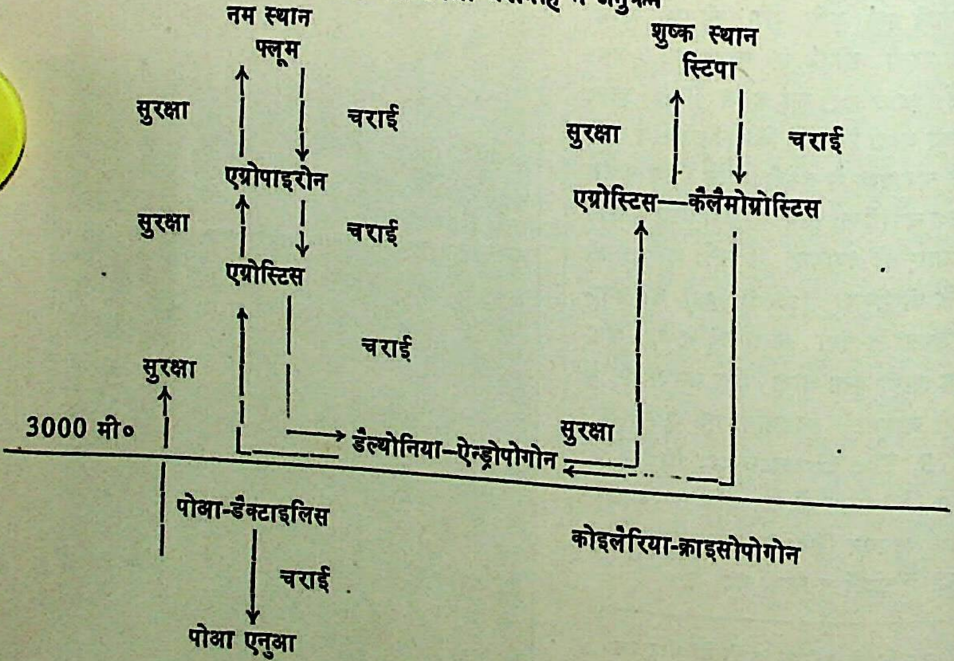

टम्परेट-अल्पाइन चरागाह में अनुक्रम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकार के चरागाहों को जल वायु चरम सीमा (climatic climax) वनस्पति की संज्ञा दी जाती है। इन चरागाहों में औषधीय एवं सुगंधक युक्त पौधे-प्रचुरता से उपलब्ध हैं। उत्तराखण्ड में इन चरागाहों को सामान्य रूप से 'बुग्याल' अथवा 'बुग्गी' कहा जाता है परन्तु कश्मीर में इन्हें 'मर्ग' शब्द से जाना जाता है। 'बुग्याल' शब्द की उत्पत्ति 'बुग' शब्द से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ स्थानीय जनजाति की भाषा में 'घास' है। अतः "बुग्याल" घास अथवा चारा प्रदान करने वाले ऊँचाई के क्षेत्र के प्राकृतिक चारा संसाधन हैं।

वानस्पतिक विवरण

चरागाहों की वानस्पतिक संरचना स्थान की मृदा, भूगर्भ बनावट, जलवायु, समुद्र सतह से ऊँचाई, ढलान तथा जैविक प्रभावों पर निर्भर करती हैं। सिंह एवं सक्सेना (1980 Proc. Nat. Sem. Resource Dev. & Mgmt). तथा मेलकनिया एवं टंडन (1985, Environ. Regene. in Hinalaya; Concepts and Strategies) द्वारा हिमालय के चरागाहों सम्बन्धी ज्ञान की संकलित विवेचना प्रकाशित की जा चुकी है। डवडघाओ एवं शंकरनारायन ने हिमालय के चरागाहों को क्रमशः थैमडा-अरुन्डिनैला एवं सम-शीतोष्ण चरागाहों में विभाजित किया है। समय-समय पर हुए वैज्ञानिक सर्वेक्षणों से ज्ञात होता है कि इन दोनों चरागाहों में अत्यधिक भिन्न वानस्पतिक समुदाय हैं, फलस्वरूप इन चरागाहों को अनेक द्वितीयक चरागाह समुदायों में वर्गीकृत किया गया है। इन सभी समुदायों का विवरण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) सम्पूर्ण पश्चिमी हिमालय

(1) अल्पाइन तथा सब अल्पाइन क्षेत्र

एग्रोस्टिस मुनरोआना-ट्राइसीटम एन्यूम

एग्रोस्टिस मुनरोआना-एग्रोस्टिस केनीना-हैलिक्टोट्राइकोन वायरैसैन्स

एग्रोस्टिस मुनरोआना-पोआ पैगोहिला-पोआ एनुआ

डैन्थोनिया जाक्वेमोन्टी-एग्रोस्टिस मुनरोआना-एग्रोस्टिस कैनीना

डैन्थोनिया जाक्वेमोन्टी (वैरायटी मानइर)-ट्राइसीटम स्पीकेटम

पक्सीनैला कश्मीरियाना-ट्राइसीटम स्पीकेटम

पोआ-पक्सीनैला

फ्लूम अल्पाइनम

एग्रोपाइरौन प्रजाति

डैस्चैम्पसिया सिसपीटीसा-देयेयुन्जिया

(2) समशीतोष्ण क्षेत्र

क्राइसोपोगोन ग्रिलस

कोर्वैसिया क्रिस्टेटा

पोआ प्रैटेन्सिस

थैमैडा एनाथैरा

(3) अधो समशीतोष्ण तथा उष्ण कटिबंध क्षेत्र

अरुन्डिनैला

हैटैरोपोगोन

सैकरस सीलिएरिस

(ख) कुमाऊं हिमालय

(1) 1000 मी० से नीचे

फ्रैगमाइटिस-सैकरम

(2) 1001–1500 मी० के मध्य

हैटरोपोगोन कन्टोरटस-क्राइसोपोगोन फलवस

सिम्बोपोगोन डिस्टान्स

क्राइसोपोगोन रौयलियानस

(3) 1501–2300 के मध्य

क्राइसोपोगोन फलवस

क्राइसोपोगोन रौयलियानस

(4) 2301–2900 मी० के मध्य

क्राइसोपोगोन रौयलियानस

क्रोबैसिया प्रजाति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(5) 2901–3500 मी० के मध्य
सिम्बोपोगोन डिस्टान्स
डेन्थोनिया कैकेमैरियाना

(6) 3500 मी० से अधिक
डैन्थोनिया कैकेमैरियाना

(ग) चकराता वन क्षेत्र

(1) अधो उष्ण कटिबन्ध क्षेत्र (1200 मीटर तक)
डाइकैन्थियम एनूलेटम-ब्रोथिओक्लोआ परटुसा

(2) समशीतोष्ण चीड़ क्षेत्र (900–1900 मीटर तक)
थैमैडा एनाथेरा-अरुन्डिनैला सिटोसा

(3) सबअल्पाइन देवदार क्षेत्र (1900–2700 मीटर)
थैमैडा एनाथेरा-अरुन्डिनैला सिटोसा एग्रोस्टिस

(4) अल्पाइन क्षेत्र (2700–3300 मीटर तक)
फैस्टुका-एग्रोपाइरोन

गढ़वाल क्षेत्र में विभिन्न ऊँचाइयों पर स्थित चरागाहों तथा वन समुदायों के बीच समानान्तरण (parallelism) पर किए गए एक अध्ययन (Gupta, R. K. 1974, Indian For.) के अनुसार अर्ध-पर्वतीय (sub-montane), पर्वतीय (montane) तथा तुंग-पर्वतीय (alti-montane) क्षेत्र के विभिन्न चरागाह-वर्ग निम्न प्रकार हैं :

(1) हैटेरोपोगोन कन्टोरटस वर्ग : इसके अन्तर्गत क्राइसोपोगोन फलवस-हैटेरोपोगोन, है० कन्टोरसस-यूलालिओप्सिस बाइनेटा तथा है० कन्टोप्स-साइनोडोन डैक्टीलोन नामक उप समुदाय आते हैं जो शुष्क तथा नम साल वन तथा शुष्क पतझड़ी वन क्षेत्र में 1600 मी० ऊँचाई से नीचे के क्षेत्रों में पाये जाते हैं।

(2) अरुन्डिनैला प्रजाति वर्ग : इसमें अरुन्डिनैला प्रजाति-क्राइसोपोगोन फलवस उप समुदाय आता है जो चीड़ वन क्षेत्र में पाया जाता है।

(3) थैमडा एनाथेरा वर्ग . थैं० एनाथेरा अरुन्डिनैला प्रजाति उप समुदाय इस श्रेणी में आता है तथा बांज (क्वैरकस ल्यूकोट्राइकोफोरा) के क्षेत्र में होता है।

(4) क्राइसोपोगीन ग्रिलस वर्ग : यह तिलोंज अथवा मोरु (क्वैरकस फ्लोरीबन्डा) के क्षेत्र में होता है जो क्रा० ग्रिलस-थैं० एनाथेरा उप समुदाय से जाना जाता है।

(5) पोआ प्रेटेन्सिस वर्ग : यह खरसू (क्वैरकस सेमैकार्पीफोलिया) वन क्षेत्र में होता है। इसमें पोआ प्रजातियों का बाहुल्य है।

(6) क्रोबैसिया क्रिस्टेटा वर्ग : यह फर एवं स्प्रूस वन क्षेत्रों में होता है, को० क्रिस्टेटा एवं क्राइसोपोगीन ग्रिलस इस उप समुदाय की मुख्य प्रजातियां हैं।

(7) डैन्थोनिया वर्ग : यह भोज (बिटुला यूटीलिस) वन क्षेत्र में होता है इसमें डैन्थोनिया एवं एग्रोस्टिस प्रजातियाँ मुख्य हैं।

(8) फ्लूम एवं एग्रोस्टिम वर्ग : इसके अन्तर्गत डैस्चैम्पसिया सिसपीटोसा, फ्लूम एलपीना, फ्लूम, एग्रोपाइरौन, एग्रोस्टिस-पीआ, फ्लूम, एग्रोपाइरोन, एग्रोस्टिस-हैलिक्टोट्राइकोन तथा एग्रोस्टिस-ट्राइसीटम उस समुदाय आते हैं जो सामान्य रूप से अल्पाइन चरागाह कहलाते हैं। ये प्राय: 3500 मी० ऊँचाई से ऊपरी क्षेत्रों में उपलब्ध हैं।

विभिन्न ऊंचाई पर स्थित चरागाहों की वानस्पतिक संरचना भिन्न-भिन्न है (मेलकनिया एवं टंडन 1985)। सामान्यतया 700 मी० ऊंचाई से निचले क्षेत्रों में जहां भूमि नम एवं दलदली है, अन्डोडोनेक्स, इम्परेटा (सीसूघास), नारंगा फोरफाइरोकोमा, फ्रैगमाइटिस करका, सैकरम स्पौन्टेनियम (कांस), थैमैडा अरुन्डुनेशिया तथा बैटीवैरिया जिजानिऔइडिस नामक उष्ण कटिबन्धीय घासें ही मुख्यतया पाई जाती हैं, जबकि 700 से 1950 मी० की ऊंचाई के क्षेत्रों में प्रायः शुष्क, उष्ण कटिबन्ध घासें—यथा एप्लुडा (छड़ी घास), अरुन्डिनैला, क्राइसोपोगोन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(गोड़िया घास), सिम्बोपोगोन, यूलालिओप्सिस (भावर घास), एवं पैनीसिटम (विमलसिया) प्रजातियों का बाहुल्य है। 1950 से 3000 मी० के चरागाहों में समशीतोष्ण घासों जैसे एग्रोपाइरोन सेमीकोस्टेटम, एग्रोस्टिस प्रजातियां, फ्लूम प्रजातियां, डैक्टाइलिस ग्लोमैरेटा (कौक्स-फुट घास) डैन्थोनिया कैकमैरियाना, हैलिक्टोट्राइकोन सेमीकौस्टेटम एवं पोआ प्रजातियों की अधिकता है तथा सब-एल्पाइन चरागाहों में केवल सम-शीतोष्ण प्रजातियाँ (एग्रोस्टिस, डैक्टाइलिस, डैन्थोनिया, पोआ, फ्लूम एवं क्रोब्रैसिया) ही प्रचुरता से उपलब्ध हैं।

"बुग्याल" नामक अल्पाइन चरागाहों को क्षेत्रीय कृषकों द्वारा निम्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है।

(क) दुग अथवा दुध बुग्याल : यह प्रायः छोटे-छोटे दूध की भाँति लेटेक्स (latex) वाले शाकीय पौधों से युक्त होता है तथा शुष्क ढलान पर 3000 से 4000 मी० की ऊंचाई पर पाया जाता है। दुग बुग (Euphorbia stracheyii), इस समुदाय की मुख्य चारा प्रजाति है।

(ख) बस बुग्याल : इस प्रकार के चरागाह नम जलवायु के ढलानों में 3000 से 3200 मीटर की ऊंचाई पर पाए जाते हैं। बस बुग (Sassurea graminicola) इस चरागाह की प्रमुख प्रजाति है।

(ग) मोट् बुग्याल : प्रायः वह चरागाह जो मोट् बुग (Danthonia cachemyriana) तथा फ्लूम (Phleum spp.) से आच्छादित रहते हैं, मोट् बुग्याल कहलाते हैं। यह प्रायः 3200 मी० की ऊंचाई पर अधिकता से पाए जाते हैं।

(घ) धनिया बुग्याल : इस प्रकार के चरागाह में धनिया बुग (Cortia lindleyi) नामक प्रजाति प्रमुख है। यह चरागाह श्रेणी कुमायूं क्षेत्र की ब्यांस घाटी (मालपा से गुंजी तथा कुट्टी तक) में छायादार एवं दलदली नम स्थानों में 2700 मी० से अधिक ऊंचाई पर उपलब्ध है।

(ङ) घत्ती बुग्याल : यह चरागाह घत्ती बुग (Kobretia sp.) से आच्छादित रहते हैं। यह ऊंचाई के चरागाहों की एक सामान्य सैज (sedge) है जो प्रायः 3600 से 4500 मी० की ऊंचाई पर अधिकता से उपलब्ध है।

ऊंचाई वाले क्षेत्रों के चरागाहों (बुग्याल) का यह वर्गीकरण पूर्णतया क्षेत्रीय कृषकों (चरवाहों) का स्वतः निर्मित है जो प्रमुख चारा प्रजातियों की उपयोगिता पर आधारित है। यह अनुमान है कि दुध बुग तथा धनिया बुग का पशुओं की दुग्ध उत्पादन क्षमता पर सीधा प्रभाव है जबकि बस बुग दूध में वसा की मात्रा को नियन्त्रित करता है। अन्य प्रकार के बुग सामान्य उदरपूर्ति कारक प्रजातियों की श्रेणी में आते हैं। इसके अतिरिक्त एक अन्य घास "तिलिया" (Chrysopogon sp.) जो कुमायूं क्षेत्र की जोहार घाटी (मुनस्यारी से मिलम तक) में प्रायः 2000 से 2800 मीटर की ऊंचाई के क्षेत्र में उपलब्ध है, चारा हेतु अतिउपयुक्त है। कृषकों (चरवाहों) का विचार है कि इस घास को चरने वाली भेड़ों का ऊन काफी मुलायम एवं विशिष्ट होता है। उत्तराखण्ड के चरागाहों की प्रजातियों तथा पशुधन के मध्य यह अनुमानित सम्बन्ध वैज्ञानिकों हेतु एक शोध का विषय है जो अभी तक भी वैज्ञानिक रूप से सिद्ध नहीं किया गया है।

चरागाह वनस्पति : सांख्यिकीय विवरण

उत्तराखण्ड के चरागाहों की वनस्पति की सांख्यिकीय विवेचना (मेलकनिया एवं टंडन, 1985) से ज्ञात होता है कि दलहनी शाकीय प्रजातियों का प्रतिशत मात्र 7.58 ही है। 1000 मी० से निचले क्षेत्रों के चरागाहों में घास प्रजातियों का बाहुल्य (42 प्रतिशत) है, जबकि अन्य शाकीय प्रजातियों का प्रतिशत समुद्र सतह से ऊंचाई की वृद्धि के साथ-साथ बढ़ता जाता है तथा सर्वाधिक ऊंचाई (alpine) क्षेत्रों में (>3500 मी०) सर्वाधिक (91.7 प्रतिशत) हो जाता है। यद्यपि वर्ष के विभिन्न मौसमों में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शाकीय प्रजातियों की प्रतिशत मात्रा का विवरण उपलब्ध नहीं है, परन्तु वर्षा काल में ही (जुलाई से सितम्बर तक) शाकीय प्रजातियों की संख्या अन्य मौसमों की तुलना में सर्वाधिक होती है। विभिन्न मौसमों में शाकीय प्रजातियों की संख्या को वर्षा > वसन्त > शीत > ग्रीष्म क्रम में रखा जा सकता है। (मेलकनिया, व्यक्तिगत सर्वेक्षण), अतः उत्तराखण्ड के चरागाह पूर्णतया मानसून पर आधारित हैं।

जैविक वर्णक्रम

सारणी 1 में उत्तराखण्ड के चरागाहों का जैविक वर्णक्रम (biological spectrum) दिया गया है। भीमताल एवं अल्मोड़ा के चरागाहों में 'हेमीक्रिप्टोफाइट' वर्णक्रम वर्ग का बाहुल्य है, चीड़ वन धरातल वनस्पति, नैनीताल में "थीरोफाइट" सर्वाधिक (51 प्रतिशत) है तथा देहरादून के चरागाहों में "हेमीक्रिप्टोफाइट एवं थीरोफाइट" समान मात्रा (44 प्रतिशत) में हैं। वर्णक्रम के वर्गों में यह विभिन्नता भिन्न-भिन्न जलवायु के कारण है। अतः सम्मिलित रूप से इन चरागाहों की जलवायु को "थीरोहेमीक्रिप्टो-फिटिक" कहा जा सकता है।

पादप-सामाजिकी एवं शुष्क चारा उपज

उत्तराखण्ड में चरागाहों की पौध ऊंचाई (plant height) 65 से 125 से. मी. है, जबकि पौध घनत्व (plant density) 315 से 2315 पौध प्रति वर्ग मीटर है। पृ. 67 पर दिए चित्रों से निम्न तथ्य स्पष्ट हैं :

(1) निचली ऊंचाई के क्षेत्रों के चरागाहों की पौध ऊंचाई अधिक ऊंचाई के क्षेत्रों की चरागाहों की पौध ऊंचाई की अपेक्षा अधिक होती है, जबकि पौध घनत्व अधिक ऊंचाई पर स्थित चरागाहों में सर्वाधिक है। अतः अधिक ऊंचाई पर स्थित चरागाहों की वनस्पति अधिक

सारणी 1 : उत्तराखण्ड के चरागाहों का जैविक वर्णक्रम

चरागाह समुदाय/स्थान	फैनैरोफाइट (%)	कैमीफाइट (%)	हेमीक्रिप्टोफाइट (%)	जियोफाइट (%)	थीरोफाइट (%)
विश्व सामान्य	46	9	26	6	13
चीड़ वन धरातल की वनस्पति नैनीताल	17	6	25	2	51
चरागाह भीमताल	0	10	43	14	33
चरागाह अल्मोड़ा	15	3	41	6	35
चरागाह देहरादून	0	7	44	4	44

स्रोत साभार : Saxena, A. K. et al. 1982. Vegetatio; Raunkiaer, C. 1933, The life forms of plants and statistical plant geography; Srivastava; M. M. et al. 1981, Indian J. Forestry.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

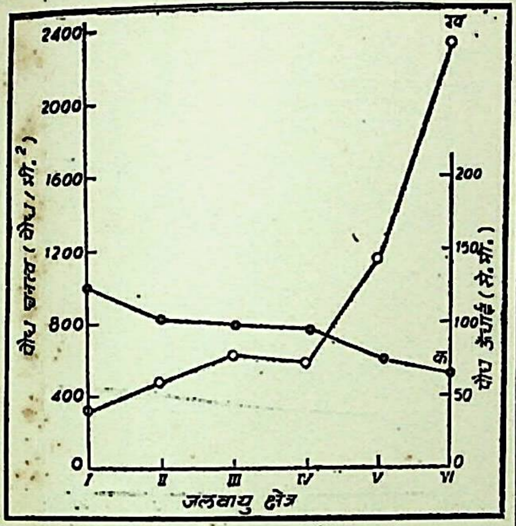

पर्वतीय चरागाहों की सामाजिकी

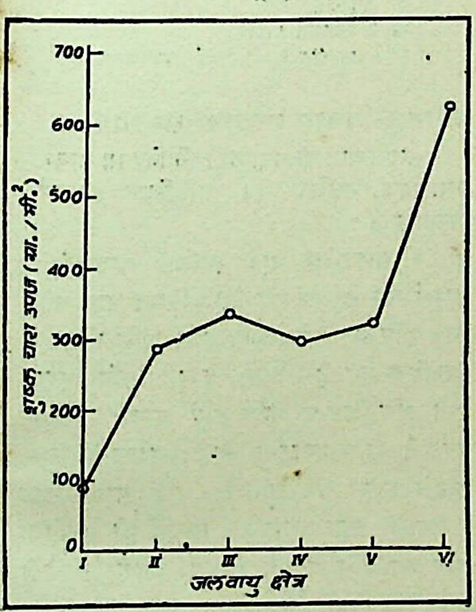

पर्वतीय चरागाहों की शुष्क चारा उपज
[जलवायु क्षेत्र I—
<1000 मी; II—1001
—1500 मी; III—1501—
2300 मी; IV—2301—
2900 मी; V—2901—
3500 मी; VII-—>3500मी]

घनी एवं कम ऊंची होती है। यह तथ्य जैविक दबाव, भूमि संरचना एवं वानस्पतिक रचना पर निर्भर करता है।

(2) सर्वाधिक शुष्क चारा उपज (624.2 ग्रा. प्रति वर्ग मी.) ऊंचाई पर स्थित चरागाहों (>3500 मी.) की है, यह चरागाह डैन्थोनिया कैकैमैरियाना प्रजाति से आच्छादित था। समुद्र सतह से 2300 मी. की ऊंचाई तक के चरागाहों में यह देखा गया है कि ऊंचाई के साथ-साथ शुष्क चारा उपज बढ़ती जाती है, तत्पश्चात् 1301 से 2900 मी. के क्षेत्रों के चरागाहों की शुष्क चारा उपज घटकर 296.4 ग्रा. प्रति वर्ग मी. ही रह जाती है जबकि 1901 मी. से अधिक ऊंचाई पर स्थिर चरागाहों की उपज पुन: बढ़ जाती है, इसका मुख्य कारण 2301—2900 मी. के क्षेत्र में स्थाई एवं पूर्ण चल दोनों प्रकार के चरवाहों के पशुओं का अत्यधिक चराई दबाव है। शुष्क चारा उपज, पौध घनत्व के सदैव अनुक्रमानुपाती पाई गई है।

सम्पूर्ण हिमालय क्षेत्र के चरागाहों के अध्ययन (Melkania, N. P. and Tandon, J. P. 1984. **Proc. Nat. Sem. Env.**) से ज्ञात होता है कि उत्तराखण्ड के चरागाह, मुख्यतया ऊंचाई के क्षेत्रों के चरागाहों की शुष्क चारा उपज हिमालय प्रदेश एवं जम्मू तथा कश्मीर के चरागाहों की तुलना में क्रमश: 1.09 तथा 2.80 गुना अधिक है।

चारा घासों में पोषक तत्वों का अध्ययन

सारणी 2 में उत्तराखण्ड के विभिन्न ऊंचाई पर स्थित चरागाहों की मुख्य घास प्रजातियों की रासायनिक संरचना दी गई है। स्पष्ट है कि ऊंचाई पर स्थित चरागाहों की घास प्रजातियों में अपरिष्कृत (क्रूड) प्रोटीन की प्रतिशत मात्रा अन्य चरागाहों की घास प्रजातियों की तुलना में अधिक है। जबकि अपरिष्कृत फाइबर (रेशा) की मात्रा ठीक इसके विपरीत है। कैल्सियम की प्रतिशत मात्रा फॉस्फोरस की मात्रा के अनुक्रमानु-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पाती है। इन घास प्राजातियों की क्रूड प्रोटीन की मात्रा की तुलना विदेशी चारा घासों जैसे क्यूक्यू (पेननीसोटम क्लैन्डैस्टाइनम) आदि से करने पर ज्ञात होता है कि ये देशज चारा प्रजातियां (मुख्यतया ऊंचाई के चरागाहों की प्रजातियाँ) भी इस सन्दर्भ में विदेशी चारा प्रचातियों के समान ही उपयोगी हैं। भिन्न-भिन्न पोषक तत्वों की सर्वाधिक मात्रा के अनुसार निम्न घास प्रजातियां सर्वोत्तम हैं :

घास प्रजातियां	पोषक तत्व व % मात्रा	मात्रा (%)
अरुन्डो डोनैक्स	शुष्क पदार्थ	75.3
साइनोडोन डैक्टीलोन	अपरिष्कृत प्रोटीन	14.9
अरुन्डिनला नैपालेन्सिस	अपरिष्कृत रेशा	36.0
ब्रोथीओक्लोआ परदूरा	कैल्सियम	1.1
साइनोड़ोन डैक्टीलोन तथा डैक्टाइलिस ग्लोमैरेटा	फास्फेट	0.0

चरागाहों के मिश्रित चारे की रासायनिक संरचना से स्पष्ट है कि अपरिष्कृत प्रोटीन की मात्रा उत्तराखण्ड के चरागाहों के चारे में 4 प्रतिशत (>1000 मी.) से 9.7 प्रतिशत (>3500 मी.) तक है, जबकि अपरिष्कृत रेशे की प्रतिशत मात्रा 1501 से 2300 मी. की ऊंचाई पर स्थित चरागाहों के चारे में सर्वाधिक (35.8 प्रतिशत) है। ऊंचाई पर स्थित चरागाहों के चारे में अपरिष्कृत प्रोटीन की मात्रा अधिक होने का मुख्य कारण इन चरागाहों में समशीतोष्ण घास प्रजातियों का बाहुल्य है। चारा प्रजातियों में अपरिष्कृत प्रोटीन अधिक मात्रा में होने के कारण इन चरागाहों के चारे की पौष्टिकता बढ़ जाती है।

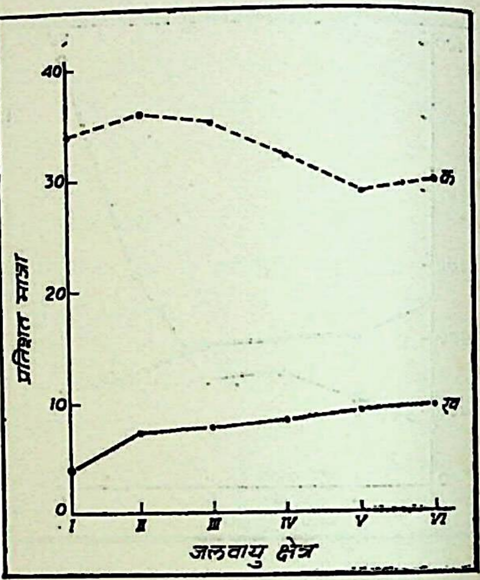

चरागाहों के चारे की रासायनिक संरचना;
क. अपरिष्कृत रेशा,
ख. अपरिष्कृत प्रोटीन
[जलवायु क्षेत्र I—VI पूर्व विवरणानुसार]

चरागाह-विकास सम्बन्धी समस्याएं

उत्तराखण्ड के चरागाहों की विकास सम्बन्धी सामाजिक, आर्थिक एवं पारिस्थित समस्याएँ निम्नवत हैं :

1. सामाजिक एवं आर्थिक समस्याएं : सम्पूर्ण क्षेत्र का लगभग 90 प्रतिशत भाग असिंचित कृषि योग्य हैं। प्रति कृषक भूमि की मात्रा अत्यधिक कम है। प्राय: बेकार भूमि अथवा ऐसी भूमि जिस पर कृषि कार्य सम्भव नहीं हो पाता है, ही चरागाह या चारा उत्पादन हेतु निजी रूप से प्रयोग की जाती है। इन्हें सामान्यतया "घासनी" कहा जाता है। सिंचाई की असुविधा तथा कम भूमि क्षेत्र के कारण कृषक उपयोगी चारा प्रजातियों जैसे बरसीम आदि का उत्पादन करने में असमर्थ हैं। पुन: जनसंख्या की वृद्धि एवं निरन्तर पारिवारिक विभाजन से कृषि योग्य भूमि तथा चरागाह एवं वनों का क्षेत्र कम होता जा रहा है। अत: कृषि क्षेत्र एवं चरागाह एवं अन्य क्षेत्र का अनुपात एक ऐसी दिशा में अग्रसर हो रहा है कि वर्तमान समय में उपलब्ध

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सारणी 2 : उत्तराखण्ड के चरागाहों की प्रमुख देशज चारा घासों की रासायनिक संरचना

चारा घास	जलवायु क्षेत्र	जल मात्रा (%)	शुष्क पदार्थ (%)	क्रूड प्रोटीन (%)	क्रूड फाइवर (%)	कैल्सियम (%)	फॉस्फोरस (%)
अप्लूडा म्यूटिका	अधोउष्ण कटिबन्ध	31.2	68.9	8.3	30.4	0.5	0.4
अरिस्टिडा साइनैन्था	,,	33.3	66.8	5.6	31.6	0.3	0.2
अरुन्डिनैला बेंगालेन्सिस	,,	36.5	63.5	8.2	33.8	0.3	0.2
अरुन्डिनैला नैपालेन्सिस	,,	61.1	39.0	7.2	36.0	0.4	0.2
अरुन्डो डोनैक्स	,,	24.7	75.3	8.9	26.3	0.4	0.1
बौथ्रीओक्लोआ परट्सा	,,	58.8	41.2	5.0	35.6	0.6	0.3
क्रोइसोपोगोन फलवस	अधेउष्ण कटिबन्ध तथा समशीतोष्ण	42.1	57.9	7.1	30.9	1.1	0.3
साइनोडोन डेक्टोलोन	,,	52.5	47.5	14.9	26,7	0.7	0.6
डैक्टाइलिस ग्लोमेरेटा	समशीतोष्ण एवं अल्पाइन	28.7	71.4	11.3	24.9	1.0	0.6
डैन्थोनिया कैकेमेरियाना	अल्पाइन	75.8	24.2	10.5	27.3	0.7	0.4
डेस्चैम्पसिया सैस्पीटोसा	,,	65.2	34.8	10.6	27.9	0.6	0.4
देयेयुक्जिया स्कैब्रेसेन्स	,,	76.6	23.4	12.2	25.8	0.7	0.3
हैटेरोपोगोन कन्टोरटस	अधो-उष्ण कटिबन्ध अल्पाइन	44.1	55.9	7.1	34.6	0.3	0,4
कोब्रेसिया क्रिस्टेटा	,,	31.2	68 8	6.5	32.0	0.6	0.2
मिलियम इफ्यूजम	,,	29.8	70.2	4.9	30.7	0.5	0.4
पोआ प्रेटेन्सिस	,,	36.1	64.0	11.2	29.4	0.7	0.2
फ्लूम प्रेटेन्स	,,	51.5	48.5	13.5	20.5	0.8	0.2
थेमेडा एनाथेरा	समशीतोष्ण अल्पाइन	44.9	55.1	5.1	32.2	0.3	0.1
क्राइपोगोन,फिलीफोरमिस	,,	28.5	71.5	4.7	33.5	0.6	0.3

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चरागाह कृषि कार्यों हेतु आवश्यक पशुधन के पोषण में असफल हो जायेंगे।

2. चरागाह नियन्त्रण संगठन का अभाव : प्राचीन काल से ही पर्वतीय कृषकों द्वारा चारे की उपज को कर रहित माना गया है। चरागाहों तथा वन धरातल की उपज प्राप्ति का स्वतन्त्र अधिकार भी क्षेत्रवासियों को प्रदान हैं। पंचायती वनों एवं ग्राम सभा भूमि की स्थिति अत्यन्त गम्भीर हो चुकी है, इन क्षेत्रों के सम्पूर्ण ग्राम-वासियों की साझेदारी (common land) होने के कारण इन क्षेत्रों की उपज का प्रयोग यद्यपि सभी कृषक परिवार करते हैं, परन्तु इन क्षेत्रों की सुरक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है।

3. क्षीण भूमि क्षेत्र : अत्यधिक ढलान, छिछली, शुष्क तथा पथरीली भूमि, अत्यधिक भूमि अपरदन तथा क्षीण उत्पादन क्षमता आदि चरागाहों के विकास की प्रमुख भूमि सम्बन्धी समस्यायें हैं। वनों के अत्यधिक अंधाधुंध कटान तथा पतन से प्राकृतिक भू-संरक्षकों (वृक्ष) का निरन्तर पतन हो रहा है। इसके अतिरिक्त आकस्मिक अग्नि प्रज्जवलन से भी चरागाहों की भूमि में निहित उपयोगी जीव-जन्तुओं, जो पौष्टिक तत्वों के चक्र के नियमन हेतु आवश्यक है, की उपस्थिति एवं संख्या पर कुप्रभाव पड़ता है। परिणामस्वरूप चरागाह भूमि की भौतिक एवं रासायनिक संरचना पर अनुपयोगी प्रभाव पड़ रहा है।

4. वृहत् पशु संख्या : पशु गणना के आधार पर वर्ष 1966 में सम्पूर्ण हिमालय में पशु संख्या 33, 05, 033: 3 मवेशी थी, जो वर्ष 1978 में 33,76,868.8 मवेशी हो चुकी है। इस प्रकार पशु संख्या 0.18 प्रतिशत प्रतिवर्ष की घातीय वृद्धि दर से बढ़ रही हैं, जिस कारण चरागाहों पर चराई का दवाव निरन्तर वृद्धि पर है।

5. चराई दबाव : प्राचीन काल से ही पशुओं को चारा खिलाने की सर्वोत्तम विधि चरागाह में चराई करवाना ही मानी गयी है। इससे निम्न मुख्य कारण है :

(क) यह एक प्राकृतिक विधि है जिसमें श्रम एवं समय (चारा संग्रह हेतु) दोनों की बचत होती है।

(ख) चराई करने वाले पशु गठे हुए शरीर वाले एवं बलशाली होते हैं। पशुओं की चराई करते रहने से नियमित व्यायाम मिलता है, अत: वे फुर्तीले बने रहते हैं, फलस्वरूप घर पर बाँध, कर चारा खिलाये जाने वाले पशु की तुलना में वृद्धि भी समानुपात में होती है।

(ग) चराई करने से पशुओं को पूर्णरूप से ताजा एवं हरा चारा प्राप्त होता है फलत: उन्हें चारे में निहित सभी पोषक तत्वों की ज्यों की त्यों प्राप्ति हो जाती है।

(घ) प्राय: सभी कृषकों के पास पशुओं को बाँधकर चारा खिलाने हेतु स्थान उपलब्ध नहीं होता है। चरागाह में पशुओं को चराने से यह समस्या भी सुलझ जाती है।

निरन्तर चराई होने से चरागाहों में पौष्टिक चारा प्रजातियों का पतन हो रहा है तथा भूमि कटाव भी बढ़ता जा रहा है। कुमाऊँ क्षेत्र के अत्यधिक चराई दबाव वाले चरागाहों की उपज पूर्णतया सुरक्षित चरागाहों की अपेक्षा 4.5 गुना कम है (Melkania N. P. and J. P. Tandon. 1983. **Forage Res.**)। यद्यपि चरागाहों की चराई क्षमता सम्बन्धी आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं परन्तु सम्भावित आँकड़ों से ज्ञात होता है कि नैनीताल, अल्मोड़ा, पिथौरागढ़, चमोली तथा चकरौता के चरागाहों की चराई क्षमता पर 4.7, 4.5, 2.5, 2.4 तथा 4.0 गुना अधिक चराई दबाव है (मेलकनिया एवं टंडन 1984)। फलस्वरूप चरागाहों का क्षेत्र धीरे-धीरे घटता जा रहा है। कुमाऊँ में 750 मी. की ऊँचाई तक केवल 16.8 प्रतिशत तथा गढ़वाल में 1050 मी. की ऊँचाई तक 24 प्रतिशत चरागाह ही शेष रह गये हैं (Valdiya, K. S. 1983. **Pahar**)। चारे का वार्षिक उत्पादन मात्र 14.8 प्रतिशत ही है परन्तु उपभोग 19.8

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सारणी 3 : उत्तराखण्ड के चरागाहों में चारे के लिए उपयोगी तथा अनुपयोगी वनस्पतियों की स्थिति ।

स्थान*	प्रजाति संख्या			पौध घनत्व (पौध प्रति वर्ग मी०)			शुष्क चारा उपज (ग्रा० प्रति वर्ग मी०)		
	उपयोगी	अनुपयोगी	कुल	उपयोगी	अनुपयोगी	कुल	उपयोगी	अनुपयोगी	कुल
हवालबाग (1400)	21	12	33	948	101	1049	396	28	424
कटारमल (1450)	17	9	26	219	27	246	210	14	224
माल (1450)	18	8	26	338	50	388	123	7	130
करबला (1475)	17	8	25	448	40	488	253	9	262
खत्याड़ी (1500)	10	5	15	860	64	924	330	17	347
स्यालीधार (1525)	12	5	17	662	39	701	277	14	291
सिटोली (1550)	20	6	26	481	51	532	236	40	276
पाताल देवी (1550)	7	5	12	47	273	320	67	104	171
बलढ़ौटी (1650)	15	8	23	342	84	426	118	31	149

*कोष्ठ में समुद्रतल से ऊँचाई (मीटर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रतिशत, इस प्रकार प्रतिवर्ष चरागाहों एवं वनों की उत्पादन क्षमता 5 प्रतिशत घट रही है। यदि ह्रास की यह प्रवृति बनी रही तो सन् 2031 में ऐसी स्थिति आ जाएगी कि इन प्राकृतिक संसाधनों का पुनरुद्‌भवन (regeneration) नहीं हो सकेगा (Shah, S.L, 1982. Indian J. Agric. Econ.)।

6. अनुपयोगी चारा प्रजातियों की उपस्थिति : सारणी में 3 उत्तराखण्ड के कुछ स्थानों के चरागाहों में चारोपयोगी तथा अनुपयोगी शाकीय प्रजातियों का प्रतिशत, घनत्व तथा चरागाह की उपज में योगदान का आंशिक विश्लेषण स्पष्ट है। अनुपयोगी चारा प्रजातियों का चरागाह की उपज में 39·18 प्रतिशत से 93.40 प्रतिशत योगदान है। अनुपयोगी चारा प्रजातियों का बाहुल्य प्राय: अधिक चराई दबाव वाले चरागाहों में ही होता है। इस प्रकार की प्रजातियों की अधिकता होने से चारोपयोगी प्रजातियों का महत्व भी कम हो जाता है फलत: पौष्टिक चारा उपलब्ध नहीं हो पाता है।

7. दलहनी चारा प्रजातियों की कमी : चरागाहों में प्राय: चारोपयोगी दलहनी प्रजातियों की अत्यन्त कमी है। शुष्क चारा उपज के आधार पर दलहनी प्रजातियों का चरागाह की सम्पूर्ण चारा उपज का मात्र 0.12 प्रतिशत (1501–2300 मी० के मध्य) से 1.0 प्रतिशत (< 1500 मी०) योगदान है (मेलकनिया एवं टंडन 1984)। इसके अतिरिक्त इन देशज दलहनी चारा प्रजातियों की पौष्टिकता भी अत्यन्त कम है (Gupta, R. K. 1980. Studies in Himalayan Ecology and Development Strategies)।

8. उपयुक्त चारा भंडारण प्रणाली का अभाव : पर्वतीय क्षेत्रों में चारा प्राय: माह सितम्बर से अक्टूबर तक काटकर सूर्य की ऊष्मीय ऊर्जा द्वारा सुखाकर खुले स्थानों में ही वृक्ष अथवा स्तम्भ से लगाकर संग्रहित किया जाता है। अक्टूबर प्रारम्भ में काटा गया चारा पोषक तत्वों की दृष्टि से कम उपयोगी पाया गया है (मेलकनिया एवं टंडन 1984)। चारे को खुला रखने पर भी कालान्तर में चारे की पौष्टिकता कम हो जाती है। महा अगस्त में जब चारे में पोषण तत्व भरपूर मात्रा में होते हैं, निरन्तर वर्षा एवं कृषि-कार्यों की अधिकतावश चारा कटान एवं संग्रहण सम्भव नहीं हो पाता है। पुन: शाकीय हरे चारे को यथावस्था में शीतकाल हेतु सुरक्षित रखने की उचित भंडारण तकनीकियों (silage) भी उपलब्ध नहीं है।

9. चरागाह एवं चारा शोध एवं विकास संस्थानों का अभाव : उत्तराखण्ड के चरागाहों (वन धरातलों एवं सिविल सोयम तथा पंचायत भूमि) का शासकीय रूप से नियन्त्रण, शोध एवं प्रशासन क्रमश: वन विभाग एवं राजस्व विभाग द्वारा किया जाता है। वन विभाग के शोध एवं विकास कार्यों का प्रमुख उद्देश्य वनों का विकास होता है, जिस कारण चरागाहों तथा वन-धरातलों का चारा संसाधन की दृष्टि से प्रबन्ध नहीं हो पाता है। भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद के शोध संस्थान भी चरागाह तथा चारे संबंधी शोध कार्य करते हैं परन्तु इन संस्थानों में चरागाह एवं चारा विकास एवं प्रबन्ध संबंधी विषयों को द्वितीयक स्थान प्राप्त हो पाता है। इसके अतिरिक्त समय-समय पर लघु परियोजनाओं जैसे भारतीय-जर्मन कृषि विकास परियोजना (IGA DA) द्वारा भी चारा तथा चरागाह सम्बन्धी कार्य किए गए हैं जो मुख्यतया विदेशी चारा प्रजातियों का हिमालय क्षेत्र में रोपण एवं वृद्धि तथा उपजाऊ भूमि हेतु चारों से सम्बन्धित रहे हैं। प्राकृतिक चरागाहों की देशज चारोपयोगी प्रजातियों पर अभी तक विस्तार-पूर्वक विचार नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त इन परियोजनाओं के पूर्ण होते-होते ही चरागाह विकास के कार्य की दर नगण्य हो जाती है।

स्पष्ट है कि चरागाह एवं वन्य चारा विकास एवं प्रबन्ध विषयों पर कृषि एवं वनों की भाँति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गम्भीरता-पूर्वक अध्ययन एवं प्रसार कार्य नहीं किया जा सका है। चूंकि चरागाह की वनस्पतियों की संरचना एवं समस्यायें कृषि एवं वनों से पूर्णतया भिन्न हैं, अतः इन विषयों पर शोध, विकास एवं प्रसार कार्यों हेतु हिमालय क्षेत्र में चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान की अति आवश्यकता है।

चरागाह प्रबन्ध

चरागाहों की उपलब्धता एवं कृषि पशुधन पद्धतियों को दृष्टिगत रखते हुए यह कहना असगत न होगा कि ऊँचाई पर स्थित चरागाहों का प्रबंध एवं विकास भेड़ पालन हेतु तथा निचली व मध्य ऊँचाई पर स्थित चरागाहों का प्रवन्ध एवं विकास मवेशी चराई तथा शुष्क चारा उत्पादन हेतु किया जाना आवश्यक है। ऊँचाई के क्षेत्रों के चरागाहों का विकास चराई दबाव कम करके एवं कुछ अन्य चारोपयोगी प्रजातियों जैसे फ्लूम प्रजातियाँ, पोआ प्रजातियाँ एवं डैक्टाइलिस प्रजातियाँ, आदि के समावेश से ही संभव है। इन चरागाहों हेतु चक्रिय चराई (rotational grazing) उपयोगी है। निचले एवं मध्य ऊँचाई के चरागाहों के प्रबन्ध एवं विकास हेतु निम्न वैज्ञानिक तकनीकियों को अपनाया जा सकता है :

1. सुरक्षा एवं संरक्षण : निरन्तर चराई से चरागाहों की सुरक्षा करना महत्वपूर्ण कार्य है। कुमायूँ क्षेत्र के चरागाहों में किए गए प्रयोगों से स्पष्ट होता है कि केवल प्रभावशाली घेर-बाड़ द्वारा ही चरागाह की शुष्क चारा उपज मात्र 5 वर्षों में ही 45 ग्रा. प्रति वर्ग मी. से 155 ग्रा. प्रतिवर्ग मी० अथवा 3.3 गुना बढ़ाया जा सकता है (मेलकनिया एवं टंडन 1985)। चूंकि 5 वर्षों से अधिक समय बाद चारोपयोगी शाकीय प्रजातियों जैसे क्राइसोपोगोन फलवस (घोड़ियाँ) आदि की मात्रा अन्य प्रजातियों की तुलना में कम होने लगती है, अतएव 5 वर्षों की पूर्ण प्रभावशाली सुरक्षा एक अविकसित चरागाह

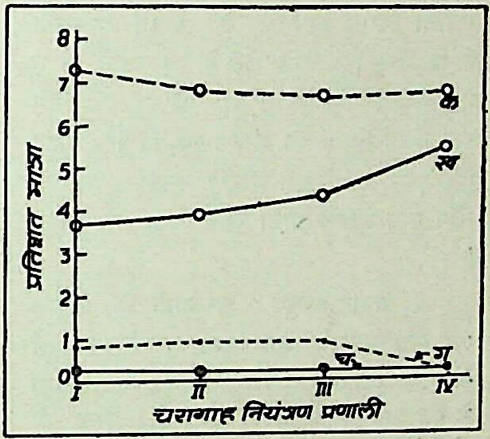

क. अपरिष्कृत रेशा, ख. अपरिष्कृत प्रोटीन,
ग. पोटैशियम तथा घ. फास्फोरस

के प्रारम्भिक विकास हेतु पर्याप्त है, तत्पश्चात केवल मानसून अवधि में ही पूर्णतया सुरक्षा करने से चरागाह का विकास किया जा सकता है। उक्त अवधि में ही चरागाह की पौष्टिकता भी प्रचुर मात्रा में बढ़ जाती है।

चरागाह की सुरक्षा यद्यपि कटीले तारों द्वारा की जा सकती है परन्तु 1 मी. ऊँची तथा 45 से.मी. चौड़ी पत्थर की दीवार ही एक उचित सुरक्षा व्यवस्था का कार्य कर सकती है क्योंकि पत्थर क्षेत्र में ही प्राप्त हो जाता है तथा इस पार अधिक व्यय भी नहीं होता। पुनः जीवित क्षुप प्रजातियों जैसे किलमोड़ा (बरबैरिस प्रजातियाँ) आदि को दीवार के बाहरी क्षेत्र एवं चारा तथा ईंधन हेतु उपयुक्त वृक्षों जैसे भिमल (ग्रेविया औप्टिवा), कनोल (बौहीनिया रैटूसा), बकैन (मैलिया आजाडरैक) आदि को दीवाल के भीतरी क्षेत्र में लगाकर दीवाल के जीवन काल को बढ़ाया जा सकता है तथा अन्य उपज भी प्राप्त की जा सकती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चरागाहों (मुख्यतया पैनीकम पैंडीसिलेटम चारा प्रजाति) में जल एवं भू-संरक्षण संबंधी प्रयोगों (गुप्ता 1980) से निष्कर्ष निकलता है कि मध्य हिमालयी क्षेत्र के चरागाहों के भू एवं जल संरक्षण हेतु 8 मी० की दूरी पर पैनी-कम पैंडीसिलेटम की वानस्पतिक मेंढ़ युक्त कन्टूर ट्रेंच (25-15 से.मी. चौड़ी) बनाने से लगभग तीन गुना अधिक चारा प्राप्त किया जा सकता है।

2. चराई प्रबन्ध : चरागाहों के विकास एवं पुनरुत्थान में क्रमानुसार चराई महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है, परन्तु वर्तमान परिस्थितियों में यह असम्भव सा प्रतीत होता है। फिर भी क्षेत्र में उपलब्ध परम्परागत प्रणालियों के प्रसार मात्र से इस समस्या को अंशत: सुलझाया जा सकता है। उत्तरखण्ड क्षेत्र में चरागाहों को मुख्यतया तीन प्रकार से नियन्त्रित किया जाता है :

(क) कुछ चरागाहों को वर्ष भर पूर्णरूपेण सुरक्षित रखा जाता है तथा चरागाह को पूर्ण-तया चारा उत्पादन हेतु प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के चरागाहों की उपज लगभग 3320 ग्रा प्रति वर्ग मी है।

(ख) कुछ चारागाहों को मात्र 6 माह (जून से नवम्बर तक) हेतु सुरक्षित रखा जाता है तथा घास को काट लेने के बाद पशु चराई हेतु प्रयोग किया जाता है, ऐसे चरागाहों की उपज प्राय: 2890 ग्रा प्रति वर्ग मी है।

(ग) कुछ चरागाहों को वर्षभर चराई हेतु प्रयोग किया जाता है। इन चरागाहों की उपज चराई दबाव के कारण अत्यन्त कम (160 ग्रा प्रति वर्ग मी; मानसून के समय) है (गुप्ता 1980)। अत: स्पष्ट है कि प्रथम एवं द्वितीय पद्धतियों का सम्पूर्ण क्षेत्र में प्रसार करने से चराई प्रबन्ध किया जा सकता है।

3. चारा संरक्षण : यद्यपि चारा संरक्षण की कोई वैज्ञानिक विधि अभी उपलब्ध नहीं हो पाई है परन्तु चारा कटाई की अवधि पर नियंत्रण कर पौष्टिक चारा संग्रहीत किया जा सकता है। प्रयोगों से स्पष्ट हुआ है कि एक बार की कटाई (मानसून के अंत में) वाली प्रणाली में 90 दिनों में तथा दो बार की कटाई (मानसून अवधि में दो बार कटाई) वाली प्रणाली में मानसून के प्रारम्भ से 60 दिनों में कटाई करने से पौष्टिक तथा अधिक चारा उपज प्राप्त की जा सकती है।

4. उर्वरकों का प्रयोग : प्रयोगों द्वारा ज्ञात होता है कि हिमालय क्षेत्र की मृदा में पौष्टिक तत्व नत्रजन (नाइट्रोजन) की कमी है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में फॉस्फोरस पेण्टाआक्साइड अनुपलब्ध अवस्था में परिणित हो जाता है। भावर घास (यूलालिओप्सिस बाइनेटा) की उपज मात्र एन$_{15}$ पी$_{15}$ किग्रा प्रति हैक्टर के प्रयोग से ही बढ़ाई जा सकती है (Mathur, H.N. et al. 1975, Ann. Rep., CS & WCR & TI Dehradun) कुमायूं के मध्य ऊँचाई क्षेत्र के कुमरिया-घोड़िया चरागाह (Heteropogon Contortus-Chrysopon fulvus gassland) हेतु सन$_{60}$ पी$_{60}$ किग्रा प्रति हैक्टेयर उर्वरक का उपयोग उपयुक्त है (मेलक-निया एवं टंडन 1985)।

5. चारा घास एवं दलहनी प्रजातियों का समावेश : यद्यपि नत्रजन युक्त उर्वरकों का प्रयोग करने से चारा उपज शीघ्रातिशीघ्र बढ़ाई जा सकती है, परन्तु यह विधि पर्वतीय क्षेत्रों हेतु उपयुक्त प्रतीत नहीं होती है क्योंकि :

(1) चरागाह पूर्णतया मानसून की वर्षा पर ही निर्भर रहते हैं। वर्षा के समयानुसार न होने अथवा कम मात्रा में होने के कारण उर्वरकों के प्रयोग से अधिक लाभ प्राप्त नहीं हो पाता है। अधिक वर्षा अथवा वर्षा के वेग से उर्वरक प्रचुर मात्रा में बहकर नष्ट हो सकते हैं क्योंकि चरागाहों का धरातल ढलानयुक्त है।

(2) चरागाहों की स्थिति असुविधापूर्ण (unapproachable) होने के कारण सभी स्थानों में उर्वरकों का प्रयोग सम्भव नहीं है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अतः इस समस्या को अधिक उपज वाली पौष्टिक चारा घास एवं दलहनी प्रजातियों के समावेश से सुलझाया जा सकता है। अधोउष्ण कटिबन्धीय चरागाहों हेतु स्टाइलोसैन्थिस हुमिलिस, क्रोटालेरिया जावानिका, डालीकोस एक्जीलरिस, सैन्टोसीमा प्यूवैसेन्स तथा डेसमोडियम प्रजातियाँ उपयुक्त है। मध्य हिमालयी क्षेत्र में पंगोला (डिजीटेरिया डिकम्बेन्स) तथा सिरेट्रो (मैक्रोप्टिलियम एट्रोपरप्यूरिथम) का मिश्रण उपयुक्त है जिसके द्वारा उपज को लगभग 4 गुना बढ़ाया जा सकता है तथा क्रूड प्रोटीन की मात्रा भी 8·5% तक प्राप्त की जा सकती है। इसके अतिरिक्त देशज चारा घासें जैसे घोड़िया (क्राइसोपोगोन फलवस), विमल्स (पैनीसिटम परप्युरियम), अरुन्डिनैला नेपालेन्सिस, थैमेंडा एनाथरा तथा ब्रौथीओक्लोआ प्रजातियाँ भी इस कार्य हेतु उपयुक्त हैं।

उपयोगी चारा घासों एवं दलहनी प्रजातियों के समावेश की विधि भी अत्यन्त सरल है। मानसून की वर्षा के तुरन्त बाद ही चारा घासों के जड़ भाग (unit Rhizome or tussocks) द्वारा तथा दलहनी चारा प्रजातियों को बीज द्वारा उपजाया जा सकता है। दलहनी चारों के समावेश से चरागाह भूमि की उत्पादन क्षमता भी बढ़ाई जा सकती है।

6. खरपतवारों तथा झाड़ियों का निराकरण : दीर्घ अवधि तक चरागाहों को पूर्णतया सुरक्षित रखने के कारण अथवा चराई दबाव से चरागाहों में क्रमशः झाड़ियों एवं खरपतवारों की उत्पत्ति हो जाती है जिससे की उपज एवं उपयोगिता कम हो जाती है। चरागाह में झाड़ियों के निवारण हेतु पिक्लोरम का 15 किग्रा प्रति हैक्टेयर की दर से झाड़ियों के चारों ओर प्रयोग करने तथा 2–4–5 टी ईस्टर अथवा एमीन का 0·4 प्रतिशत की दर से झाड़ी काटने के पश्चात् शेष कटे हुए भाग पर प्रयोग उपयोगी सिद्ध हुआ है। कुरी (लैन्टाना कैमरा) को टारडोन के 21 प्रतिशत (1:200 शक्ति) घोल से झाड़ी के कटे हुए भाग में प्रयोग करने से नष्ट किया जा सकता हैं (मैलकनिया एवं टंडन 1985)।

वृक्ष–चरागाह वर्धन तन्त्र (Silvipastoral system) : चारा उत्पादन की नवीन तकनीक

चरागाहों को अधिक समय तक सुरक्षित रखने पर उत्पन्न झाड़ी एवं वृक्ष प्रजातियाँ प्रायः मानव जीवन अथवा प्राकृतिक संरक्षण हेतु लाभदायक ही होती है तथा इनका निवारण अथवा उन्मूलन सहज कार्य नहीं है। अतः मात्र शाकीय चारों युक्त चरागाह के विकास की अपेक्षा वृक्ष—चरागाह वर्धन तन्त्र की स्थापना कृषकों हेतु अधिक उपयुक्त होगी क्योंकि :

(1) इस तन्त्र में प्रति इकाई क्षेत्र के आधार पर अधिक जैविक भार (biomass) प्राप्त किया जा सकता है।

(2) प्रति इकाई क्षेत्र में उपलब्ध सौर ऊर्जा तथा भू-जल एवं पौष्टिक तत्वों का विभिन्न स्तर के पौधों द्वारा उपयोग हो सकता है।

(3) कृषकों के ईंधन व वृक्षीय चारे की पूर्ति भी की जा सकती है तथा वर्षभर हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है।

(4) वृक्षों के चरागाह में रोपण के फलस्वरूप भूमि अपरदन सम्बन्धी दबाव को भी कम किया जा सकता है।

इस तन्त्र में निम्न तथ्य ध्यान देने योग्य हैं :

(अ) रोपण हेतु प्रयुक्त वृक्षों का शाकीय चारा प्रजातियों पर कोई रासायनिक कुप्रभाव नहीं होना चाहिए।

(ब) वृक्ष प्रजातियाँ प्रायः शीघ्र बढ़ने वाली, शीघ्र चारा देने वाली तथा प्रस्फुटनशील हों।

चूंकि इस प्रकार के तन्त्र में प्रारम्भ में व्यय अधिक हो सकता है। अतः सामुदायिक स्तर पर प्रयोग अधिक उपयोगी होगा। हिमालय की विभिन्न ऊँचाई वाले क्षेत्रों में इस प्रकार के तन्त्र की स्थापना हेतु उपयोगी पौध प्रजातियाँ आगे दी गई हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

1. निचली ऊंचाई वाले क्षेत्र

वृक्ष : डैसर्वाजिया सीसू (शीशम), अकेशिया कैटेंचू (खैर), अलबीजिया लीबैक (काला सीरस), एनोगीसस लेटीफोलिया, बौहीनिया वेरिएगेटा (अचनार), बाम्बैक्स सीवा (सेमल), केशिया फिस्टूला (अमलताश), इम्बलीका आफ्नेसिनेल (आंवला), होलोप्टीलिया इन्टैग्रीफोलिया, लिटसिया पालीएन्था अर्जैनिया ऊजैन्सिस (सानन), टरमीनेलिया टोमैन्टोसा (हरड़), टरमीमैलिया बैलैरिका (बरड़)।

झाड़ी : इन्डीफैरा पुलचैला, डैसमोडियम निकाराागुआनीज ।

शाकीय : ब्रोथीओक्लोआ परटूसा, बोथ्रीओक्लोआ इन्टरमीडिआ, सैंक्रस सीलिएरिस (धामन घास), क्राइसोपोगोन फलवस (घोड़िया), यूलालिओप्सिस वाइनेटा (मावर घास), एलीसीकारपस वजाइनैलिस, क्लीटोरिया टरनैटा, फैलिओसस ट्रिबुलस, डोलीकोस एक्जीलरिस, स्टाइलोसैन्थिस हुमिलिस तथा डैसमोडियम इनटोरटस।

2. मध्य ऊंचाई वाले क्षेत्र

वृक्ष : अलबीजिया लीबैक काला सिरस), मोरस अल्बा (शहतूत), बोहिनिया रैटूसा (कनोल), बौहीनिया परप्यूरिया (क्वैराल), रुगूलोसा (गेठी), क्वैरकस ल्यूकोट्राइकोफोरा (बांज), क्वैरकस सैरेटा (मनीपुरी बांज), क्वैरकस फ्लोरीबन्डा (तिलोंज अथवा मोरु), रोबिनिया स्यूडोअकेशिया, ग्रेविया औप्टिवा (भिमल), एलमस वालीचियाना, मैलिया आजाडरैक (बकैन), प्रूनस सैरासौइडिस (पयां)।

झाड़ी एवं लता : इन्डीगौफैरा पुलचैला, डैस्मोडियम अन्सीनेटम, वाइटैक्स निगन्डू, लैस्पीडैंजा बाइकलर, मैक्रोप्टीलियम एट्रोपरप्यूरियम (सिरेट्रा), प्यूरेरिया थनबरजियाना (कुड़जू)।

शाकीय : एप्लूडा म्यूटिका (छड़ी घास), अरुन्डिनैला नैपालेन्सिस, सीटेरिया स्पैसिलेटा (उपप्रजातियाँ नन्दी एवं काजंगुला), ब्रौथीओक्लोआ इन्टरमीडिआ, क्राइसोपोगोन फलेवस (घोड़िया), पैनीसिटम परप्यूरियम (विमल्स), डिजीटेरिया डिकम्बैन्स (पंगोला), क्यूक्यू (साइनोडोंन प्लैक्टोस्टेकियम; केवल नमी वाले स्थानों पर)।

3. अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्र

वृक्ष : एसर पिक्टम (पुतली), एसर आवलोंगम, क्वैरकस फ्लोरीवण्डा (तिलोंज अथवा मोरु), क्वैरकस सैमैकार्पी-फोलिया (खरसू) तथा मोरस सैरेटा (कीमू)।

झाड़ी : सैसबानिया इजिप्टिका।

शाकीय : फ्लूम प्रेटेन्स, लोलियम पेरेनी, पोआ प्रेटेन्सिस, डैक्टाइलिस ग्लोमैरेटा, लोटोनोनिस बैनैसी तथा डसमोडियम अन्सिनेटम। □

बनफूलों का सैलाब : फूलों की घाटी

दीनानाथ श्रीवास्तव

धरती के पुष्पजड़ित मुकुट के समान भ्यूंडार गाँव की सीमा पर 12000 फुट की ऊँचाई पर सुशोभित है फूलों की घाटी। इसके चारों ओर हिम-शृंखला की दीवारों से घिरा आँगन है, जिसे स्कन्ध पुराण के केदारखण्ड ने "नन्दन कानन" की संज्ञा दी है। यह घाटी गढ़वाल मण्डल के जनपद चमोली में 30·7° अक्षांश उत्तर एवं 76·7° देशान्तर उत्तर पर स्थित है। इसका तीन किलोमीटर चौड़ा एवं 10 किलोमीटर लम्बा विस्तार असंख्य वनफूलों से जुटा पड़ा है। घाटी की नीरव शान्ति में कान लगाकर सुनें तो ऐसा प्रतीत होगा कि घाटी ही बोलती है, "मेरा सन्देश सुनो, अपने विचारों के क्रम को दो क्षण बन्द करो, मेरे विचारों को ग्रहण करने हेतु मन द्वार खोलो, तुम्हें घने हरित वन, श्वेत हिम शिखर, दूध गंगा-सी धवल पुष्पावली, शिखरों पर तना नील चन्दोवा और मेरी गोद के असंख्य बनफूल गीत गाते सुनाई देंगे। साधारण गीत नहीं, प्रकृति का गीत, शाश्वत-संगीत, अनहृद की भाँति सुनाई देगा, जो नश्वर को अनश्वर की परिभाषा बता रहा है।"

आप घाटी के मौन आकर्षण में ही न खो जायें। सामने की ओर रक्तवर्ण उत्तर कामेट शिखर (25447) और पूर्व में गौरी पर्वत व पश्चिम नीलगिरी (21264) बद्रीनारायण व गन्धमादन की छटा को दो भागों में विभाजित करती है। इसके मध्य में है फूलों की घाटी, जिसे प्रकाश में लाने का श्रेय इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध पर्वतारोही श्री फ्रेंक एस० स्माइथ को है। वे सन् 1931 में "कामेट-विजय" के उपरान्त भ्यूंडार के पास, 16688 की ऊँचाई से होकर गंधमादन पर्वत शृंखला से नारायण व बद्रीनारायण की ओर जा रहे थे कि उन्हें नीचे हेमकुण्ड, लोकपाल शिखर की ओर, एक विस्तृत, फूलों भरी घाटी दिखी। मंत्रमुग्ध वे पथ बदलकर उधर चले गये और प्रकृति की गोद में भाँति-भाँति के असंख्य वन-पुष्पों को खिला देखकर ठगे-से रह गये। कुछ दिन बाद वे इंग्लैण्ड चले गये और "दि वैली आफ फ्लावर्स" नामक पुस्तक की रचना की, जिसने संसार के वनस्पति शास्त्रियों को आश्चर्य-चकित कर दिया। वे सन् 1937 में पुन: भारत आये तथा फूलों की घाटी में साढ़े तीन माह रहकर उन्होंने वहाँ फूलों की 2500 जातियाँ ढूंढ़ निकालीं। उनके शोध कार्य ने चेतना और उत्सुकता की नई लहर दौड़ाई। सन् 1939 में इंग्लैंड के क्यू बोटेनिकल गार्डन ने जॉन माग्रेट लेग को फूल घाटी में अध्ययन प्रजातियों को एकत्र करने भेजा। 4 जुलाई 1939 को, पुष्पों के बीज एकत्र करते हुए उनका पैर फिसला; वे 150 फुट नीचे चट्टानों पर जा गिरीं और सदैव के लिए प्राकृतिक पुष्पशैया में सो गयीं।

इस सुरम्य फूल घाटी में पहुँचने के लिए रेल द्वारा हरिद्वार अथवा ऋषिकेश पहुँचकर सड़क द्वारा बद्रीनारायण मार्ग पर चलते हैं। ऋषिकेश से 281 किलोमीटर दूर गोविन्दघाट स्थित है। यहाँ से अलकनन्दा पर बने झूले के पुल को पारकर 10000′ की ऊँचाई पर स्थित घाघरियाँ पड़ाव के लिए प्रस्थान करते हैं। मार्ग धीमी मगर अनवरत चढ़ाई का है। 9 किलोमीटर चलने के बाद भ्यूंडार ग्राम पहुँचते हैं। यहाँ से खड़ी चढ़ाई आरम्भ होती है किन्तु देवदार का घना रमणीक वन आपको मुग्ध कर लेता है। कुछ दूर बाद लक्ष्मण गंगा से संगम बनाती, काकमुसुण्डी शिखरों से कलकल करती, काकमुसुण्डी गंगा दिखेगी, जिसका सुन्दर वर्णन रामचरित मानस में महाकवि तुलसीदास

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जी ने उत्तरकाण्ड में काक गरुड़सम्वाद के रूप में दिया है। 17000 फुट ऊँची-ऊँची पर्वत श्रेणियाँ-एक शिखर की काली शिखाएं चोंचनुमा, दूसरी हिम से ढकी श्वेत पंखनुमा-काक एवं भुसुण्डी का प्रतीक है। उनके संवाद में सृष्टि की रचना एवं ब्रह्मा का निरूपण है। काक भुसुण्डी के दर्शन के उपरान्त घांघरिया पड़ाव पहुँचते हैं। यह स्थान गोविन्दघाट से 14 किलो-मीटर की दूरी पर स्थित है।

यहाँ से एक किलोमीटर की चढ़ाई के उपरान्त आंग्ल भाषा के 'वाई' (Y) अक्षर की भाँति मार्ग के बाँई ओर, 12071 से 13074 फुट तक की ऊँचाई पर स्थित है फूल घाटी दांई ओर सुन्दर सफेद ग्लेशियर को पारकर, 15288 फुट की ऊँचाई पर हेमकुण्ड लोकपाल है। हेम-कुण्ड चहुँओर सात गगनचुम्बी हिमशृंगों से घिरा है। कुण्ड के स्फटिक-सदृश जल में ग्लेशियर का स्वच्छ प्रतिबिम्ब ऐसा प्रतीत होता है, मानो प्यासा ग्लेशियर तृप्ति हेतु ताल में उतर आया है। यहीं लक्ष्मण ने रावण वध उपरान्त ब्रह्म-हत्या निवारणार्थ तप किया था। सिखों के दसवें गुरु गोविन्दसिंह जी ने पूर्व जन्म में यहीं ईश आराधना कर बोध प्राप्त किया है। उन्होंने "विचित्र नाटक" नामक ग्रन्थ में इसका वर्णन यूँ किया है—

हेमकुण्ड पर्वत है जहाँ
सप्त शृंग सोहत है तहाँ
ताईं हम अधिक तपस्या साधी
महाकाल कालिका आराधी
ऐ ही विधि करत तपस्या भयो
द्वैत से इक रूप हो गयो।

यहां से 3 किलोमीटर बाद सुरम्य फूलघाटी के प्रथम दर्शन होते हैं। केदारनाथ के देवदर्शनी की भांति, अब संकीर्ण मार्ग प्रशस्त होकर घाटी की चौड़ाई में फूलों के बीच खो जाती है। पुष्पावती नदी गलेशियर के अन्दर गुफा बनाती हुई, एक ओर से विलीन होकर दूसरी ओर कल-कल करती प्रकट होती है। सामने 10 किलो-मीटर लम्बी फूल घाटी है।

आपकी दृष्टि धरती पर बिछी सतरंगी, पुष्पों-भरी चादर पर टिक जाएगी। मन्त्रमुग्ध आप इस अनोखी छटा पर निहाल हो जायेंगे। यहाँ लगभग 2500 किस्म के वनफूल जून में, वर्षा की प्रथम फुहार के साथ खिलने आरम्भ होते हैं। वर्षा की धार से धरती ज्यों-ज्यों हिम अवगुण्ठन खोलती है, त्यों-त्यों प्रकृति, धरती की सुन्दर वेणी को भाँति-भाँति के पुष्पों से सजाना आरम्भ कर देती है। हर पखवाड़े इस वेणी के फूलों का रंग तथा उसका रूप बदल जाता है। एक किस्म के फूल 15–20 दिन खिलते हैं और फिर प्रकृति की गोद में ही सो जाते हैं। यह क्रम अनवरत, सितम्बर तक चलता रहता है।

जिस प्रकार मैदानों में फागुन में जन्मे पुष्पों को ज्येष्ठ की उष्मा झुलसा देती है, वैसे ही फूलघाटी की अगाध पुष्प राशि को कार्तिक, अगहन की शीत-लहरी झुलसा देती है। पुष्प कुम्हलाने लगते हैं, पौधे बीजों की झोलियां भरे, जीवन का अन्त जोहने लगते हैं। हिमपात की प्रथम फुहार के साथ अपने बीज रूप में छिपा पुष्प, धरती की गोद में गिटकर, अपार हिम-राशि में समाधिस्थ हो जाते हैं—वर्षा की अगली, जीवनदायिनी फुहार की प्रतीक्षा में।

फूल घाटी के पुष्प परिवार में विशेष उल्लेखनीय है, ब्रम्हकमल, महाभारत काल में, बन-पर्व में व्यास जी ने पाण्डवों की गन्धमाधन पर्वत यात्रा एवं नारायण क्षेत्र में निवास का वर्णन किया है। जब वे गोविन्दघाट के पास पांडकेश्वर में निवास करते थे तो एक दिन अलकनन्दा व लक्ष्मणगंगा के संगम पर स्नान करते समय द्रोपदी के हाथ, जलधारा में बहता हुआ ब्रम्हकमल का एक पुष्प लगा। पुष्प पर मुग्ध हो द्रोपदी ने कृष्ण-पूजा के लिए ऐसे ही पुष्प लाने का भीम से आग्रह किया। महाबली भीम पुष्पों की खोज में गोविन्दघाट होते हुए लक्ष्मण गंगा के तीर फूलों की घाटी जा पहुँचे। वहां धरती पर खिले इन अलौकिक पुष्पों को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने पहला ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फूल तोड़ा ही था कि गन्धर्वराज चित्ररथ के प्रहरियों ने उन्हें रोक लिया। वे चित्ररथ के सम्मुख प्रस्तुत हुए। धर्मराज, चक्रवर्ती सम्राट युधिष्ठिर के भ्राता भीम का परिचय पाकर चित्ररथ अनुग्रहीत हुए। उन्होंने आतिथ्य-सत्कार सहित, घाटी पर उगने वाला ब्रम्हकमल, विष्णु कमल, फैणकमल, नीलकमल एवं हिमकमल के उपहार देकर उनको विदा दी। ब्रम्हकमल जल में नहीं, वरन् धरती पर, हिम पिघलने के उपरान्त खिलता है। इसकी हरी-हरी, नयन-सरीखी लम्बी पंखुडियां जलकमल के सदृश्य, सूर्योदय पर खुलती है एवं सूर्यास्त पर बन्द होती हैं। आज भी गंगोत्री व ब्रद्रीकेदार में ब्रम्हकमल की माला पूजा में अर्पित होती है, जिसका प्रसाद अद्वितीय माना जाता है।

फूल घाटी में उत्पन्न फूलों की महिमा केवल उनकी सुन्दरता में नहीं, वरन् उनके गुणों में भी है। इसमें अनेक प्रकार की जीवनदायनी, संजीवनी जड़ी-बूटियां भी पैदा होती हैं। जिनमें विशेष उल्लेखनीय हैं, अतीत (इकोनाइटम हैंट्रोफिलम), इन्द्रायण, ब्लूपॉपी, कुटकी, दिव्य-कन्द, रतनजोत, थूप, चिरायता, बनप्सा, सोमलता, मशीनरी, बज्रदन्ती, ब्रम्हकमल, भूतकेशी, जटामासी, वत्सनाभ (एकोनाइटस फिरोक्स), विषकण्डार, पाषाणभेद, सालमपंजा, प्रिमुला आदि। ये विष ज्वर, मन्दाग्नि, दमा, उदर रोग, हृदय रोग, संधिवात, मलेरिया, नेत्र-रोग, दन्तरोग, क़र्णशूल, पागलपन, रक्तचाप, गठिया, कण्ठमाला, पथरी, चर्मरोग, पीलिया आदि की अचूक औषधियाँ हैं।

फ्रेंक स्माइथ ने फूलों की घाटी पर शोध कार्य को एक नई दिशा दी, जिससे जॉन मारग्रेट लेग ने आगे बढ़ाया। इस समय भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान एकादमी के अन्तर्गत दिल्ली विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग द्वारा यहां पर कार्य किया जा रहा है तथा फूलों की लगभग 500 किस्मों के बीज एकत्रित एक जा चुके हैं। भारतीय वनस्पति सर्वेण, उत्तरीय क्षेत्र, भी फूलघाटी में उपलब्ध वनस्पतियों पर शोध कार्य कर रहा है। भविष्य में यह शोध कार्य इन पुष्पों एवं औषधियों के उपयोग की नई दिशा देगा।

महाभारत काल से आज तक फूलों की घाटी सैलानियों का स्वर्ग रही है। उसकी मनोरम छाया और प्राकृतिक सौन्दर्य मार्ग की थकान को हर लेती हैं। सैलानी प्रथम दर्शन में ही विभोर हो जाता है। मुझे भी फूलों की घाटी की यात्रा में ऐसा ही अनुभूत हुआ।

पुष्पों भरी मुस्कराती घाटी में प्रथम दर्शन में मुझे लगा यह आने वाले सैलानियों की मुस्कान का विस्तार है या, व्यष्टि का दर्शन समयष्टि में हो रहा है। इधर मन ठगा सा स्थिर, उधर नेत्र अनगिनत रंगीन फूलों में उलझे। फूलों को गोद में सजाए टहनियाँ सिर हिला-हिलाकर हमें पास बुला रही थीं। सतरंगी, मोती-जड़ी, आसमानी चूनर को ओढ़ धरती दुल्हन-सी सजा अपने ही सौन्दर्य पर लजाई पड़ी थी। आलौकिक दृश्य निहार कर मन खो सा गया। कदाचित, मन को खोने के लिए ही तो साधू ऋषि, योगी जन हिमालय आते हैं। फूल घाटी विशेष शान्ति बिखेरती, मन के संकल्प-विकल्पों को लय करती, दिशाओं में प्रकृति की आकृति का सगुण रूप खोलती, स्थूल तत्त्वों से दूर आलौकिक मूल प्रकृति का दर्शन कराती है। □

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

The Magic of Tungnath

Ruskin Bond

The mountains and valleys of Uttarakhand never fail to spring surprises on the traveller in search of the picturesque. It is impossible to know every corner of the Himalaya, which means that there are always new corners to discover; forest or meadow, mountain stream or wayside shrine.

The temple of Tungnath, at a little over 12,000 ft., is the highest shrine on the inner Himalayan range. It lies just below the Chandrashila peak. Some way off the main pilgrim routes, it is less frequented than Kedarnath or Badrinath, although it forms a part of the Kedar temple establisment. The priest here is a local man, a Brahmin from the village of Maku; the other Kedar temples have South Indian priests, a tradition begun by Sankaracharya, the 8th century Hindu reformer and revivalist.

Tungnath's lonely eminence gives it a magic of its own. To get there (or beyond), one passes through some of the most delightful temperate forest in the Garhwal Himalaya. Pilgrim, or trekker, or just plain rambler such as myself, one comes away a better man, forest-refreshed, and more aware of what the world was really like before mankind began to strip it bare.

Duiri Tal, a small lake, lies cradled on the hill above Okhimath, at a height of 8,000 ft. It was a favourite spot of one of Garhwal's earliest British Commissioners, J. H. Batten, whose administration continued for twenty years (1836-56). He rote : The day I reached there, it was snowing and young trees were laid prostrate under the weight of snow; the lake was frozen ever to a depth of about two inches. There was no human habitation, and the place looked a veritable wilderness. The next morning when the sun appeared, the Chaukhamba and many other peaks extending as far as Kedarnath seemed covered with a new quilt of snow, as if close at hand. The whole scene was so exquisite that one could not tire of gazing at it for hours. I think a person who has a subdued settled despair in his mind would all of a sudden feel a kind of bounding and exalting cheerfulness which will be imparted to his frame by the atomosphere of Duiri Tal.

This feeling of uplift can be experienced almost anywhere along the Tungnath range. Duiri Tal is still some way off the beaten track, and anyone wishing to spend the

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

night there should carry a tent; but further along this range, the road ascends to Dugalbeta (at about 9,000 ft) where a PWD rest house, gaily painted, has come up like some exotic orchid in the midst of a lush meadow topped by excelsia pines and pencil cedars. Many an official who has stayed here has rhapsodised on the charms of Dugalbeta; and if you are unofficial (and therefore not entitled to stay in the bungalow), you can move on to Chopta, lusher still, where there is accomodation of a sort for pilgrims and other hardy souls. Two or three little tea-shops provide mattresses and quilts. The Garhwal Mandal is putting up a rest house. These tourist rest houses, scattered over the length and breadth of Garhwal, are a great boon to the traveller; but during the pilgrim season (May/June) they are filled to overflowing, and if you turn up unexpectedly you might have to take your pick of tea-shop or "dharamshala" : something of a lucky dip, since they vary a good deal in comfort and cleanliness.

The trek from Chopta to Tungnath is only three and a half miles, but in that distance one ascends about 3,000 ft, and the pilgrim may be for given for feeling that at places he is on a perpendicular path. Like a ladder to heaven, I couldn't help thinking.

In spite of its steepness, my companion, the redoubtable Ganesh Saili, insisted that we take a short cut. After clawing our way up tufts of alpine grass, which formed the rungs of our ladder, we were stuck and had to inch our way down again; so that the ascent of Tungnath began to resemble a game of Snakes and Laddres.

A tiny guardian-temple dedicated to the god Ganesh spurred us on. Nor was I really fatigued; for the cold fresh air and the verdant greenery surrounding us was like an intoxicant. Myriads of wildflowers grow on the open slopes—buttercups, anemones, wild strawberries, forget-me-not, rock-cress–enough to rival Bhyundar's "Valley of Flowers" at this time of the year.

But before reaching these alpine meadows, we climb through rhododendron forest, and here one finds at least three species of this flower : the red-flowering tree rhododendron (found throughout the Himalaya between 6,000 ft and 10,000 ft); a second variety, the almatta, with flowers that are light red or rosy in colour; and the third chimul or white variety, found at heights ranging from between 10,000 and 13,000 ft. The chimul is a brush-wood, seldom more than twelve feet high and growing slantingly due to the heavy burden of snow it has to carry for almost six months in the year.

These brushwood rhododendrons are the last trees we see on our

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ascent, for as we approach Tungnath the tree linc ends and there is nothing between earth and sky except grass and rock and tiny flowers. Above us, a couple of crows dive-bomb a hawk, who does his best to escape their attentions. Crows are the world's great survivors. They are capable of living at any height and in any climate; as much at home in the back streets of Delhi as on the heights of Tungnath.

Another survivor. up here at any rate, is the pika, a sort of mouse-hare, who looks like neither mouse nor hare but rather a tiny guinea-pig-small ears, no tail, grey-brown fur, and chubby feet. They emerge from their holes under the rocks to forage for grasses on which to feed. Their simple diet and thick fur enable them to live in extreme cold, and they have been fonnd at 16,000 ft, which is higher than any other mammal lives. The Garhwalis call this little creature the Runda—at any rate, that's what the temple priest called it, adding that it was not averse to entering houses and helping itself to grain and other delicacies. So perhaps there's more in it of mouse than of hare.

These little Rundas were with us all the way from Chopta to Tungnath; peering out from their rocks or scampering about on the hill side, seemingly unconcerned by our presence. At Tungnath they live beneath the temple flagstones. The priest's grandchildren were having a game discovering their burrows; the Rundas would go in at one hole and pop out at another—they must have had a system of underground passages.

When we arrived, clouds had gathered over Tungnath, as they do almost every afternoon. The temple looked austere in the gathering gloom.

To some, the name "tung" indicates "lofty", from the position of the temple on the highest peak outside the main chain of the Himalaya; others derive it from the word "tunga" i. e. "to be suspended"—an allusion to the form under which the deity is worshipped here. The form is the Swayambhu Ling; and on the Shivratri or Night of Shiva, the true believer may, "with the eye of faith", see the lingam increase in size; but "to the evil-minded no such favour is granted".

The temple, though not very large, is certainly impressive, mainly because of its setting and the solid slabs of grey granite from which it is built. The whole place somehow puts me in mind of Emily Bronte's Wuthering Heights—bleak, wind-swept, open to the skies. And as you look down from the temple at the little half-deserted hamlet that serves it in summer, the eye is met by grey slate roofs and piles of stones, with just a few hardy souls in residance—for the majority of

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

pilgrims now prefer to spend the night down at Chopta.

Even the temple priest, attended by his son and grandsons, complains bitterly of the cold. To spend every day barefoot on those cold flagstones must indeed be hardship. I wince after five minutes of it, made worse by stepping into a puddle of icy water. I shall never make a good pilgrim; no rewards for me, in this world or the next. But the pandit's feet are literally thick-skinned; and the children seem oblivious to the cold. Still, in October they must be happy to descend to Maku, their home village on the slopes below Dugalbeta.

It begins to rain as we leave the temple. We pass herds of sheep huddled in a ruined dharamshala. The crows are still rushing about the grey weeping skies, although the hawk has very sensibly gone away. A Runda sticks his nose out from his hole, probably to take a look at the weather. There is a clap of thunder and he disappears, like the white rabbit in **Alice in Wonderland**. We are halfway down the Tungnath "ladder" when it begins to rain quite heavily. And now we pass our first genuine pilgrims, a group of interpid Bengalis who are heading straight into the storm. They are without umbrellas or raincoats, but they are not to be deterred.

Oaks and rhododendrons flash past as we dash down the steep, winding path. Another short cut, and Ganesh Saili takes a tumble, but is cushioned by moss and buttercups. My wrist-watch strikes a rock and the glass is shattered. No matter. Time here is of little or no consequence. Away with time ! Is this, I wonder, the "bounding and exalting cheerfuness" experienced by Batten and now manifesting itself in me ?

The tea-shop beckons How would one manage in the hills without these wayside tea-shops ? Miniature inns, they provide food, shelter and even lodging to dozens at a time.

We sit on a bench between a Gujar herdsman and a pilgrim who is too feverish to make the climb to the temple. He accepts my offer of an aspirin to go with his tea. We tackle some buns—rock-hard, to match our environment—and wash the pellets down with hot sweet tea.

There is a small shrine here, too, right in frount of the tea-shop. It is a slab of rock roughly shaped like a lingam, and it is daubed with vermilion and strewn with offerings of wildflowers. The mica in the rock gives it a beautiful sheen.

I suppose Hinduism comes closest to being a nature religion. Rivers, rocks, trees, plants, animals and birds, all play their part, both in mythology and in everyday worship This harmony is most evident in these remote places, where Gods and mountains co-exist. Tungnath, as yet unspoilt by a materialistic society exerts its magic on all who come here with open mind and heart. □

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

The Cave Dwellers Of Central Himalaya

Ajay S. Rawat

The central Himalayan region extends between 77°34′ 27″E and 81°02′22″E longitude and between 28°43′24″N and 31° 27′5″N latitude in Uttar Pradesh. It sprawls over an area of 51,122 square kilometers and comprises the eight districts, viz. Naini Tal, Almora and Pithoragarh in Kumaon region, and Pauri, Chamoli, Tehri, Uttarkashi and Dehradun in Garhwal region.

The R*ajis* (राजि)—locally known as *Ban Rauts* (बनरौत)—reside in the Central Himalayan region of Pithoragarh district. Socially, educationally and economically, they are exteremely backward and, in 1965, they were recognized as the most primitive tribal gronp of the State. They have remained almost aloof from the main stream of civilization and in the past they were essentially forest dwellers. Some of them stiil live in caves. During the last few decades, their unrestricted nomadic movement and activities in forests have progressively diminished due to State control and these people have now taken up to a primitive type of agriculture on land leased by the forest department. But this does not mean that they are no more dependent on forests or forest produce.

The *Rajis* Inhabit nine villages of the three *tehsils* of the border district of Pithoragarh. In the absence of agriculture or any other source of economic sustenance, the population of this tribe has more or less been static since the last century. The first record of their population has been referred to by Traill in his land assessment report of 1823. He states that the total number of families of the *Rajis* in that year was 20; their number increased between 30 and 40 families during the last decade of the 19th century. In 1969, the U.P. Harijan Welfare Department estimated the *Raji* population at 254 and hardly two years later in 1971, their number reduced to 228. Another survey conducted in 1975 enumerated them as 297, while the latest survey conducted by the Harijan Welfare Department of U. P. in 1981, has assessed their total population as 371. The village–wise and family-wise details of their population are presented in table on page 85.

The above mentioned *Raji* villages are scattered in an area of about 200 kilometers and their habitations are generally at an altitude ranging from 510 to 1430 meters above sea level.

Traditions of origin : Ethonologically,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

there is meagre information about the *Rajis*. They claim royal descent and consider the Pals of Askot (अस्कोट के पाल) in Pithoragarh district as their younger brothers. The Pals of Askot on the other hand claim descent from the kings of Katyur (कत्यूर), who at one time ruled from Kabul to Nepal and who have left a momento of their name in that portion of Almora district which is known as the Katyur valley. Askot is strategically important from the viewpoint that it commands the roads leading to the principal passes of Kumaon into Tibet.

According to the *Raji* tradition, the king of Askot had two sons. One day, both the princes were walking along the banks of a river when they found two jars full of gold. The younger brother kept all the treasure with him and refused to share it with the elder one. This unwarranted behaviour of the younger prince shocked the elder brother so much that he left for the forest. He never returned from there and ruled over the jungle. The younger brother naturally became the ruler of Askot and his descendants became famous as Pals. The scoins of the elder brother were known as the *Rajis*, meaning royal descent. Under the pretension to royal origin, the *Rajis* abstain from offering to any individual, whatever his rank be, the usual salutation. Being of royal blood, they also do not expose their women to the view of strangers. Similar aborgines are found also in *Doti* in Nepal and they have matrimonial relations with their counterparts in India.

Tehsil	Village	Households (Nos.)	Raji Population (1981)		
			Male	Female	Total
Dharchula (धारचूला)	Kimkhola (किमखोला)	15	40	30	70
	Bhaktirwa (भक्तिर्वा)	15	10	8	18
	Ganagaon (गणागांव)	14	31	14	45
	Chipalthara (चिपलथारा)	9	18	22	40
Didihaat (डीडीहाट)	Kuta Chaurani (कुटा चौरानी)	17	36	35	71
	Kuta Kanyal (कुटा कन्याल)	4	7	9	16
	Kantoli or Jamtari (कन्तोली या जामतरी)	11	27	22	49
	Altari (अल्तड़ी)	5	10	8	18
Champawat (चम्पावत)	Khirdwari (खिरद्वारी)	12	26	18	44

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

A Raji youth left and the young ones : What's our future ?

The facial and bodily features of the *Rajis* bear much resemblance with the Mongoloids. They have very little facial hairs though they sometime grow beards. Mostly they are thin and the general appearance of the face is hairless. It is generally believed that they are the aulocthons of the Central Himalayan regior. It is quite possible that the aborginal prince of Kumaon must have fled to the forest with the onslaught of the people from the plains who migrated to the Himalyan region during the Muslim period. The *Rajis* speak an aborginal language which sounds flat and unsonorous. Their count upto 10 is like this : *do, sot sung, turke, pahey, chahey aate, atthey, nawey, daey.*

Birth : They have weird customs. On the the birth of an infant, they do not dispense with the services of a midwife, and the prospective mother has to undergo the trial of child-birth alone unless there are other married women in the proximity who can be of assistance. The baby is named five days after birth, and on that day the family eats specially good food. The ceremony of naming the child is conducted by the priest who is called *Dhami* He acts as a priest for all the *Rajis* in Pithoragarh district. The priest is one amongst themselves and priesthood runs in the family. The priest appears on the fifth day and according to the tradition it is believed that God takes possession of his human frame and in the midst of his ecstatic trance, he names the child. All the children have two names, one Hindu and the other in the aborginal tongue. Upto two months after child birth, the mother is considered to be unclean and an offering of water from her is shunned.

Marriage : When a boy attains majority, his father goes and arranges the price of the bride for him, which is invariably paid in coarse earthen of wooden vessels and implements for digging jungle roots. He pays over something in advance to close the bargain, and is then feasted and

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

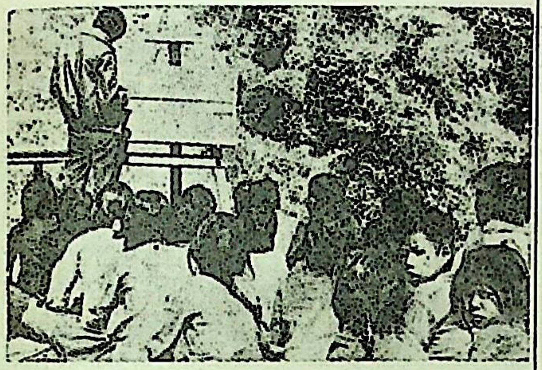

Primary School : only the midday meal attracts

remains there in the night. Nuptial relations are established outside the family and only when the girl has attained maturity. Child marriage is unknown and is highly disapproved. A betrothal cannot be annulled by the girl's family, once they have received a part of the bride's price in advance.

During the marriage there is no ceremony of any kind at the bride's place, except that her parents give food to the conjugal party in the morning after their arrival and a present of goats to the bridegroom. Even the services of the priest are not required. The only reception of the bride into the family of her husband is that in the evening his mother smears some yellow pigment on her forehead as she enters the house.

Religion : They are nature worshippers, but Hinduism has made some inroads into their seclusion. When an individual falls ill, they worship the Gods, ghosts, and demons of the jungle, but they erect no temples in their honour. They believe that demons and ghosts inhabit the mountain tops, rivers, wells or wherever water accumulates. The worship of Gods is performed publicly by day, but that of the ghosts and demons in the nocturnal tranquility and that too very secretly. The special offering to the Gods consists of goat and the demon and ghosts are propitiated by a sacrifice of fowls. These offerings are made on the tops of hills or under a large tree. After the ritual is over, the meat is consumed by the worshippers. The ghosts worshipped are of two kinds, some are worshipped as the protectors of the household; and others because, if neglected, they bring disease and death. They worship some of the Hindu Gods and Goddesses like *Mahadev*, *Parvati* and *Ganga*. They observe the festival of *Nanda Devi* with great enthusiasm. They also celebrate the *Kark Sankrant*—or passing of the sun into the sign of Cancer and those of Aries and Capricorn—*Mekha* and *Makar Sankrant*.

The Education : Education among *Rajis* is practically nil. There are six primary schools run by the Schedule Caste and Social Welfare Department in the villages of Kimkhola, Ganagaon, Chipalthara, Jamtari, Kuta Chaurani, and Khirdwari. Madan Singh is the only Raji boy, who studies in Class IV; rest have not

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

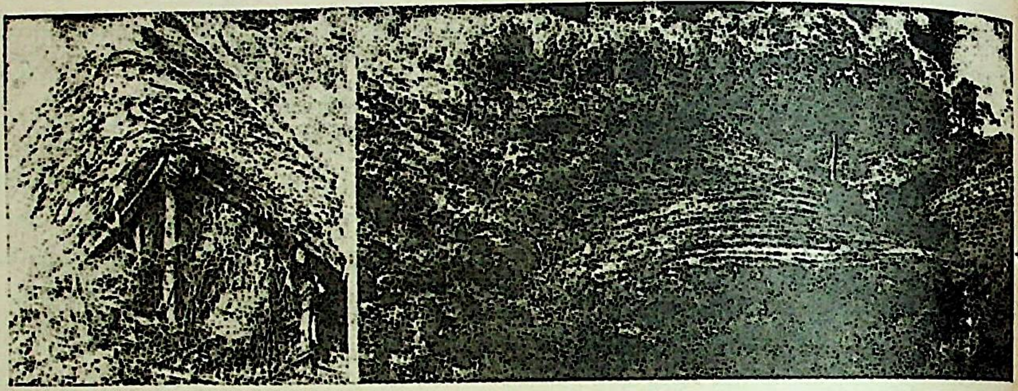

The Raji hut (left) and the alloted land (right)

gone beyond class III. There is only one *Raji* who has got a permanent job outside. This man named Indra Singh is a cleaner in D.R.D.A.

During the survey, the author observed that owing to the deplorable financial condition, guardians do not encourage their children to go to the school. On the contrary, they prefer to send their children for collecting wood and minor forest produce, or to look after the cattle. Those children who attend school are not attracted by education, but by the mid-day meal, which is provided free of cost in the schools.

Food Habits : Previously the *Rajis* relied absolutely on forest produce for their food like wild fruits, plants and roots and hunting of fish and wild animals. But now they depend on agricultural products also. The *Rajis* are specially fond of the underground stem and fruit of *tarur* and *gethi*, as well as the porcupine flesh. They are experts at killing porcupines and the moment they come to know about the presence of a porcupine in a cave, they will not return without killing it Both men and women relish fish and kill them from rivulets with great dexterity. They don't use bows and arrows for big game but rely upon snares, the common trap being a heavy stone poised upon sticks which gives way as soon as the animal approaches the bait. They have killed even tigers by this simple contrivance. Foor deers, they make a common bait by saturating a particular spot with urine. When they see that the deers are drawn at that place by the saline deposit or when the spot has become a salt lick, they erect the heavy stone trap over the spot to fall on the deer.

Death : In the past the *Rajis* used to bury their dead, but now-a-days they practice cremation. The site chosen is always on the bank of a stream. They observe no mourning

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ceremony except that they fast on the day of the death. Next day of the demise they eat rice, instead of other food.

In the past when they used to bury their dead in a convenient place in the jungle, the clothes of the decease and the sheet wrapped on the corpse was laid over the grave with the view of providing clothing to the naked spirit in the next world.

Raji economy : A few years back the economy of the *Rajis* depended entirely upon the forests. But owing the fast diminishing forests, construction of border roads and the State control, these people have now taken upto a primitive type of agriculture on land leased by the forest department. The average land holding of *Rajis* is very small measuring to about 0.81 acre per head. The land which they cultivate is rocky and irrigation facilities are not available to them. As a result the total agriccultural produce meets only two months cereal requirements. Some of the *Rajis* are, therefore, engaged in road and irrigation channel construction. A few of them have also become agricultural labourers. The *Rajis* are used to of starving for two days at a stretch and, therefore, can face any hardship.

Rajis are residing in villages which are not easily accessible and are off from road heads. They still believe in barter economy. The manufactured goods are exchanged with required produce. They make crude vessels out of the wood of *Genti* (गेंटी) tree and exchange them in the villages bordering the jungle, for scraps of coarse cloth and grain.

The *Rajis* are in fact without any permanent basis of livelihood on which they can fall back upon. Their miserable economic condition has endangered their survival. Indebtedness among them is very acute and they are exploited both by the local moneylenders as well as forest contractors because of their ignorance and poverty. Mortality rate among *Raji* children is very high owing to malnutrition and lack of medical and health facilities. Drinking water and articles of daily need are also not available to them. Their dwelling units are inadequate. The U. P. Government under its *Raji* Rehabilitation Plan provided cattle and houses to 40 *Rajis* families in 1983. But out of those Forty, thirteen resorted to their original huts and caves. The reasons behind this retreat were (1) the Government gave them houses but no means of livelihood owing to which they sold the tin and wood of the houses to people outside in dire need; and (2) there is a myth prevalent amongst the *Rajis* that if the head of the family dies, the surviving members should change their residence. □

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Walking Encyclopedia of Himalayan Flora

U. C. Sah

Born on the first day of January, the year eithteen ninetyseven, in the historical town of Almora, Sri Ram Lal Sah spent his childhood in poverty and hardship. Through stipend and scholai rships, he had his schooling. He passed his High School examination in the year 1917. Though interested in further studies, young Ram Lal had to take up the job of a clerk in a local office to support the family. A year later, he was appointed a clerk in the newly established Govt. Garden, Chaubatia, Ranikhet. Mr. Norman Gill, a curater in Royal Botanical Gardens, Sibpur, Calcutta was sent to Ranikhet as Superintendent of the Chaubatia Gardens. Mr. Gill-a keen naturalist-was soon fascinated by the nature and vegetation of Kumaun. He put up several projects of horticultural development and plant resource collection in that area before the Goverment and got them approved. Thus, started a massive plant exploration work in the hills and Tarai-Bhabar area of Uttarakhand under the leadership of Mr. Gill.

The inborn interest towards nature and plants was still alive, though dormant, in young Ram Lal. The inspired leadership of Mr. Gill helped in its revival. Mr. Gill also noticed the keen interest, his office clerk had in plants and, as an able master, he started training him. He taught Ram Lal the morphology and taxonomy of plants and provided him several useful books on the subject. With the passing of the time, Sri Ram Lal Sah emerged into a botanist in his own right. He went on several plant specimen collection tours alongwith Mr. Gill. He was also entrusted with the responsibility of the herbarium maintanance. With his interest, hardwork and devotion, Ram Lal Sah soon earned the reputation as a "walking encyclopedia" of the plants growing in and around Ranikhet. These plants represented the Kumaun Flora as a whole. The plant specimen collected and identified by Sri Ram Lal Sah and Mr. N. Gill were also varified by the experts of the Royal Botanical Garden, Kew, UK. This herbarium was later gifted away by him to National Botanical Garden, Lucknow in 1948. Sri Ram Lal Sah was retired from Chaubatia service in 1951.

After independence, the Govt. of Uttar Pradesh established a new Department of Fruit Preservation in 1953. They were looking for able and expeienced persons to work there. Mr.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Late Sri Ram Lal Sah with his herbarium

V. Sane-the first Director of DFP, sought the services of Sri Sah for the same as Technical Assistant. He finally retired from DFP in December 1956 at the age of sixty years.

His forty-year long association with the vegetation of Kumaun inspired Sri Ram Lal Sah to do a comprehensive book on the plants of that area. This ultimately resulted into a three volume work in English completed in 1962. He himself prepared 412 coloured plates for the book. The book named **Flora Ranikhetensis** describes morphological and taxonomical features of 1384 species belonging to 281 families of plant kingdom. The book also includes chapters on flora and fauna of Nepal himalaya, entomological survey of himalayan region, classification of monocot and dicot plants, synopsis of various orders and families included in the book on basis of Englar and Prantal system, the art of botanical illustrations, plant breeding techniques, etc. His work has been widely acclaimed by many noted personalities in land and abroad, like Justice W.O. Douglas of US Supreme Court, Mr. M.C. Welcer, an FAO expert, Dr. K.S. Waldia, Dean, Science Faculty, Kumaun University, etc.

Presented hereunder is the original Introductory Note (slightly edited) written by late Sri Ram Lal Sah for his yet unpublished work

FLORA RANIKHETENSIS

In presenting this trifle work to the lovers of the plants and the students of Botany, it would be worthwhile to give a short note on the origin of this work, in order to enable them to judge its merits under the circumstances it has been compiled.

The first collection of plants of Kumaon region was made by Sir Richard Strachey and Mr. J. E. Winterbottom, between the years 1846 and 1849. This portion of Himalaya lies roughly between latitude 29°0′ and 31°0′ North and longitude 78°0′ and 81°0′ East and is situated between Kali River along the Nepal frontier on the East and Bhagirathi River leading upto the banks of Ganges River at Haridwar on the West. In 1848 the above mentioned gentlemen undertook an extensive journey to Rakastal and Mansarovar lakes in Tibet, when a large portion of the plants contained in the "Strachey and Winterbottom Herbarium" was collected.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

The original catalogue of this collection, as drawn up by Sir R. Strachey, was first reprinted in Atkinson's Gazetteer of the himalayan districts of then N. W. Provinces Oudh, in 1882 and it was later revised and supplemented by J. F. Duthie (including subsequent botanical explorations by Wallich, Royle, Falconer, Blinkworth, Jacquemont, Edgeworth, Thomson etc.) and was published in 1906.

Of more important contributions to our knowledge of the Kumaon flora, was the work of late Colonel Davidson. R.E. who chiefly collected the plants found in the vicinity of Nainital and presented the same to the Saharanpur Herbarium. During the summor of 1883, Mr. J.F. Duthie carefully explored the Bhagirathi (or Gangotri) valley situated at the elevation between 11,000 and 16,000 ft. During three following summers (1884–86) two, he made extensive tours through the then British Garhwal to North Kumaon and West Nepal, and added considerably to the known flora of this part of the western himalaya.

Mr. Norman Gill, F.L.S. who was curator of the Herbarium in the Royal (now Indian) Botanical Garden, Sibpur, Calcutta was appointed as the first Superintendent of the newly created Government Garden

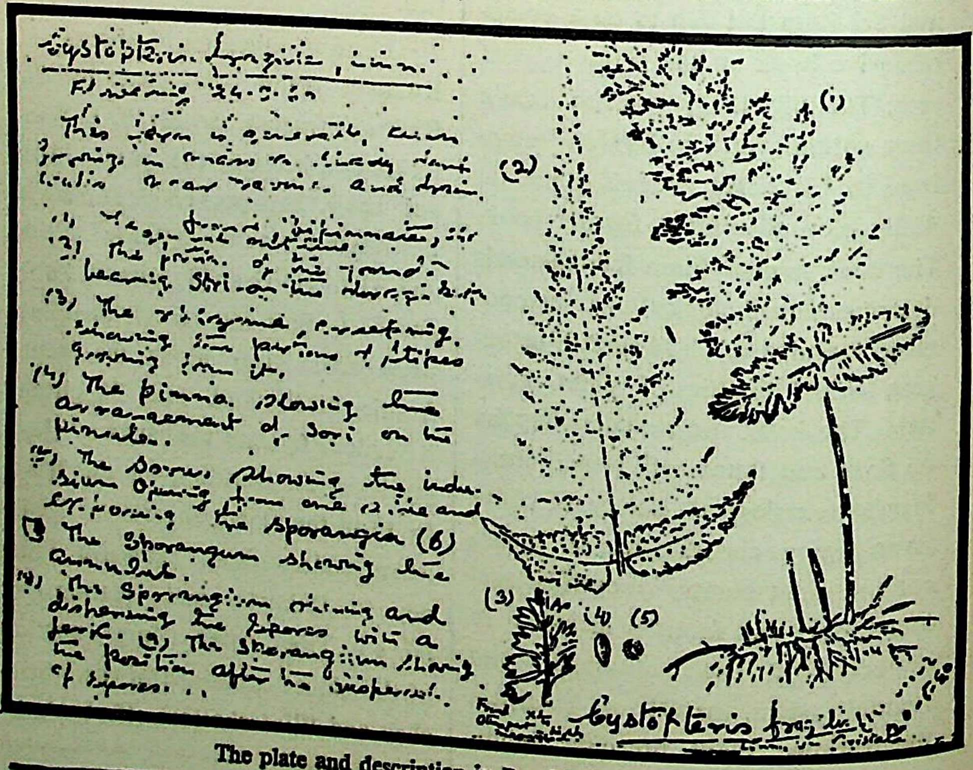

The plate and description in Ramlalji's own hand.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Kumaon, with its headquarter at Douglas Dale, Jeolikote in the district of Nainital sometime in 1909. He was keenly interested in the Himalayan plants and had an idea to explore their economic possibilities. With this view in mind, he started a collection of plants from all the districts of Kumaon, viz., Almora, Nainital, British Garhwal and Tehri Garhwal, as well as those of the sub-Himalayan tracts of Bhabar and Tarai. He established a regional herbarium at Jeolikote. The writer (of this book) had the good fortune to work under Mr. Gill since early 1918 and was entrusted with the care and lookafter of the herbarium. Unfortunately Mr. Gill passed away while on Medical leave in his home country in 1922. The work left by him was maintained and continued by the writer till 19th October, 1948 when the Herbarium was presented to Prof. K.N. Kaul-Director of the National Botanic Gardens, Lucknow for the establishment of a National Herbarium at Lucknow. There it has been preserved with great care along with some fresh collection, which now numbers not less than 70,000 specimens from all over India.

During the course of his studies of the Kumaon plants, the writer felt that some sort of work introducing these plants to all interested persons and students of Botany may be of great assistence. This should be something comprehensive than a mere catalogue or a list of plants. This view was supported by various workers and experts on the line with whom the writer of these pages had the privilege to meet in connection with consultation and advice on Kumaon flora. He was encouraged by them to continue the work. It was originally intended to present the work in Hindi and Govrenment was approached accordingly. But unfortunately the Government regertted that it was not their present policy to publish such a work in Hindi. The writer is not financially in a position to undertake the publication himself and thus the matter ended. But he has the satisfaction that he has done his mite with the meagre resources (almost negligible) he had at his disposal to produce some work however trifling it may be.

To be among the living plants in valleys, glens, cannyons and high pasture lands, with some background knowledge of the present day sciences of Geology and Biology, is a pleasure in itself and it enables one to experience a peace of mind which it is difficult to describe. The adaptation of various kinds of plants to different environments, rendering them to adopt peculiar modifications for the struggle of existence in the environment they have been placed, their association and colonisation, and the ecological transition of occurrence

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

and disappearance of principal species between 1000 and 2000 ft. of ascent of a zone, the rapid growth of plants in regions where winters are long in order to complete their cycle, their dark green foliage and dimly coloured flowers in regions with a longer summer can only be appreciated when one has the occasion to traverse through these regions. It is, therefore, obvious that in the Nature's battlefield, there is no end to the problems that are being created every moment for the inquisitive human mind to keep it engaged, as it would be revealed that each zone has its own story to tell. One would wonder how a Bugyal (high altitude pasture land) flatly refuses to allow seed of a broad-leaf or needle-leaf tree from the surrounding dense forest to take root within its area, as if a protective line has been drawn to prevent the intruders from taking possession of the land, just the same way as prince Lakshman in exile had done to protest princess Sita from the cruel hands of the demons roaming about the dense and lorely forest. There may be a number of solutions to this problem which may be interesting to the intelligent human mind and may add to his knowledge about the behaviour of plant species in these Alpine region.

I do not believe that human intelligence will ever be liable to completely defeat Nature in the creative art. Yet it has the capacity to understand, reveal and appreciate the mysteries of Nature and utilise the same for the benefit of the human race. It is in this context that the writer has tried his mite to put up on record, his observations under odd circumstances in a childish way.

In order to get firsthand knowledge of the plant species in their natural habitat, the writer was kindly invited by Sri V. Sane, Director of Fruit Utilization, Ranikhet (now retired) and to prepare a note on the general trend of flora on the route between Ranikhet (6000') and Milam (11,500 ft), early in October 1953. The main features of this part of the district is a mountaneous zone and a tangled mass of peaks and valleys, a succession of deep gorges, steep and precipitous hill sides and declivities. The altitude from sea level varies from 1000 ft. at the foot of the hills to 22,661 ft. at the summit of Panchachuli, which separates Gori and Dhauli rivers. It may be said that the reversed snowy peaks in great clusters divide the great river basins from each-other, while the smaller groups separate parts of these basins from each-other. The principal river-basin, met on the way, were those of Gomati from Garur to Bageshwar, of Sarju from Bageshwar to Kapkote, of eastern Ramganga, Tejam and Gori from Munshiari to its source Miiam Glacier.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

During the summer of 1961, from mid June to mid August, another trip was made within my own resources to explore Garhwal hills, including Bhundar valley—known as the valley of flowers—comprising of the principal river basin of Alakhnanda, Dhauli Ganga, Mandakani, Kosi, Ramganga and Bhagirathi.

These mountain ranges of Garhwal and Kumaon constitute a part of central Himalaya consisting of the peaks of Badrinath (Chaukhamba), Nilkanth and Kedarnath in the West and Nanda Devi, Nanda Kote, Trisul, Nanda Ghunti and Panchachuli in the East. The main intervening ridges vary between 5000 to 10,000 ft. In this trip a detailed on the spot study of the plants was made, as far as possible, and a collection of plants was also made. It is regretted that for want of proper equipment and facillities, most of the specimens collected from high altitude (by me and my son U.C. Sah) could not be preserved. Whenever an opportunity was available, plants of the lower valleys (between altitude 1000 to 4000 ft.) were also studied which revealed that no stereotyped method in the evalution of plants lies with regard to soil, climate etc. It appears that certainly there ought to be some enimate object within the plant cell that leads the plant species to survive the struggle for existence in the ever-changing physical nature of matter. Thus, human intelligence is more and more baffled in the unacquainted regions he happens to traverse by the new forms, adaptations and modifications; and one begins to feel, in spite of the highest academic degrees he may be holding, the ignorance as to the ways of Nature still prevails the human mind.

It is regretted that the specimens of plants collected could not, for want of funds, be mounted on standard sheets and are just lying in heaps, fixed in waste paper sheets of odd sizes. When Government was approached for help, they simply closed the matter regretting that they cannot grant a maintenance allowance.

As regards the sequance of Families of plants, Banthum and Hooker System (which is generally followed in India) has been adopted, although the writer prefers the system of Engler & Prantal-as the same appears to be more convenient to follow precisely. Each family and genus has, as far as possible, been described in detail for reference, but the species have been noted in short and concise form in order to convey an idea about the plant under investigations so as to enable the reader to refer to more authoratative works for elaborate technical details. This is done for the simple reason that there are so many variations among a

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

group of species that sometimes it becomes a difficult task to determine its proper place in the genus. For want of time at my disposal, no attempt has been made to prepare Keys of Familites and Genera (as it would need suitable literature for reference for which I have got least facilitias). In spite of not being an artist myself, an attempt has been made to illustrate in colour most of the common plants with morphological details.

The under-noted works are the best references for the plants mentioned in Flora Ranikhetensis.

1. **Flora Simlensis** by Col. Sir Henry Callett.
2. **A Forest Flora for Kumaon,** by A.E. Osmaston.
3. **Forest Flora of the Chakrata, Dehradun and Saharanpur Divisions, U.P.** by Kanjilal.
4. **Forest Flora for the Punjab with Hariana and Delhi,** by R. N. Parker (3rd Edn. 1956).
5. **Hand Book of the British Flora** by George Beutham.
6. **Gray's Manual of Botany,** 8th (Centamial) Edn, American Book Co., New York.
7. **Catalogue of Kumaon Plants.** Revised by J.F. Duthia, 1906.

A few words about the title of the Flora would not be out of place here to mention. It is a well known fact that Ranikhet is a beautiful hill station in the lower Himalayan range, as also of the tracts covered by this Flora. The writer has preferred to call this trifle work "FLORA RANIKHETENSIS" as it mostly includes the plants commonly found in Ranikhet Cantonment and its suburbs, although the work is not confined to this locality and covers the whole of Uttarakhand (Garhwal and Kumaon Divisions.) The second reason for naming the tille as Flora Ranikhetensis is that the whole of the compilation work was carried out at my residence in Ranikhet.

In conclusion, the writer would like to mention that the work as such needs complete revision and re-writing before publication, if it is considered worthy of the same. □

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Livestock Production In U. . Hills

S. K. Bhadula

The himalayan hills of Uttar Pradesh display a range of variations in topography, climate, soil, vegetation and livestock, togather with socio-economic and cultural makeup of different communities inhibiting the area. The geographical area of hills is 51.25 sq. km. which is 17.4 percent of the total area of the State. The human population of this region is 48.36 lakhs (1981 census) about 4.3 percent of total population of the State. The poulation density is 95 per sq. km. as against 577 for the State, which reveals that the two hill divisions are sparsely populated. The main occupation (70.6 percent of the total working population) is agriculture. However, as per the existing land-use pattern in Uttrakhand, the total available land for agriculture is only about 15 percent of the total geographical area. The per capita land holding is quite small-about 68.3 percent holdings being limited to one hectare or less. Besides the holdings are scattered, making further dsfficult for the farmer to manage them efficiencly.

Livestock raising systems in various zones of U.P. hills have been different as influenced by local socio-economic conditions, locally available cropping patterns and land-use systems. In the valleys and lower hills, crops are raised as main occupation while the livestock is maintained primarily to support the agriculture and also to provide milk and meat requirements of the family. With the increase in altitude ranging from lower to mid hills, dry land agriculture and horticulture is practiced and the number of animal spenes like sheep and goat increases. In high hill areas, where agriculture is either not possible or uneconomical, a migratory social livestock system is in practice. In this system the families hardly have any spacified land based location, hence they move with their livestock. Majority of them have their base habitations in culster along higher valleys. Their primary activities is sheep and goat raising. A particular class of people in the districts of Uttarkashi and Chamoli locally called "Sauker" have been raising large flocks of sheep along with goats, but most of them are marginal and land–less people. About 100 to 800 heads are owned by most of the owners. These flocks move down to foot-hills and Bhabar areas during the winter for grazing and move up to Alpines (Bugyals) during summer. Migratory Gujjars in areas of border districts of U.P. hills raise exclusively the buffaloes.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Total livestock (Thousands)	Livestock density/ sq/km	Poultry denstiy/ sq/km
Uttarkashi	40	1
Chamoli	54	1
Tehri	97	3
Pauri	124	7
Dehradun	113	25
GARHWAL DIV.	75	5
Pithoragarh	70	3
Almora	135	8
Nainital	72	20
KUMAUN DIV.	87	10

A perusal of table on page 6, 7 reveals that the U. P. hills posses respectively 8, 5, 20 and 10 percent cattle; buffalo, sheep and goat of the State. The ratio between cattle and buffaloes indicates that there are about three times more cattle than the buffaloes is U. P. hills a trend almost similar to the overall Indian situation (while for the Uttar Pradesh it is one buffalo to two cows). At district levels, Pauri followed by Chamoli and Uttarkashi seem to has 4 to 6 times higher proportion of cattle population than buffalo, while Nainital, Tehri and Almora in that order are having little higher population of buffaloes (around half). In Uttar Pradesh the average daily milk yield of cows and buffaloes is 1.64 kg. and 2.92 kg. respectively (1981-82), wool production is 700 gm/sheep/year (1973–74), the per head meat production is 11.15 kg. chevon, 12.78 kg. mutton, 36.98 kg. porks and 91.81 kg. beef (1970–71) and the egg production in the State is 111 eggs/hen/year (1975-76). There production averages are much higher than those obtained from Garhwal and Kumaun hills. The Terai and Bhabar areas of Nainital, Bhabar of Pauri and Doon valley of Dehrndun districts are however well off in agriculture and livestock productivity. Tsese areas have good specimens of Murrah and also of Nili-Rar buffaloes which are usually higher yielders of milk and regular breeder. Similarly the well to do farmers in these areas raise crossbreds as well as pure exotic dairy breeds like Jersey, Holstein-Friesian, etc. The main reason of such a happy situation in these areas

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

is the quality soil, availability of irrigational facilities and in certain cases mechanization of agricultural operations which ultimately contributed their enhanced socio-economic status. However, the cattle type in hills is typical to its argro-climatic situation, a short statured local type with distressingly low yield and irregular breeder. In valleys and very lower hills some farmers raise buffaloes which seem to be the admixture of Murrah, Nili and Bhadawari breeds.

Livestock species like cattlle, buffaloes, sheep, goat, mules and, to a lesser number, horses, ponies, pigs also poultry are usually raised in U.P. hills. The livestock raising, by and large, is done as a subsidiary occupation by the hill farmers mostly to meet out their draught power for the fields as well as meat and manure requirements. The typical features

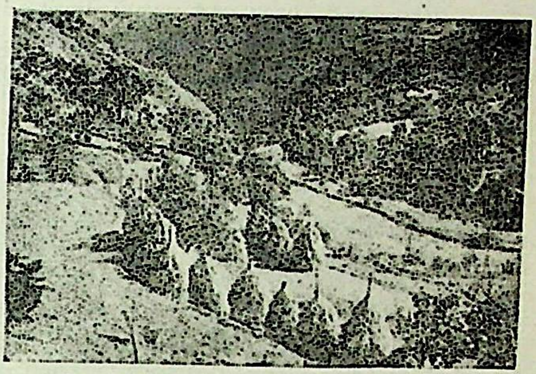

Dry fodder storage for cold times

of livestock species of U. P. hills are poor body growth and size, slow maturnity, higher age at first calving, lambing or kidding, lesser milk, and meat production, lower energy output per male animal at the time of performing agricultural operations and high mortality rate.

Poor Productivity : The main factors responsible for overall poor productivity of the hill livestock may be summarized as :

(a) Poor genetic potential.

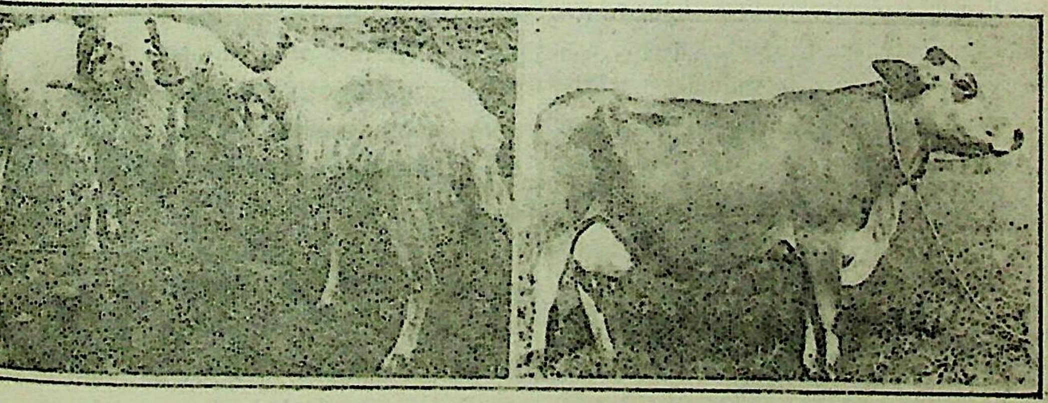

Improved livestock show promise

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(b) Inadequate and poor quality feeding.

(c) Poor management, and

(d) Negligible veterinary aid.

In the given situation of small and scattered agricultural holdings and want of irrigational faclities in hills it is not possible for a hill farmer to grow green and leguminous fodders for their livestock. There are almost negligible facilities, specially for flunged rural areas, for perventive and treatment measures against diseases. Present veterinary hospitals are hardly of any advantage to majority of livestock owners in rural areas.

Despite the constraints mentioned above, a few healthy developments are being noticed. The increase of milk, meat and wool has consequently increased the cost of these products making farmers aware of their importance. Some of local livestock owners, either of their own experience or through acquired new know-how are gradually taking to improved methods of breeding, feeding and care of their livestock. In valleys and lower hills with irrigational facilities, resourceful farmers have started raising buffaloes and highyielding crossbred cows. For want of assured nearby market and transport facilities, much of the milk is consumed in the family or sold to the nearby shopping units mushrooming all along the motor roads in the hills. In mid (1000 to 1500 meters above sea level) and high (1500 to 2500 meters above sea level) hills the farmers mostly raise more than one species, a few heads of cows (5–10) and a pair of bull, one or two heads of buffaloes and/or 5–10 goats and/or sheep.

In very high hills (7000 to 9000 ft) and alpine (Bugyal) area (over 9000 ft) in border districts (particularly of Garhwal) it has been observed that the **Marcha** raise large flocks of sheep and also gotats, whereas the **Gujjars** raise large herds of buffaloes and a few mules. For most of them, the livestock raising is fulltime occupation. State Animal Husbandry Department at their sheep breeding farms, established about over two decades back at Pashulok (Rishikesh), Pipalkoti, Kedarkantha, etc; had taken up a few projects of pure breeding of some exotic, fine-wool, sheep breeds like Polwarth, Merino and Rambonillet and also their crossbreeding with local breeds. As a part of strategy, these farms distributed crossbred (F_1) rams to the sheep raisers in the nearby areas for breeding purpose to bring genetic improvements in their flocks. This seems to have made a great impact as today we find most of their sheep having Polwarth and a very few Merino or Rumbonillet blood; thus producing a finer quality of wool with relatively

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

better yield. It appears that they have been prefering Polwarth over Merino and Rambonillet.

Needless to say, the present day land-use-pattern in hills is quite unsatisfactory. Livestock are blamed for much of the loss of ground cover and soil erosion. This is because of the overgrazing of limited grassland resources as compared to relatively large population of livestock and other animals. Bullocks are the main source of draught power in the hills and a pair of bullocks is maintained by almost every family in the villages. The bullocks are used for about 3–4 months in a year but must be maintained round the year. There is a tendency for surplus bullock power to get accumulated and their strength increased. Of late, in some villages custom service for making bullocks available on payment is emerging, which-if encouraged-may rationalise the bullock power availability and requirement Horses, ponies and donkeys are the important transport means in the lower medium hills, but beyond 9 thousand ft. the main beasts of burden happen to be yak and goat.

DEVELOPMENTAL PROGRAMMES : Crossbreeding of indigenous cows with the exotic bulls has been taken as the standard approach to livestock development in hills. This programme aims primarily at increasing milk production. The crossbreeding programme, which is in operation for over two decades now has met with a little, rather no success. The half of the fund allotted to animal husbandry sector in the Sixth Five-year Plan i.e. Rs. 3 crores, were exclusively for crossbreeding purposes (Jackson, 1983). In an earlier study (G. B. Pant University, 1982) conducted in Dwarahat block of district Almora, it was found that no farmer owned any crossbred bullock for agricultural operations and there were only 8 percent crossbred cows yielding about same milk as buffaloes. Farmers were prefering buffaloes over crossbred cows as milk animals in that area, indicating that cows are primarily kept to produce draught power. Livestock census of 1982 in the Almora Tehsil has shown 0.3 and 2.7 percent crossbred bullocks and cows, respectively (Jackson, 1983). In another study of three mid-altitude Himalayan villages, it was observed that no household owned any crossbred bullock and there were only 3 crossbred cows, one in each village. Male crossbred calves are allowed to die young, like buffalo male calves, because farmers do not consider them of any use in farming practices. The question why crossbreeding compaign in the hills has failed can thus easily be answered. Under existing conditions of feed scarcity how will a large animal imported from European countries

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

be able to convert the feed and fodder better than the animal already existing in the area The answer to this question lies in the land-use system of the hills. There is no land to be spared for raising livestock; and it is a bare fact that crossbreds can not thrive without adequate supply of leguminous fodders as well as concentrates, grains and cakes. Farmers in the hills need a more hardy species and for that, indigenous cows are more suitable.

Dr. S. L. Shah (Multilevel Planning and Strategies for Agricultural Development 1982), while analysing the existing and optimum situations with respect to animal husbandry enterprise, observed that in the optimum plan local milch cows and local hill buffaloes have been completely eliminated. Jersey crossbred cows were also found to be non-competitive with Murrah buffaloes. It is found that Murrah buffaloes are the most economic dairy cattle in mid-Himalaya (1000 to 1500 meters) considering the constraints of green fodder, concentrates and labour at the present level of technology for the dairy enterprise.

Grazing Pressure : Livestock in hills are inadequatly fed and poorly managed. Some natural grasses as available from already degraded grazing land and forest area. Tree leaves are the only prominent green fodders for livestock, contribuiing nearly 60 percent fodder requirements, while the remaining 40 percent is met through by-products of agricultural crops i. e. dry fodder mainly bhusa and straw (Bhadula, et al. 1985). It indicates the importance of public land and forests as livestock feed resources in the hills. The dismal picture of livestock feeding in the area is so that in each village the requirement is much more than the actual availability of fodders. On an average there is a deficit of 31.11 percent of fodder per village (Singh, 1985).

The open grazing practice which is in operation for centuries is a primary cause of environmental degradation in the hills. In three districts of Kumaun the reported grazing pressure is on an average, 6.42 cattle units per ha, indicating that grazing pressure in the Kumaun region is three times over the actual carrying of the grasslands (pandey et al, 1982; Singh and Bhadula, 1984). Grazing pressure in the districts of Garhwal Himalaya (Gupta, 1983; Singh and Bhadula, 1984) is as follows Chamoli 8.010; Pauri, 3.324; Tehri 5.489; Uttarkashi 2.000 and Dahradun, 6.595-the average being higher than the actual carrying capacity of community lands.

No data are available separately on the grazing incidence on various types of grasslands and forests in the Himalaya region. A study conducted

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

in three mid-altitudes villages in Almora district by Singh (1985) reveals that the grazing pressure at certain places is as high as 10 times over the carrying capacity of the grazing land (Table below).

The uncontrolled over-grazing results into altered species composition, tree seedlings of palatable types are destroyed as also the incidence of soil erosion is increased. Thus the piece of land is ultimately left barren with almost zero level of productivity.

Few strategies for Improvement : Improvement of livestock productivity under prevalent conditions of U. P. hills has to be viewed mainly from the land-use system as followed in the region. This needs modifications to harvest maximum profit per unit of land or, without disturbing the local eco-system. Animal husbandry has to remain as the other important component of agriculture in hills. In fact plans for improving the overall socio-economic conditions of U. P. hills have to be based on complete integration of crop husbandry, animal husbandry, horticulture and social forestry disiplines, with combinations of any two or more components suited to different areas depending on altitude, availability or non-availability of irrigation facilities, soil type, etc. The following main points may be considered while formulating plans or strategy for future.

(1) Rejuvenate and regenerate through afforestation with suitable fodder trees and plantaticn grasses of already denuded village panchayat or community grazing land as well as civil & soyam forest areas, with full participation of the local people. Gram Panchayat, Van Panchayat etc. may be trained and mobilised to create strong public opinion in effectively carrying out sueh schemes.

Grazing pressure (Cattle unit per ha) on the grasslands of various villages (Source : Vir Singh, 1985)

Village	Total available area for grazing (ha)	Total cattle units	Grazing pressure
Bijepur	105·40	621.6	5.90
Dairi	45.64	396.8	8.69
Hat	45.91	1001.65	21.82
Total	196.95	2020.05	36.41
Average	65.65	673.35	10.26

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(2) Scientific and systematic approach may be made to reduce the ever increasing uneconomical animals, particularly the bullocks, and thereby reducing the grazing pressure in hills. If farmers are to adopt controlled grazing and stall feeding, then the crossbred cows (local high yielding cows and Jersey bulls) are likely to prove economical. Buffaloes mainly of Murrah breed may be raised particularly in valleys and at lower hills, the state animal hus bandng depantment may establish the grass lands-cum-fodder demonstration farms to act as nuclei for providing improved fodder varieties seeds and cuttings at nominal prices alongwith necessary package of Practices.

(3) Identification of high yielding cows and shebvffaloes and establishment of "bull mother farms" at suitable locations in hills. Deep frozen semen bauks/stock may be established at major and central places to procure, store and make available the potential male germplasm of outstanding bulls of improved breeds in the hill region. All the young males not required for breeding must be bastrated.

(4) Subsidies and aids may be given only in kind and not in cash, to interested and needy farmer only. However, this may be done based on the available or otherwise provided infrastructure mainly [the animal shed, fodder and feed, etc.

(5) Women are the backbone of hill agriculture economy, hence women oriented training programmes need be emphasised. Lady Subject–Matter–Specialists may be trained and employed to educate the hill women in improved methods of animal husbandry as well as for collecting information.

(6) The nutritive value of conventional roughages like crop residues have low roughage value & it could be improved considerably by treating them with urea (increasing the nitrogen content of the straw from 0.5 to 1.5 percent). The method is cheep, easily available and free from any pollution hazards.

(7) The high yielding varieties of promising forage crops and fodders may be encouraged in the cropping pattern in areas having improved quality of livestock.

(8) Housing and management in village conditions in hills is not adequate and proper. The animal houses should be properly designed and located so that these may get direct sunlight and are safe from winds. The design and construction may be based on the locally available and cheap resources.

(9) Adequate provision must be made for proper and timely control and prophylactic measures to be taken to protect the livestock and poultry from parasitic, bacterial and

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

viral diseases. Livestock owners should also be made aware of toxic effects on animals of different chemicals used in agriculture.

(10) There is great potential for the development of sheep and goat for ever-increasing demand of mutton, chevon, wool and goat hairs. The hilly terrain and alpine pastoral conditions suit them. The present stock may be improved either by selective breeding, grading up or cross-breeding with some suitable exotic breed like Merino, Rambonillet etc. in sheep. Stud rams and bucks of improved breeds shold be distributed either free or on nominal charges and easy terms amongst sheep and goat raiser families for the upgrading of their animals. As is the practice in hills, the flocks migrate during September–October downwards and February–March upwards during which generally the shearing is also caried out. On migratory routes the State Animal Husbandry Department may setup service centres to take up systematic and integrated programmes of vaccination, mass drenching and dipping, shearing, grading and marketing of wool to alleviate the difficulties of the nomadic shepherds. Interested spepherds and farmers may be encouraged to raise Pashmina and Angora goats.

(11) Dairy/milk producers cooperative societies may be encouraged in potential dairy areas and/or milk sheds around growth centres or towns in hill areas to take up the responsibilities of providing with the help of State A. H. Deptt, the following assistance to the livestock owners :

(a) Procuring and supplying fodder and balanced feed,
(b) Animal health cover,
(c) A. I./natural service facility,
(d) Dairy extenslon and training,
(e) Marketing of milk and milk products,
(f) Purchase/procurement, supply of dairy type cattle, etc.

(12) Hills provide ample scope for fur-animal development. Angora rabbit farms to meet both fur and meat demand may be established initially with the help of State A. H. Deptt. Bucks and also does (adult females) of some exotic rabbit breeds like New Zealand White, Russian Giant, Grey Giant, Angora may be imported, multiplied and distributed among the hill farmers alongwith suitable and balanced feeding and management package of practices.

(13) Hill terrains are difficult to negotiate with common available transport resources in most of the hill areas. Emphasis may be given to take up donkey and poney improvement programmes. Horses and mules as means of hill transport and communication need be given due consideration for their overall improvement. Research and developmept

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Districtwise livestock and Poultry Population in U. P. hills Uttar Pradesh and India (1978 livestock census)

Area	Cattle (Thousand)	Buffalo (Thousand)	Sheep (Thousand)	Gost (Thousand)	Pigs	Horses & Ponies	Mules	Ass	Yak	Poultry (Thousands)
Uttarkashi	110.23	32.59	100.30	73.30	490	1,077	850	11	301	5.48
Chamoli	232.48	57.20	95.42	107.39	13	897	668	73	99	7.10
Tehri	189.88	101.99	33.73	100.83	374	1,163	1,201	—	—	12.09
Pauri	374.83	64.51	42.91	189.09	144	717	277	12	—	40.57
Dehradun	163.90	45.55	40.95	92.10	3,332	2,499	723	55	—	77.08
Garhwal Div.	1071.30	301.48	313.31	562.71	4,433	6,353	3,719	151	400	1,42.32
Pithoragarh	310.38	95.81	58.69	158.10	122	1,787	350	18	8	29.66
Almora	366.96	151.57	31.39	172.96	79	1,266	276	1	138	44.84
Nainital	278.90	149.44	1.99	54.66	2,180	4,318	353	338	—	139.18
Kumaon Div.	956.24	396.82	92.07	385.72	2,381	7,371	979	357	146	2,13.87
U.P. hills	2027.56	698.66	405.38	948.43	6,814	13,724	4,698	508	546	3,56.19
Uttar Pradesh	25793.34	13964.75	2058.88	8462.24	16,15,928	20,3,409	37,050	1,99,611	546	5497.52
India	1178.341.00	57426	39993	67518	6896000	942000	75000	994000	44000	—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

List of various veterinary centres and livestock farmers in eight districts of U. P. hills (1978–79).

	Uttar-kashi	Chamoli	Tehri	Pauri	Dehra Dun	Garhwal Division	Pithora-garh	Almora	Nainl-tal	Kumaun Division
Vety. hospital	6	9	13	17	10	55	8	21	29	58
'D' class Dispensery	–	–	–	–	2	3	–	2	5	7
Vety. Dispensary	23	52	38	48	21	182	47	59	129	235
A. I. centre	1	1	2	2	2	8	2	22	19	43
A. I. Sub centre	3	4	8	8	15	38	3	6	114	123
Poultry farm	3	6	1	1	2	13	4	2	1	7
State sheep & wool extension centre	6	3	6	8	8	31	3	9	–	12
Sheep farm	2	3	2	--	2	9	2	2	–	4
Livestock farm	–	–	–	–	1	1	–	–	–	–
Ram centre	8	12	–	–	–	20	10	–	–	10
Deep freeze centre	–	–	–	–	–	–	–	1	–	1
Semen collection centre	–	–	–	–	–	–	–	–	1	1
Pig Per block	–	–	–	–	1	1	–	–	1	1
Bull	1	1	2	2	5	11	2	7	13	22
Buffalo bull	1	1	2	2	2	8	–	–	13	13

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Annual availability of fodders (on drymatter basis) from public land/forest and cropland (Source Vir Singh, 1985)

Village	Dry–matter prodnction (q)		Total dry matter production (q)
	Public land/forest	crop land	
Bijepur	6075.22	3602.26	9677.48
	(62.78)	(37.22)	(100.00)
Dairi	3638.76	1664.47	5303.23
	(68.61)	(31.39)	(100.00)
Hat	8016.88	3788.55	11805.43
	(67.91)	(32.09)	(100.00)
Total	17730.86	9055.28	26786.14
	(66.19)	(33.81)	(100.00)
Per village	5910.29	3018.43	8928.71

Note : Figures in parentheses represent percent of total drymatter production.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

programme may be initiated on yak as the main beast of burden at higher hills.

(14) Acquatic resources in hill areas have tremendous potential to be developed for pisciculture both for supplementing the food as well as a sport of tourist interest. Cold streams and lakes in high hills and ponds, tanks and reservoirs at medium to lower hills may be exploited profitably by developing cultute fisheries of Trout and Snow-Trout, Indian Major Carps, Chinese Carps and European Common Carps. It is desirable to undertake hydographic surveys of water areas suitable for pisciculture in hills and to train the conceined staff and local progressive farmers in the cold water fishery techniques.

(15) State veterinary hospitals and dispenseries may be strengthened wherever required and the new ones may be opened in areas where there is none so far. In hills it is not practical to fix uniform norms for opening of new units in far flung areas. So.ne of these units may be opened at higher altitude grazing areas or aloe pastures.

(16) The possible fields of studies that may be taken up by various research institution is Uttarakhand region can be as under :

1 New economically sound and ecologically feasible land use systems for different areas and attitudes and place of animal husbandry in those systems.

2. The optimum economic unit of a particular species of livestock and poultry for a particular unit of holding in a specific situation/location.

3. Extent of utilization of potential holding, family labour, livestock and poultry, and ways to increase the same for higher overall returns. Increase in income in a mixed farming from livestock and/or poultry.

4. Optimum proportions between fodder production from a fixed area of land under grass and fodder tress, numbers of species-wise animals that can be properly maintained and area which can be used for cultivation and/or horticulture. Based on these estimates to determine the surplus or deficit of livestock and excess or deficit of cultivated and pasture land.

5. Rejuvenation of alpine pastures (Bugyals) and community grazing land areas Determining the number of animals of different species, breeds or types per hectare of kind of pasture maintainable under alternative system of pasture management.

6. Migratory grazing, intensity of grazing, socio-economic conditions of nomadic shepherds (or 'Sauka') and Gujjars. □

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Jamrani Dam For Economic Revolution In Nainital Bhabar

R. Anbalagan and B. K. Tripathi

The bhabar extends in form of a narrow belt, about 15 Km. wide, running parallel to the outer Himalaya, at its foot hills. It lies between the elevations 440 m aud 305 m above the mean sea level. The bhabar terrain comprises of highly unsorted material consisting of big rock blocks derived from the Sivalik range, mixed with clay, sand and gravel, with a thin layer of top soil.

Haldwoni, the Gateway of Kumaon, is located in the centre of this belt, with a population of about 0.95 lakh. However, the bhabar area is undergoing rapid industrialisation, leading to fast population growth. In the rural bhabar area, the limitation of water availability for irrigation especially during summers, has led to declining of the agricultural output over the years. Within a decade, the growing water demands for domestic and industrial uses, it is envisaged, will seriously hamper the agricultural growth.

Hence, no developmental activity can be considered success, unless the very basic water requirements of the common people are not met with. On the other hand, excessive water consumption due to increased industrial activities may even deprive the people of their already available meagre water resource. A close look at this vital problem will bring out the shear necessity of a potential storge scheme to augement the water resources of the area, to lay the foundation for a balanced intergrated development of the area.

AVAILABLE]. WATER RESOURCES : The extremely unsorted material of the bbabar area, having no well-deined, confining layer at shallow depth, has a very limited ground water potentiality. The investigation have indicated the ground water table to be as low as 125 m or so. Further. the fluctuation of the water table during the operation of the tubewells may be high due to unpredictable changes of the aquifer conditions. As such, the tubewells will not be able to provide a permanent solution for the enormous water demands of the area.

The Gola (river) water is the only available source of surface water in Haldwani and its vicinity. The other stream courses flowing

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

through the rural bhabar area from the Sivalik hills are generally dry during summer season. As such, a vast area of Nanital bhabar in the vicinity of Haldwani is almost totally dependent on the Gola water for its water requirements during summer.

The disharge of the Gola river generally varies from a maximum of 100 cumec to a minimum of 2.5 cumec over a year. The lowest minimum discharge of 1.08 cumec recorded in April 1983, as compared to a minimum discharge of 2.8 cumec recorded duringa reportedly very dry year of 1927, is indicativer of the fact that the water availabilityduring summers is getting diminished over the decades. This can be attributed to increased water utilisation in the upper reaches of the Gola catchment.

Due to special incentives offered by the Government for development activities in hill areas, there has been a tremendous growth in industry as well as population in the upper reaches of the Gola catchment-especially around Bhimtal. In addition, there has been increased agricultural activities in the region too. As a result, the water requirements in these areas have been steadily increasing, and consequently reducing the water supplies to the Gola barrage at Kathgodam–esecially during the lean seasons.

THE WATER REQUIREMENTS :

Water demands in Bhabar area can be categorised into irrigational, domestic, industrial and defence needs. A detialed study of these requirements indicates that the presently available resources are just sufficient to meet them, though the irrigational demands suffer greatly during lean seasons. Under such conditions, it is imperative on the part of the planners to consider judiciously the growing water demands for a balanced future development.

Domestic water needs are a function of population density. The population of the Haldwani town–ship and the surrounding rural bhabar belt has been growing at rapid rate. If past is any indication the population of Haldiwani (which was only about 25,000 in 1951 and 0.95 lac at present) is anticipated to reach 1.5 lac by the century. Similarly, the population of the rural bhabar area, which was about 18,000 in 1951, has reached 63,000 in 1981 and is expected to exceed 1.01 lac by the the turn of the century. Proportionately, the water demands for domestic uses will also increase (Table-on.10).

There has been a sudden spurt in the industrial growth of the area due to the greater concesions provided by the Government. while there are three large and medium scale industries including the H. M. T.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Watch Factory at Rani bagh, there are about 369 small and tiny industries located in the bhabar area. The Action Plan for industrial development from 1985-86 to 1989-90 for Nainital District, envisages to set up 13 large and medium scale as well as 1071 small and tiny industries in the areas. It is estimated that the present industrial water requirements forms about 10 and 5 percent of the total water requirements in Haldwani and rural bhabar areas respectively (Table-below) the other major demand is for the defence purposes.

Future Water Requirements fot Haldwani-Kathgodam Township and Rural Bhabar Area (U. P. Jal Nigam, 1986)

Water Requirements (Million Liter per day)

Purpose	1990	2005	2020
Urban Area			
(a) Domestic	20·0	28·0	40·0
(b) Industrial	2·0	2·8	4·0
(c) Defence	1·0	1·4	2·0
Total	23·0	32·2	46·0
Rural Area			
(a) Domestic	11·5	15·9	21·5
(b) Industrial	0·6	0·8	1·1
Total	12.1	16·7	22·6
Grand Total	35·1	48.9	68·6

Unfortunately, the water demands of the rural bhabar area for agriculture water were never seriously considered in past. However, the capriceous water supply in the area for agricultural uses, during lean seasons has imposed severe limitations in adopting economic cropping pattern. Logically, the government also has purssued a policy of laying greater emphasis on drinking water rather than for irrigation, since the days of British rule, to effectively use the available water resources. But in spite of the lowest priority given to agricultural sector, the irrigated area in the proposed Jamrani dam command has increased from 6239 hec in 1927 to 16040 hec in 1983.

Considering the minimum discharge of 1,08 cumec during the lean season, it can barely meet the water demands up to 1990. This does not include irrigation needs. The situation will be explosive in about a decade, if planners do

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

not implement schemes to augement the water resources. If the reality of basic necessity of the future water demands are not considered judiciously to lay the foundation for an intergrated balanced development of the area, it will lead to such serious consequences as water famine and will then be difficult to rectify. If our planners and politicians are really concerned about the welfare of the common people, their attention should be focussed on this vital problem, affecting our soeiety, to the grass root level.

THE REMEDY :For the augmentation of the only available potential water resource in the area, a storage scheme has already been finalised and needs only to be implemented without delay. The investigations of the Jamrani Dam, being carried out since 1971, have firmly established the feasibility of the project. The 130 m high concrete dam, envisaging a storage of 201 million m^3 of water, is located on the uptream dipping lower Sivalik rocks. The foundation conditions, the capacity of the reservoir against leakage possibilities, the sedimentation problem of the reservoir and the other problems related to the project were studied in details. No major hurdle in the technical competency of the project is envisaged. (Anbalagan, Ph. D. thesis, Kumoun University, 1986) The 140 crore projects proposes to irrigate an additional area of 64,500 hec besides solving the acute water demands for domestic and industrial uses.

The adverse environmental implications anticipated due to the construction of the Jamrani Dam have also been examined critically and will probably be the minimum as compared to the other on-going dam prjects in the Himalaya and elsewhere in the country. The Jamrani dam will not submerge any motorable road or important town/village. The number of people to be rehabilitated due to water impoundment is only 1190 from 13 small villages (1983). It is a very small figure compared to 1,50,000 people displaced due to Navagam dam, 72,000 people due to Tehri dam and 16,000 families (at least 4 to 6 persons per family) due to Pong dam (Valdiya, K. S., Environmental Geology, 1986).

The 4.5 Km^2 water spread of the Jamraui reservoir would submerge about 1.76 Km^2 of reserved forest, which may have to be compensated by additional plantation around the project site. However, there are no endangered or threatened species of plants or animals which would be affected by the project. The project will create an additional annual revenue of Rs. 3.3 million through pisicultre developments. The Jamrani dam and reservoir will create a boom to the tourism industry

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

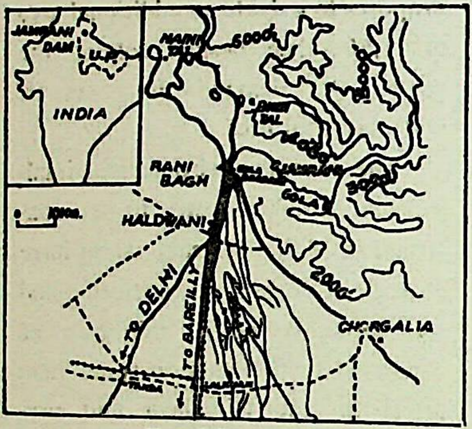

Site of Jamrani Dam

because of easy accessibility and greater attractions,

The implementation of this storage scheme will ensure regular water supplies to meet the growing domestic, industrial and agricultural demands of the area, which is basic necessity for achieving an economic revolution throughr apid development activities. Though presently the dam is mainly edvisaged for irrigation purposes, it may become secondary before the turn of the century when it will be the soul of millions of people of bhabar area, serving their basic need of water supply.

The project during its construction is estimated to generate about 3.3. million mandays of skilled and unskilled works. The steady and fast progresses in industrial and agricultural sectors, after the project inplementation, would mostly solve the widespread unemployment problem prevailing in the area.

The Jamrani Dam, a symbol of the future economic revolution in bhabar area, should not be viewed as a commercial project, but should be considered as a development-oriented project, because of its greater impact on the improvement of the socio-economic conditions of the common people. In this context, it may not be out of place to mention that the reservoirs such as Dhora, Baigul, Baur, Haripura, Nanak Sagar, and Tumaria as well as Sarda Canal Headworks are located close to the southern fringes of the bhabar belt, but serve the needs of mostly the Tarai or/and the areas further down. No such schemes are in operation for the benefit of the Bhabar area. It is high time that the reality of the basic problems concerning the whole population of the bhabar, gets its long due priority in the minds of our planners. □

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Agroecosystems of Uttarakhand : An Ecological Analysis

Uma Melkania and N. P. Melkania

The Uttarakhand supports three basic farming systems, all of which are livestock based and responsive to the stipulations of climate, topography and resources of the regional environment. These are livestock farming, mixed livestock-crop farming and mixed crop-livestock farming. They constitute a spectrum of economic activity, rangingfrom nomadism to setlled domestication. Broadly the entire agricultural region upto 4200 m. elevation can be classified as (1) the lower or outer hill zone including bhabar and tarai (< 1250m) area with tropical and subtropical climate, (2) the middle or central hill region (1200–1850m) having dry and warm temperate climate and (3) the higher or inner hill zone (> 1850m) with cool temperate environment followed by sub-alpine region. The demographic and land use features are enumerated in Table 1.

According to the Agricultural census report of U. P. (1978–79), the agricultural land (13.21% of total geographical area) of Uttarakhand can be classified into the following :

(i) Cultivable waste land 5.98%

(ii) Current fallow land 0.35%

(iii) Other fallow land 0.59%

(iv) Net area sown 13.21%

(v) Irrigated area to net area sown 25.49%

Agro-Crops and Cropping Patterns : The cultivation in a year is grouped into Rabi or winter (late October to May) and Kharif or monsoon (late May to October) crops. The various crops grown in the area are as follows :

(a) **Rabi crops** : Wheat (**Triticum aestivum**), hulled barley (**Hordeum vulgare**), hull-less barley (**H. himalayanse**), mustard (**Brassica compestris**), toria (**B. compestris var. glauca**), gram (**Cicer arietinum**), pea (**Pisum sativum**) and lentil (**Lens esculenta**).

(b) **Kharif crops** : Paddy (**Oryza sativa**), minor millets [mandua (**Eleusine coracana**), mandira (**Echinochloa frumentacea**), kauni (**Setaria italica**), cheena (**Panicum miliaceum**)], preudo-cercals amaranth (**Amaranthus** spp.), uggal (**Fagopyrum esculentum**), phaphar (**F. tatpricum**), gahat (**Dolicos biflorus**), urd (**Phaseolus mungo**), bhat (**Glycine soja**), soybean (**G. mox**), gruns (**Phasaolns angularis**), rains (**Vigna sinensis**), bean (**Phaseolus vulgaris**), maize (**Zea mays**) and til (**Seasamum indicum**).

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Table 1. Demographic and land-use features of Uttarakhand

Particulars	Values	
	Uttarakhand	U. P. State
Population in lacs (1981)	48.36	1108.62
Percentage of population (1981)	100.00	
Density of population sq. km. (1981)	95.00	377.00
Literacy percentage (1981)	38.98	27.40
Growth rate of population (1971–1981)	+26.42	+25.49
Percentage of urban to total	100.00	
Urban hill population (1981)		
Main workers to total population	35.32	29.13
Reported area (000, ha, 1978–79)	5281.41	29808.755
Percentage of net area sown to Total reported area (1978–79)	13.21	58,65
Percentage of net irrigated area To net area sown (1978–79)	25.50	50.86
Percent intensity of cropping (1978–79)	160.12	139.01
Consumption of fertilizers (kg ha^{-1}; 1978–79)	27.73	45.33
Total food grain production (Tons; 1978–79)	1197228	23107728
(i) Cercals	1177427	20743113
(ii) Pulses	19801	2364615
(iii) Oil seeds	8331	375162

Source : Population Census Report 1981 and Uttar Pradesh Kc Krishi Aankare, 1978–79.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

With regard to weeds, 39 and 102 weed species have been reccorded in rabi and kharif crops, respectively (N. P. Melkania and J. S. Singh, 1983. **Indian J. Weed Sci.**, N. P. Melkania, 1983. **Indian J. Weed Sci.**)

In bhabar and tarai region, cereals (wheat, paddy) are major crops where as in hill region principal crops are mandua (rainfed areas) and paddy (irrigated region) in kharif and wheat and barley during rabi season. Nearly 90 percent agriculture of hilly region is rainfed. The most frequently used crop rotation for rainfed (upland or upraon) areas is paddy-wheat-Mandua-Fallow, i. e., three crops in two successive years in the low and mid-hill zones. In areas above 2700 m elevation monocropping is practiced. The tribals (Bhotias or Marchas) practice transhumance, therefore, the mode of domestication is semi-nomadic. The cropping patterns are : (i) amaranth (May-September)–fallow (October-April)-phaphar (May-September), and (ii) phaphar (May-June to September-October, I year)–hull less barley (May–June to September-October, II year) [N. P. Melkania, 1982. Report on the surveys and germplasm explorations in the Indo-Tibet border regions of Kumaon Himalaya].

The average intensity of cropping in 1978–79 was 160.12 percent and is more in high hill zone then the low and mid hills. Mandua is mix-sown with legumes; where as wheat is mix-sown with rabi pulses and oil-seed crops as well. According to J. P. Tandon (1976, **Uttrakhand Bharti**), the cropping intensity in mid hills can be raised to 200 percent if the practice of planting paddy in March can be eliminated. Some early maturing varieties of paddy yielded as high as the March/April planted crop even when sown with the normal onset of rains (June-July) Further, the fields can still be vacated well in time for next (rabi) crops.

Inclusion of a leguminous crop in place of fallow will tend to elevate the fertility of soil and production potential of cultivation. Some of the rotations being recommended are : mandua/ soybean——wheat / lentil-—paddy–wheat/lentil (4 crops in two successive years). Even three crops in a year are possible during favourable years, if the early maturing cultivars are used.

Fertilizers and Manures) : The hill farmers use predominantly the organic manure. Use of fertilizers is very limited (average 27.73 kg ha^{-1} during 1978–79). With the present shortage of fertilizers in the country, it may be useful to maintain the existing levels by utilizing green manures. It has been calculated that is mid-hill zone 100 q. of kudzu (**Pueraria thunbergiana**) leaves and

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

vines added to soil are equivalent to about 150 kg of nitrogen, 40 kg of phosphorus pentaoxide and 75 kg of potassium di oxide (Tandon, 1976). This means that except for phosphorus penta oxide, almost all the requirements of nitrogen and potassium can be met by adding this material to soil. This vine can be sucessfully grown even on rocky and slopy terrain by cttings or seeds. This can be used as a green leaf fodder and also to prevent soil lossers due to erosion.

Production Potential and Existing Management : Information on area, production and field of predominant crops is presented in Table 2. It is generally agreed that the hill regions of Uttarakhand do not produce sufficient grain to maintain the population for more than 6 months in a year and for the rest it has to be imported. The possibilities of increasing cultivated land are very rare. Althongh there is more total land holding in hills (1.35 ha/person), compared to plains (0.30 ha/person)

Table 2. Agro production and average field of principal crops Uttarakhand (Based on Agriculture Census Report, 1978–79)

Crops	Area (ha)	Percentage area under different crops	Production (m tons)	Average yield (q/ha^{-1})
CEREALS				
Wheat	359386	35.62	450161	12.53
Paddy	261722	25.95	406911	15.55
Barley	40735	4.04	39344	9.66
Maize	36413	3.61	34182	9.39
Minor millets	244872	24.38	246952	10.08
PULSES				
Lentil	16724	1.66	10310	6.16
Gram	6811	0.68	3824	5.61
Urd	5261	0.52	2494	2.38
OIL SEEDS				
Rapeseed and Mustard	12647	1.25	7542	6.56
COMMERCIAL				
Sugarcane	48683	4.83	1827967	375.48
Potato	7119	0.71	44993	63.20

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

a major past of if is marginal and sub-marginal and unfit for cultivation. The cultivable land available per person is only 0.16 ha in hills as against 0.20 ha in plains. Besides this several other factors are operative for low field. The age oid cultivation now requires soil management on ecological principles (Uma Pandcy and J. S. Singh, 1986, INTECOL PROC.). Therefore, the future objective of agriculture planning and development in hill region should not only be self sufficiency in food but the proper conservation of land and water resources as per land capability so that land is available for a long term productive use holistically (S. L. Shah and N.P. Melkania, 1983, Proc. of the Seminar on Ecology & Environment in U. P.).

Energetics of Rural Ecotsytems : The village energy requirements comprise of heat, light, shaft and other mechanical power as well as energy embodied in fertilizers. Efficient energy use and proper conservation of existing energy sources require efficient management from supply side and trained consumers from demand side. The purpose and pattern of energy consumption depend on various socio-economic factors, such as, size of land holdings, cropping patterns, household income, irrigation source, economic activity, incomc level, technological adoption, consumption patterns, price level, availability, education, terrain and religious taboos. The energetics of selected villages in different land use and topographical regions of Uttarakhand (Table 3) has been studied by P. S. Satsangi and V. Gautam (1983, in **Managemeut of Rural Energy Systems**). The energetics of major setors, viz., domestie and agriculture is described below.

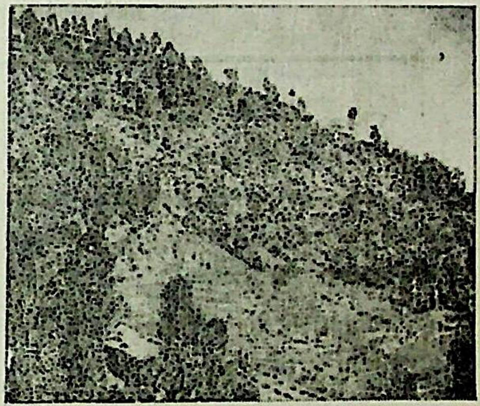

Enchroachment of forest area by agriculture destroys agroecosystem

(a) **Domestic sector** : The fuel is used for cooking and lighting all round the year, water and space heating (in hill region) durning winters water and space cooling (in bhabar and tarai) during hot months. The yearly household consumption of energy in term of coal replacement value is 7155 kg C.R. (in hill zone) to 3412 kg C R (in tarai); while in plains, it is 2336 kg CR. The share of commercial fuel in plain terrain is relatively more (8·25 percent

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

per household), compared to the rural areas of hills (0·21 to 4.42 percent).

Firewood is the major and most important source of domestic fuel accounting nearly cent percent of energy requirement of hillhousehold. Cooking and heating is entirely exercised by utilizing firewood. About 90 percent households use kerosene oil for lighting, the remaining share of electricity is increasing day by day with the urbanization of the region. In remote hill villages, firewood and torchwood of chir-pine (**Pinus roxburghii**) is used for lihting. Compared to bhabar and tarai, use of electricity in hilly regions is negligible for space and water heating or cooling (in hot valleys).

Table 3. Energetics of rural ecosystems along the gradient of landuse and topography in Uttarakhand

Characteristics (unit)	Categories *				
	I	II	III	IV	V
Average family size (No.)	6.20	6.50	7.80	8.00	7.80
Per household energy Consumption (kg C.R.)**	7155	6232	4617	3412	2336
Energy consumption in domestic sector (%)					
(i) Commercial	0.21	2.37	3.25	4.42	8.25
(ii) Non-commercial	90.79	97.63	96.75	95.58	91.75
Distribution (%) of energy consumption in household for					
(i) Cooking	66.62	73.15	87.50	90.18	85.18
(ii) Lighting	0.22	2.32	3.25	3.04	5.39
(iii) Space and water heating	33.16	24.47	9.25	5.60	8.23
(iv) Space water & cooling	0	0	0	1.18	1.20
Share (%) of different fuels used for cooking					
(i) Fire wood	100.0	100.0	89.70	72.80	49.64
(ii) Dung cakes	0	0	10.30	27.20	48.55
(iii) Kerosene oil	0	0	0	0	1.81

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Characteristics (unit)	Categories				
	I	II	III	IV	V
Average firewood consumtion for					
(i) Summer (kg/household/month)	493	539	418	253	82
(ii) winter (kg/household/month)	1564	1095	606	342	95
Electricity energy consumption (MWh yr^{-1})	0.24	24.60	32.66	1467.50	125.88
Energy used in agriculture by the households					
(i) Total land holding (acre)	182	270	546	2464	390
(ii) Total energy consumption (kg C. R.)	25533	68847	348468	6108354	1337652
(iii) Per acre energy consumption (kg C. R.)	140.30	255.00	2630.9	2479.0	3433.2
Share (%) of animate and physical energy used in agriculture					
(i) Animate	98.68	97.70	34.68	12.75	5.39
(ii) Physical	1.32	2.30	65.32	87.35	34.61

* The categories are : I, high hill zone (Mukteshwar, Chhatola and Sitla village); II, midhill zone (Khurpatal, Bajun, Sariatal and Narayan Nagar village); III, bhabar zone (Fatehpur, Nawar, Salami, Gajrora, Gulzarpur and Pipal Pokhara village); IV, tarai zone (Lallpur, Maharajpur and Rameshwarpur village) and V, plain zone (Barara village near Agra). Plain zone is included for comparison with the other zones of Uttarakhand.

** The energy values are expressed in terms of coal replacement (C. R.)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(b) **Energy in agriculture :** As already explained, 90 percent agriculture in hills is rainfed. Natural streams (rivers and rivulets rarely the lakes, e. g. Bhimtal) are the only sources of irrigation in law lying irrigated valleys by utilizing the human power. The agricultural land in bhabar and tarai is irrigated through canals, tubewells, pump sets and artisian wells. Aprat from human energy, the irrigation in these regions require commercial energy, such as, diesel and electricity.

One of the fundamental differences, with regard to utilization of mechanical power in agriculture between the hilly and non-hill terrain of Uttarakhand is that even the small land holdings of non-hill zone use tractors & threshers in agriculture in hilly region, animal and human power are used. Besides this the organic manurse need is also met from animal sector. Thus, animal husbandry has a vital role in the viability of agriculture in hilly regimes.

The per acre energy consumption in hills is very small, compared to the forthill and plains. The percent share of physical energy ranges from 1.32 (high hill zone) to 87.35 (tarai region). In hilly region, the energy requirement is highest (255 kg C R) in mid-hill zone; whereas the same was highest (2630.90 kg C R) in bhabar zone among the non-hill categories (Table 3).

Relationships between agro-and forest–ecosystems : Recently Uma Panday and J. S. Singh (1984, **Environmental Conservation**) described relationships between agro and forest ecosystems in hilly regions of Uttarakhand.

The cultivated land is the 'nucleus' of the settlements in this region and serves to increase both the human and bovine populations in a positive feed-back manner, grabbing land from forests at an ever-increasing rate. The average energy flow in mid-hill zone is illustrated in fig. on p. 124.

1. The conclusions drawn are :

- The agro–ecosystems are the centres of massive energy consumption and their viability depends on the supply of energy from the forests.
- Adequate livelihood from farming alone are not possible.
- The ratio of agricultural land to forest is only 1 : 1.66 and for agriculture to good forest ($>$60 percent crown density) is only 1 : 0.26.
- With regard to cropping patterns, the output : input ratio in a wheat–paddy system is 2.26 (in wheat) and only 0.59 (in paddy), compared to wheat–soybean system of village Bhalutia is far inferior (output : input ratio = 1.35). The imports and exports of energy (G J $yr.^{-1}$) in these vilages was as follows (J. S. Singh, Uma Pandey and A. K. Tewari. 1984. **Ambio**).

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Parameters	Khurpatal	Bhalutia
IMPORTS		
From forest		
(i) Fodder	13556.9	3606.4
(ii) Fuel	7358.4	8664.4
From market		
(i) Feed	159.9	30.5
(ii) Fertilizers	4160.9	22.3
(iii) Other food energy	920.4	3467.8
EXPORTS		
To market		
(i) Milk	269.2	58.8
(ii) Vegetables	6707.7	0

Problems of Agro–ecosystems : The massive expansion of agriculture in these hills appeared to have begun around 1823 when the Britishers decided to expend the amount of arable land, and by the late 1860 's in Kumaun, the cultivated land had more than doubled (R. P. Tucker, 1983. **On Global Deforestation and the Nineteenth Century World Economy**). The 1840 s and 1850 s constituted the first era of large scale uncontrolled deforestation to meet the timber demands of the expanding cities of Indo-Gangetic plains (Tucker, 1983). The commercial exploitation of forests had since continued along with the expansion of agriculture. The area under cultivation has increased at a rate of 1.5 percent per year and the cattle population @ 0.18 percent per year (S. L. Shah. 1982. **Indian J. Agric. Econ.**). Increasingly agricultural terraces have been developed on steep slopes unfit for cultivation and also on forest lands This led to soil erosion and ultimately to the loss of cultivated land.

According to an estimate (S. L. Shah, 1981. In **The Himalaya : Aspects of Change**), nearly 85 percent of all cropland already suffers from erosion problems. This problem is aggrevated by population and developmental pressures, principally the road-building activities. According to K. S. Valdiya (1983, in **Environmental Regeneration in Himalaya : Concepts and Strategies**), the construction of 44000 km long road in the Himalayan region generated 2650×10^6 m³ of debris. Each year 550 m³ of debris per km of the road is produced by landslides and rock falls, causing 24×10^6 m³ of sediment to slide down the slope, destroying vegetation and chocking mountain streams thus, influencing agroecosytems indirectly. Therefore,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

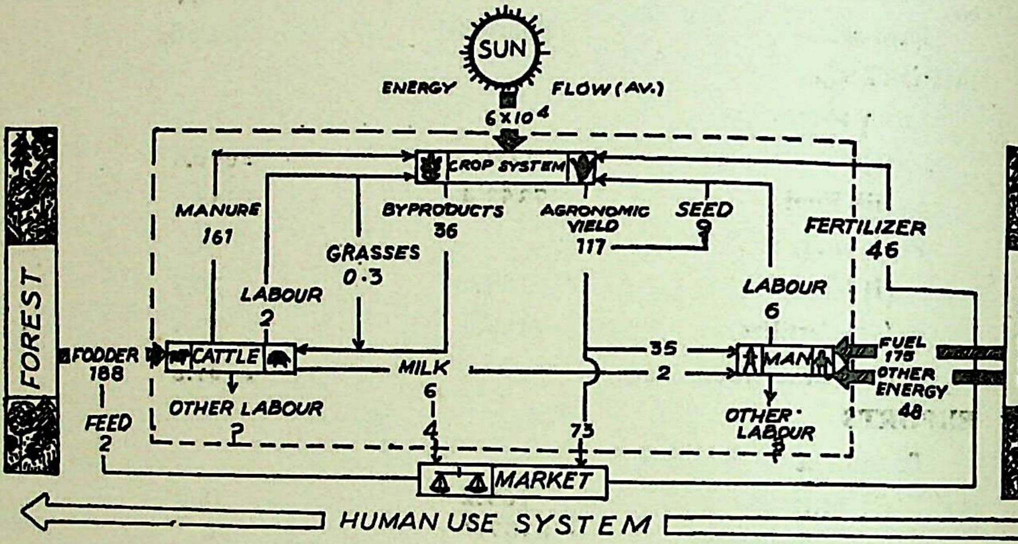

Average energy flow through the human use system for mid-hill zone of Uttarakhand (values are in G J yr^{-1} ha^{-1} of cultivated land).

developmental activities, e. g., road construction into the presently inaccessible areas, expansion of agriculture on unculturable land and forest areas and illicit removal of forest will cause greater adverse impacts on the production potential of renewable natural resource as well as environment of the region.

Suggestions for Improvement : Obviously, the problem of ecological degradation in Uttarakhand mountains is not so easy to solve as is felt. It has to be tackled in an integrated manner considering the factors, such as, aspect, habital characteristics and rainfall. Although, some progress has been made during the current years to increase the agricultural production, other non-agricultural components of agroecosystems need to be developed and managed to get the sustained yield. Major parts under various crops are still put under unimproved cultivars with low yield potential and high susceptibilty to animate pathogens and pests. Therefore, extension programme need to be strengthened. Scarcity of water poses serious problem especially during draught years. This calls for the development of technology for rainfed agriculture. Suitable erosion control measures have to be developed to overcome the soil fertility losses. However, some land mark measures for the viability of agroecosystems in particular and total environment and ecological balance in general in the region are as follows :

(i) The further deforestation must not only be prevented but also the more land unfit for agriculture be reforested taking care of survival.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(ii) The agriculture should be restricted only to fertile land lying gentle slopes and valleys. The cropping intensity to such areas can further be increased by adopting high yielding varieties programme (HYV). Tree farms, such as, silvipasture, silviculture, energy farm can serve as an effective, protective and productive cultivation to areas unfit for crop growing.

(iii) The pressure of human and bovine population have to be reduced to offer opportunity for natural regeneration of supporting systems (forests and grasslands). Application of stall-feeding system can release the grazing pressure significantly. □

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तराखण्ड शोध संस्थान की प्रगति यात्रा

चमोली जनपद के मुख्यालय गोपेश्वर में वर्ष 1973–76 के दौरान कुछ उत्साही अधिकारियों यथा जिला विद्यालय निरीक्षक श्री भैरवदत्त पाठक, स्थानीय राजकीय कन्या विद्यालय की प्रधानाचार्या कु० गंगोत्री गर्ब्याल, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय के प्राचार्य श्री कृष्णचन्द्र जोशी एवं शिक्षा विभाग के डॉ० पी० एल० भट्ट, राजकीय इण्टर कालेज में इतिहास के अध्यापक श्री यशवन्त सिंह कटोच, पुलिस उपाधीक्षक प्रभारी जनपद श्री गिरिराज शाह, उप अरण्यपाल सर्वश्री निर्मल जोशी, नरेन्द्र सिंह नेगी एवं देवेन्द्र सिंह नेगी, तथा जिला सूचना अधिकारी श्री मातबर सिंह नेगी—दिन के विश्राम के समय बारी-बारी से किसी एक अधिकारी के कक्ष में बैठते और केवल चमोली जनपद एवं उत्तराखण्ड के विकास की बात करते। जिलाधिकारी श्री आदित्य कुमार रस्तोगी तथा बाद में श्री भूरे लाल भी इसमें अपना सहयोग देते। इसी पारस्परिक सामंजस्य के माहौल में उत्तराखण्ड शोध संस्थान का जन्म हुआ। तय हुआ कि ये सभी सदस्यगण हर शनिवार को सायंकाल, एक स्थान पर बैठेंगे और उत्तराखण्ड के इतिहास पर विचार-विमर्श करेंगे। यह क्रम भी चलता रहा। वर्ष 1973–74 में संस्थान ने गोपेश्वर में लघु गोष्ठियां आयोजित कीं। एक बृहद् निबन्ध प्रतियोगिता भी करवाई जिसमें उत्तराखण्ड के इतिहास पर नवोदित लेखकों के अच्छे लेखों को पुरस्कृत किया गया। वर्ष 1974–75 में संस्थान के तत्कालीन सचिव गिरिराज शाह द्वारा लिखित उत्तराखण्ड संबंधी पुस्तक "किंगडम आफ गाड्स" छप कर आई। संस्थान ने 'नैनीताल पर्वतारोहण संस्थान' से भी निरन्तर सहयोग किया और गोपेश्वर में "उत्तराखण्ड पर्वतारोहण क्लब" की स्थापना की गई।

दिनांक 18 जनवरी 1977 को सोसाइटी रजिस्ट्रेशन एक्ट अधिनियम संख्या 21, 1960 के अंतर्गत संस्थान का पंजीकरण किया गया [प्रमाण संख्या–51–3–394 (II), दिनांक 18·1·77]। तत्कालीन तदर्थ कार्यकारिणी में डॉ० कृष्णानन्द जोशी (अध्यक्ष) श्री भैरवदत्त पाठक एवं डॉ० यशवन्त सिंह कठोच (उपाध्यक्ष), श्री गिरिराज शाह (सचिव) तथा डॉ० प्रेमलाल भट्ट (संयुक्त सचिव) थे।

वर्ष 1977 के प्रारंभ में संस्थान के सचिव के प्रयास से दिल्ली के इण्डिया इण्टरनेशनल सेन्टर में एक सेमिनार आयोजित किया गया, जिसमें हिमालय एवं उत्तराखण्ड प्रेमियों ने अपना बहुमूल्य योगदान दिया। सन् 1977 के मध्य से वर्ष 1984 तक विभिन्न कारणों से संस्थान के कार्य-कलापों में थोड़ा गतिरोध आया, परन्तु संस्थान के हित में अध्ययन व पठन-पाठन का कार्य जारी रहा। इसी बीच डॉ० यशवन्त सिंह ने खोजपूर्ण पुस्तक "मध्य हिमालय का पुरातत्व" भी प्रकाश में आई। वर्ष 1984 में संस्थान में पुनः गतिशील हुआ। हल्द्वानी के कर्मठ आयकर अधिकारी श्री रामीचंद के सहयोग से संस्थान के कार्यकलापों को बल मिला। संस्थान की शाखाएं सारे उत्तराखण्ड में खोली गईं। एक नई तदर्थ केन्द्रीय कार्यकारिणी गठित की गई जिसके अध्यक्ष श्री गिरिराज शाह, सचिव श्री प्रमोद जोशी और उपाध्यक्ष डॉ० ताराचन्द्र त्रिपाठी तथा डॉ० यशवन्त सिंह कठोच बनाए

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गए। क्षेत्रीय संयोजकों का चुनाव भी किया गया। हल्द्वानी के उत्साही कार्यकर्ताओं सर्वश्री अरविन्द पांडे, जगदीश चन्द्र भट्ट, लेखराज चड्ढा एवं मुकेश अग्रवाल के अथक प्रयासों से 12 मार्च, 1986 को हल्द्वानी में एक सेमिनार आयोजित की गई। उक्त सेमीनार में तथा इसके बाद हुए विस्तृत विचार-विमर्श के पश्चात् संस्थान के निम्नांकित लक्ष्य निर्धारित किए गए :

1. सामान्य जन में सांस्कृतिक विरासत एवं मानव मूल्यों के प्रति चेतना जगा कर उन्हें अपने अंचल की पुरासम्पदा के संरक्षण, मानव मूल्यों के संवर्धन और भावी पीढ़ियों में उसके संवहन की प्रेरणा देना।
2. पुस्तकालयों एवं संग्रहालयों के विकास में सहायक ऐसे सांस्कृतिक केन्द्रों की स्थापना करना, जो इस अंचल की गौरवशाली परम्पराओं के प्रति जनता में व्यापक अभिरुचि उत्पन्न कर सकें।
3. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण संस्था एवं अंचल के विद्यालयों के सहयोग से उत्तराखण्ड की पुरासंपदा का अन्वेषण, संरक्षण तथा प्रकाशन कर, उसे सर्वसुलभ बनाना।
4. पर्वतीय जनों के सांस्कृतिक विकास के विभिन्न सोपानों का और भारतीय संस्कृति की समग्रता में उनके योगदान का, अन्वेषण-आकलन करने वाले विद्वानों की सामग्रीगत एवं, संभव हुआ तो, आर्थिक सहायता करना।
5. पर्यावरण एवं प्राकृतिक संतुलन के प्रति सजग, ऐसी विकास योजनाओं का परिकल्पन, जिनके द्वारा विकास की वर्तमान प्रक्रिया को बाधा पहुँचाए बगैर प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण हो सके।
6. उत्तराखण्ड की विविध सांस्कृतिक विधाओं—कला, शिल्प, साहित्य, नृत्य, संगीत आदि में साधनारत प्रतिभाओं की खोज तथा इन विधाओं के बारे में सूचनाओं का संकलन, प्रकाशन एवं प्रचार।
7. समय-समय पर शोधपत्र, स्मारिका तथा मुखपत्र प्रकाशित कर उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक, बौद्धिक एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करना।
8. उत्तराखण्ड पर एक ज्ञानकोश का निर्माण एवं प्रकाशन।
9. ऐसी अन्य योजनाओं और कार्यों का आकलन एवं निरूपण, जिनसे उत्तराखण्ड की संस्कृति में रुचि रखने वाले मनीषियों के बीच सहज संवाद स्थापित हो सके।

संस्थान का हल्द्वानी अधिवेशन एक मील का पत्थर था। एकाकी एवं छुट-पुट प्रयासों से बढ़ता हुआ संस्थान, अब सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में प्रवेश कर रहा था। उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक धरोहर व उसके उज्ज्वल आदर्शों को बनाए रखने की ललक एवं उत्तराखण्ड वासियों में नैतिकता, शिक्षा तथा आदर्श बौद्धिक परम्परा बनाये रखने के लिए अनेक समर्पित व्यक्तियों एवं संस्थाओं के योगदान से एक नई यात्रा प्रारम्भ हो गई। संस्थान ने एक परिपक्व संस्था का रूप ले लिया। लखनऊ, दिल्ली तथा बम्बई में भी इसकी इकाइयां स्थापित की गई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

योगदान व सदस्यता के आधार पर संस्थान ने कई इकाइयां स्थापित की हैं । स्थानीय क्रिया-कलाप हुए, जिनमें पिथौरागढ़ इकाई के डॉ० मदनचन्द्र भट्ट ने जिलाधिकारी पिथौरागढ़ से प्रदत्त अनुदान के सहयोग से एवं अथक परिश्रम से संस्थान का कार्यालय, पुस्तकालय व संग्रहालय खोला तथा एक स्मारिका प्रकाशित की । पंतनगर इकाई ने लोक-कला प्रदर्शनी तथा व्याख्यान का आयोजन किया । द्वाराहाट इकाई ने मूर्तिकला प्रदर्शनी तथा संगीत संध्या का आयोजन किया । नैनीताल इकाई ने एक बैठक का आयोजन किया, जिसमें वरिष्ठतम सामाजिक कार्यकर्ता श्री चन्द्रलाल शाह ठुलघरिया ने नैनीताल पर्वतारोहण क्लब के कार्यालय एवं स्मृति भवन का उपयोग संस्थान की बैठकों हेतु सर्वदा उपलब्ध कराने का सहर्ष प्रस्ताव किया । बम्बई में हिमालया पब्लिशिंग हाउस के निदेकेक श्री डी० पी० पाण्डे ने संस्थान के अध्यक्ष को आश्वासन दिया कि संस्थान की महत्वकांक्षी "उत्तराखण्ड ज्ञानकोश" योजना के प्रकाशन का सम्पूर्ण दायित्व वे वहन करेंगे । संस्थान इस उदार सहयोग के लिए हार्दिक आभारी है और पूरे मनोयोग से उत्तराखण्ड पर अपनी वृहत, प्रामाणिक एवं बहुआयामी पुस्तक को अंतिम रूप देने में जुटा हुआ है ।

संस्थान ने एक बहुउद्देश्यीय योजना आर्थिक सहयोग हेतु उत्तर प्रदेश शासन को भी प्रेषित की है, जिसका संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है :

1. उत्तराखण्ड के मुख्यालय नगरों में लघु संग्रहालय, पुस्तकालय तथा अध्ययन केन्द्र स्थापित करना ।
2. स्थानीय एवं उत्तराखण्ड के संस्कृति की धरोहर एवं इतिहास की मूलभूत धारा को राष्ट्रीय धारा से जोड़ते हुए जनमानस को उत्तराखण्ड की संस्कृति एवं उसका भारतीय सांस्कृतिक धरोहर में योगदान से परिचय कराना जिसके माध्यम संस्थान का मुख्यपत्र—"उत्तराखण्ड" तथा प्रस्तावित "उत्तराखण्ड ज्ञानकोश" होंगे ।
3. पर्यावरण एवं प्राकृतिक सम्पदा के प्रति चैतन्यता उत्पन्न करना एवं जनमानस में उक्त को परिष्कृत करने की तीव्र उत्कंठा जगाने हेतु गोष्ठियों आदि का आयोजन ।
4. विद्वज्जनों, सर्वेक्षकों एवं रिसर्च फैलो को मूल सामग्री तथा सुविधा उपलब्ध कराना व सम्पर्क सूत्र स्थापित करना । □

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Today Choice of Millions

PALIWAL

As they are

1. Machine made
2. Durable & heat proof
3. Available in attractive designs & shapes in plain and decorated (Screen Printing)
4. Fancy Glassware, Jug, Jars, Bowls and other fancy items etc.

Sole Selling Agents

For Indian Republic and abroad

1. M/S Paliwal Glass Works
2. M/S Kalatmak.

SHIKOHABAD

M/S Quality Distributors,
SHIKOHABAD (U P.)

GRAM : QUALITY

Telephone : Office : 151
Resi. : 27

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तराखण्ड

With Complements

FROM

PRAMOD KUMAR & Co.
RICE MILL

ASSOCITATES : SHAH TRADERS

Grain Merchant & Commission Agent

Etah Road

SHIKOHABAD–205135

Phone : 29 **Branch : JASRANA (U. P.)**

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तराखण्ड

BEST COMPLEMENTS FROM

Rajesh Paper Mills Ltd.

SHIKOHABAD–205 135

Telegram : TIKMANY

Phone : **Factory : 201**
Office : 9

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तराखण्ड

शुभकामना सहित

मै० जगदीश प्रसाद गुप्ता

कमीशन एजेन्ट एवं गल्ला व्यापारी

स्टेट बैंक के पीछे

पथवारी रोड

शिकोहाबाद–205135

(मैनपुरी, उ. प्र.)

फोन–129

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तराखण्ड के किसानों की सेवा में समर्पित

उत्तर प्रदेश बीज एवं तराई विकास निगम लि.

आज का उत्तम बीज—कल की सुनहरी फसल

यदि आप चाहते हैं कि— 0 आपके क्षेत्र में अधिकतम उत्पादन हो
0 उचित मूल्य पर उच्चकोटि के बीज आपको मिलें
0 खराब सिद्ध होने पर बीज का मूल्य आपको वापस मिले

तो आप हरित क्रान्ति के अग्रदूत उ. प्र. बीज एवं तराई विकास निगम द्वारा तैयार "पंतनगर के बीज" ही बोएं जिनकी ख्याति देश में ही नहीं, वरन् विदेशों तक पहुंच चुकी है

क्योंकि—1. पंतनगर बीज आनुवांशिक शुद्धता में उत्तम होते हैं, जिसमें अधिक उत्पादन देने की क्षमता होती है ।

2. पंतनगर बीज संसाधन संयन्त्रों में वैज्ञानिक तरीके से सुखाया जाता है और आधुनिक संयन्त्रों में साफ किया जाता है । ऐसे बीजों में केवल पुष्ट, सर्वशुद्ध, अंकुरणक्षम दाने होते हैं ।

3. पंतनगर बीज प्रभावशाली फफूंदीनाशक दवाओं से उपचारित कर सभी रोगों से सुरक्षित किए गए हैं ।

4. पंतनगर बीज उच्चकोटि के होते हुए भी सबसे कम दामों पर बेचे जाते है एवं विभिन्न प्रजातियों में उपलब्ध हैं ।

निगम ने उत्तराखण्ड में कृषि के सर्वोन्मुखी विकास के लिए अल्मोड़ा स्थित "गंगा सदन, बक्सीखोला" में अपना कार्यालय स्थापित किया है । अतः विभिन्न फसलों के बीज उत्पादन के लिए एवं प्रमाणित बीजों के बारे में अल्मोड़ा स्थित निगम के कार्यालय से जानकारी प्राप्त करें या निगम के निम्नलिखित पते पर सम्पर्क करें :

प्रबन्ध निदेशक
उ. प्र. बीज एवं तराई विकास निगम लि.
पंतनगर, पो. हल्दी, जनपद नैनीताल

With Best Complements from

Apex Corrugators

BYE PASS, SHIKOHABAD (U. P.)

Manufacturer of Industrial Packing

GRAM : APCOR
Phone : Works : 142, Resi : 40

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तराखण्ड

With Best Complements From :

M/S NARAIH UDYOG RICE MILLS
Rice Millers and Commission Agents
Dakhinara
Etah Road,
SHIKOHABAD-205135

Res : 254, Misrana Street,
SHIKOHABAD

Phones : Mill : 80
Resi : 105

Heartiest Greetings

FROM

KAILASH CARDBOARD FACTORY
Mfrs. of all kinds of Cardboard, Corrugated Boxes and Packagings
OLD P. O. Compound, Mohammad Mah,
SHIKOHABAD-205135 (U.P.)

GRAM : MAHESHWARI

Telephone : Office : 52
Resi. : 23

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दी बाजपुर को-आपरेटिव शुगर फैक्ट्री लि०, बाजपुर, नैनीताल

उत्तराखण्ड के प्रकाशन पर हार्दिक बधाई

मिल की कुछ उपलब्धियाँ

1. कृषकों को लाभांश	49·48 लाख रुपए
2. अतिरिक्त गन्ना मूल्य	183·00 लाख रुपए
3. उन्नतिशील बीज सम्बन्ध हेतु प्रोत्साहन के रूप में	3 69 लाख रुपए
4. गन्ने को भारी वर्षा, तेज हवा के प्रकोप से बचाने हेतु धन	00·86 लाख रुपए
5. सिंचाई योजना पम्पिंग सेट आदि हेतु अनुदान	5·23 लाख रुपए
6. गन्ने की फसल को रोग-मुक्त करने को कीटनाशी के छिड़काव हेतु दिया धन	7·07 लाख रुपए
7. 108 कि. मी. अन्तरग्रामीण सड़कों एवं पुलियों के निर्माण व रख-रखाव हेतु व्यय	54·47 लाख रुपए
8. परिपक्वता के आधार पर गन्ना सप्लाई योजना में कृषकों को अनुदान के रूप में दिया धन	35·00 लाख रुपए
9. श्रमिकों को प्रोत्साहन धन के रूप में	138·09 लाख रुपए
10. बुक्सा जनजाति के उत्थान हेतु व्यय की धनराशि	1·04 लाख रुपए
11. अंशधारियों से डिस्टिलरी निर्माण हेतु सम्पूर्ण धन की वापसी	32.35 लाख रुपए
तथा उपरोक्त धन पर ब्याज की अदायगी	29·86 लाख रुपए

मिल की अन्य विशेषताएं

1. प्रदेश की सहकारी क्षेत्र की सबसे विशाल चीनी मिल, 2. अधिकतम व श्रेष्ठतम चीनी का उत्पादन, 3. 50,000 लीटर की क्षमता की आसवनी (सहकारी क्षेत्र की प्रथम आसवनी), 4. श्रमिक आन्दोलन रहित मिल का 27 वर्षों का कीर्तिमान, 5. कृषकों को गन्ना मूल्य के सामयिक भुगतान में अग्रणी, 6. वर्तमान सीजन में सहकारी क्षेत्र की चीनी मिलों में सर्वाधिक गन्ने की पिराई एवं चीनी का उत्पादन

जे. सी. पन्त
प्रधान प्रबन्धक

आर. के. शर्मा
जिलाधिकारी नैनीताल/अध्यक्ष

Best Wishes From

Vijay Kumar Agrawal

Himalaya Cement Works

Manufacturer of PORTLAND CEMENT

CHIMMAN LAL AGRAWAL NAGAR
MAINPURI ROAD
SHIKOHABAD–205135 (U. P.)

GRAM : CEMENT

Phone : Office : 67, Fact : 172, Resi : 100,31

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तराखण्ड

हिन्दी, अंग्रेजी तथा संस्कृत की परीक्षाओं में सफलता दिलाने वाली महत्त्वपूर्ण पुस्तकें जो लाखों में बिकती हैं। 40 वर्षों से प्रचलित। परीक्षा में सुनिश्चित सफलता के लिए हमारी निम्नलिखित पुस्तकें खरीदें :

1. भाषा-भास्कर प्रथम	कक्षा 6, 7, 8 के लिए
2. भाषा-भास्कर द्वितीय	कक्षा 9, 10 के लिए
3. भाषा-भास्कर इण्टर	कक्षा 11, 12 के लिए
4. संस्कृत पथ प्रदर्शक प्रथम	कक्षा 6, 7, 8 के लिए
5. संस्कृत पथ प्रदर्शक द्वितीय	कक्षा 9, 10 के लिए
6. संस्कृत पथ प्रदर्शक इण्टर	कक्षा 11, 12 के लिए
7. डिलाइट्स ऑफ जनरल इंगलिश	कक्षा 6, 7, 8 के लिए
8. डिलाइट्स ऑफ जनरल इंगलिश–I	कक्षा 9, 10 के लिए

प्रकाशक

कृष्णा बुक डिपो

पुस्तक विक्रेता, मुद्रक एवं प्रकाशक, शिकोहाबाद

HIRAN अधिक अन्न उगाओ BRAND

SINGIE SUPERPHOSPHATE FERTILISER

POWDER AND GRANULATED

MANUFACTURERS

Girraj Fertilisr And Chemicals (P) LTD.

ETAH ROAD,

SHIKOHABAD–205135

GRAM : GIRRAJ

PHONES : Resi : 229, Fact : 65

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तराखण्ड

इन्दिरा गांधी सहकारी चीनी मिल्स लि.,

सितारगंज, जनपद—नैनीताल की ओर से हार्दिक शुभकामनायें

सितारगंज तहसील के औद्योगिक रूप से पिछड़े क्षेत्र में स्थापित इस नव निर्मित चीनी मिल का शिलान्यास एवं शुभारम्भ माननीय श्री नारायण दत्त तिवारी, तत्कालीन मुख्य मन्त्री, उ. प्र. वर्तमान उद्योग मन्त्री, भारत सरकार द्वारा सम्पन्न किया गया।

चीनी मिल के प्रथम पेराई सत्र 84-85 एवं द्वितीय सत्र 85–86 की कुछ प्रमुख उपलब्धियां—

1. वर्ष 84–85 में कुल 9 लाख कुन्तल गन्ने की पेराई कर 82 हजार कुन्तल चीनी का उत्पादन किया गया जबकि वर्ष 85–86 में 14·51 लाख कुन्तल गन्ने की पेराई कर 1·44 लाख कुन्तल उत्तम कोटि की चीनी का उत्पादन हुआ। वर्ष 86–87 हेतु कुल 20 लाख कुन्तल गन्ना पेराई का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।
2. वर्ष 84–85 में औसत रिकवरी 9·15 प्रतिशत थी, वर्ष 85–86 में 9.84 प्रतिशत रही।
3. वर्ष 84–85 तथा 85–86 के सम्पूर्ण गन्ना मूल्य क्रमशः 194 लाख रुपए तथा 342 लाख रुपए का भुगतान समय से किया जा चुका है।
4. वर्ष 1985–86 में कुल 45 दिन का बोनस कर्मचारियों को दिया जा रहा है जबकि वर्ष 84–85 में 16 दिन का ही इन्सैन्टिव बोनस दिया गया था।
5. चीनी मिल क्षेत्र में गन्ना विकास के लिए एक "पंचवर्षीय योजना" तैयार की गई है, जिसका कार्यान्वियन गन्ना विभाग उ. प्र. के सहयोग से सम्पन्न किया जा रहा है।
6. चीनी मिल परिसर में विभिन्न प्रजातियों के 50 हजार से अधिक वृक्षों का वृक्ष-रोपण किया गया है।

क्षेत्र के गन्ना उत्पादकों से अनुरोध है कि चीनी मिल क्षेत्र में अच्छी प्रजाति के अधिक से अधिक गन्ने का उत्पादन कर चीनी मिल को सुचारु रूप से चलाने में सहयोग प्रदान करें।

टी. आर. भट्ट
सचिव/प्रधान प्रबन्धक

आर. के. शर्मा
प्रशासक/जिलाधिकारी, नैनीताल

हार्दिक शुभकामना सहित

तार : प्योर घी

फोन : कार्यालय : 20, फैक्ट्री : 205, घर : 61

ला. बंशीधर मुरारी लाल जैन कोल्ड स्टोरेज

(आलू शीतघर व आइस फैक्टरी)

फैक्ट्री : शम्भूनगर, शिकोहाबाद

कार्यालय : बड़ा बाजार, शिकोहाबाद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तराखण्ड

उत्तर प्रदेश शासन का प्रतिष्ठान

कुमाऊं मण्डल विकास निगम लि०, नैनीताल

क्षेत्र की आर्थिक, औद्योगिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील

पर्यटन क्षेत्र में :

1. 22 आवास गृहों का संचालन
2. कन्डक्टेड टुअर्स हेतु ट्रान्सपोर्ट व्यवस्था
3. ट्रैकिंग हेतु उपकरण उपलब्ध कराना
4. कैलाश-मानसरोवर यात्रा का संचालन
5. रज्जु मार्ग, पैट्रोल पम्प व सर्विस स्टेशन का संचालन

निर्माण क्षेत्र में :

विभिन्न आवास गृह व अन्य राजकीय भवनों का निर्माण आदि

औद्योगिक क्षेत्र में :

1. बार्ब्ड वायर, प्लास्टिक बैग्स, विरोजा एवं तारपीन, इलैक्ट्रोनिक्स इकाई, कन्डक्टर इकाई आदि
2. चालू भावी सीमेन्ट उद्योग, गैलवेनाइजिंग प्लाण्ट आदि

विपणन क्षेत्र में :

फल, गैस, बोल्डर, बजरी, प्लान्टेशन हेतु पौघ, कुकिंग गैस वितरण कार्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रगतिशील कृषक सेठ रामकृष्ण आर्य

फर्रुखाबाद स्थित रामकृष्ण फार्म न केवल खेती-बाड़ी के क्षेत्र में अग्रणी है, बल्कि अपने क्षेत्र में अग्रणी है, बल्कि अपने क्षेत्र के किसानों की सहायता एवं मार्ग दर्शन के लिए भी सदा तत्पर रहता है। इसके द्वारा किसानों को उन्नत कृषि तकनीकें तथा तत्सम्बन्धित कृषि-साहित्य मुफ्त उपलब्ध कराया जाता है। साथ ही, वार्षिक गोष्ठियों का भी आयोजन किया जाता है। इन सब सुकार्यों के पीछे जिस व्यक्ति का अथक प्रयास और महत्वाकांक्षा निहित है, वह हैं रामकृष्ण फार्म के मालिक और फर्रुखाबाद जिला किसान कांग्रेस (ई) के महामन्त्री सेठ रामकृष्ण आर्य। सेठ जी ने अपने फार्म पर सवा पांच प्रतिशत निकोटीन तथा साढ़े दस प्रतिशत शर्करा वाली उम्दा किस्म की बीड़ी तम्बाकू का सफल उत्पादन करके किसानों के सामने आय का नया स्रोत खोल दिया है। प्रति एकड़, दस क्विंटल तम्बाकू पत्ती की पैदावार लेकर, किसान दस हजार रुपये तक कमा सकता है। यही नहीं, तम्बाकू के बाद संकर बाजरे की फसल लेकर किसान उसी भूमि से इतनी ही राशि और कमा सकता है। श्री आर्य का कहना है कि किसान आलू, मूंगफली, बाजरा का फसल चक्र भी अपना सकते हैं और अधिक लाभ कमा सकते हैं। निसंदेह श्री आर्य किसानों के हित में तथा बीस सूत्री कार्यक्रम के अनुरूप कार्य कर रहे हैं।

विज्ञापन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

UTTARAKHAND—ONE : 1987

HIND LAMPS

IN THE SERVICE OF THE NATION
LIGHT THE
PATH OF THOSE
WHO ARE
ON MARCH
IN THE
GREAT TASK OF
NATIONAL BUILDING

HIND LAMPS LTD.
SIKOHABAD
MAINPURI (UTTAR PRADESH) INDIA

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri